नाट्य-सुधा

(प्राचीन नाटकों की कथाएँ)

रचयिता

भीमप्रतिज्ञा, नाट्यकथामञ्जरी, कुणाल आदि
के लेखक और मालविकाग्निमित्रम,
ऊरुभङ्गम, नवसतसईसार
आदि के सम्पादक

कैलाशनाथ भटनागर एम० ए०
प्रोफ़ेसर, सनातनधर्म कॉलेज,
लाहौर

संशोधित संस्करण

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, लाहौर

[मूल्य २।

सन् १९३७

तीसरा संस्करण]

Published by
The Manager,
The Indian Press, Ltd ,
Lahore Branch,
Ganpat Road,
Lahore

Printed by
A Bose,
at The Indian Press, Ltd
Benares Branch

भूमिका

संस्कृत-साहित्य अन्य कलाओं के समान नाट्य-कला में भी अत्युत्तम है। भास, कालिदास, दिङ्नाग, भवभूति, हर्ष, शूद्रक, नारायण भट्ट और विशाखदत्त आदि कई प्रसिद्ध नाट्यकार हुए हैं। खेद है कि हम इन नाट्यकारों में से कइयों के उत्पत्तिकाल और जन्म-स्थान आदि के विषय में, निश्चित रूप से, कुछ कह नहीं सकते। तथापि इन बातों के अभाव में उनकी कृतियों की रोचकता या आकर्षण-शक्ति में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आती।

कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्निमित्र' में भास का उल्लेख इस प्रकार किया है—" प्रथितयशसां भास सौमिल्लक कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवे: कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः ?" अर्थात् महान् यशस्वी भास, सौमिल्लक, कविपुत्र आदि की रचनाओं को छोड़कर वर्तमान कवि कालिदास की कृति का अधिक मान क्यों किया जाता है ?

उपर्युक्त अवतरण से यह स्पष्ट है कि कालिदास के समय भास एक प्रसिद्ध नाट्यकार माने जाते थे। कालिदास स्वयं उच्च कोटि के नाट्यकार थे। प्राचीन कवियों ने कालिदास की उपमा, भाषा-माधुर्य और चरित्र चित्रण आदि की विशेष प्रशंसा की है। बाणभट्ट ने लिखा है—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ॥

अर्थात् जब कालिदास की सूक्तियाँ निकलती हैं तब (उन्हें पढ़ने पर) उनसे, मधु-रस से आर्द्र मञ्जरियों के समान, किसे प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती ?

फिर यह तो प्रसिद्ध ही है कि—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला ।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥

अर्थात् काव्यों में नाटक मनोहर है, नाटकों में शकुन्तला मनोहर है, शकुन्तला में भी चौथा अङ्क तथा चौथे अङ्क में भी चार श्लोक मनोहर हैं। (देखो, शकुन्तला पृ० २५४-५५)

पाश्चात्य पण्डितों ने भी कालिदास की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। 'शकुन्तला' को पढ़कर गेटे (Goethe) ने जो कहा था उसका अँगरेजी में श्री रविदत्त ने यह अनुवाद किया है—

Wilt thou the bloom of springtide the fruit
of the year that doth wither ?
Wilt thou what charms and pleases ? Wilt
thou what fills and keeps fed ?
Wilt thou the earth and the heaven in one
name mingle together ?
I name Sakuntala thee, and so is everything
said

सर विलियम जोन्स ने कालिदास को शेक्सपियर के तुल्य माना है। शेक्सपियर से बढ़कर वहाँ कोई नाट्यकार नहीं।

भवभूति भी उच्च कोटि के नाट्यकार हैं। जहाँ कालिदास का रस लक्ष्य अथवा व्यंग्य शक्ति से अभिव्यक्त है वहाँ भवभूति का रस वाच्य शक्ति से ही अभिव्यक्त है, अर्थात् कालिदास जहाँ रस और भाव की ओर सङ्केत करते हैं वहाँ भवभूति अपनी बलवती भाषा से ही वर्ण्य विषय की स्पष्ट अनुभूति कराने में समर्थ होते हैं। रस-निष्पत्ति में भवभूति सिद्धहस्त हैं। उन्होंने जिस रस को ग्रहण किया है उसे पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है। 'उत्तर-रामचरित' में करुण-रस प्रधान है। उसमें मानो मूर्तिमती करुणा का प्रकटीकरण हुआ है। नाट्यकार ने 'उत्तर रामचरित' में ही सीता की करुण अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है—करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी (३—४)।

उनके 'मालती-माधव' में शृङ्गार-रस प्रधान है और 'महावीरचरित' में, राम के राज्याभिषेक तक का चरित वर्णन करते हुए, वीररस को चरम-सीमा पर पहुँचा दिया है।

शूद्रक ने मृच्छकटिक लिखकर नाट्य-क्षेत्र में एक नवीन मार्ग का निर्देश किया है। महाकाव्यों में वर्णित उपाख्यानों और कथाओं को छोड़कर शूद्रक ने साधारण लौकिक जीवन-घटना से सामग्री लेकर नाटक की रचना की है। इसमें ऐसे पात्र हैं जो हमें प्रतिदिन इस लोक में मिलते हैं।

नारायण भट्ट ने वीर-रस से ओत प्रोत 'वेणी-संहार' लिखा है। इस नाटक मे भीम की प्रतिज्ञा—अर्थात् दुर्योधन की जाँघ तोडकर निकाले हुए रक्त से द्रौपदी की वेणी गूँथने की प्रतिज्ञा—का पालन दिखाया गया है।

विशाखदत्त का 'मुद्राराक्षस' अपने ढँग का अपूर्व नाटक है। इसका विषय ऐतिहासिक है। इस नाटक मे नन्द राजा की मृत्यु के अनन्तर चन्द्रगुप्त के मन्त्री चाणक्य और नन्द के मन्त्री राक्षस का परस्पर नीति-युद्ध वर्णित है।

इन नाट्यकारों के अतिरिक्त और भी कई प्रसिद्ध नाट्यकार हैं। परन्तु खेद है कि आज-कल संस्कृत के प्रचार का अभाव होने के कारण साधारण जनता नाट्य-कला के इन महारथियो की रचनाओं का रसास्वादन नहीं कर सकती। अत मैंने सोचा कि इन नाटको का हिन्दी में, एक ही पुस्तक मे, संक्षिप्त कथा-रूप से रूपान्तर कर दिया जाय। वैसे तो कई नाटकों के अनुवाद हिन्दी में उपलब्ध हैं ही किन्तु पृथक्-पृथक् रूप से ये सब नाटक पढना साधारण व्यक्ति के लिए आज-कल कुछ कठिन है। अत मैंने इस 'नाट्य-सुधा' में संस्कृत के बारह नाटको की कथाओं को संक्षेप में उपस्थित किया है।

यह प्रयत्न, अर्थात् कथा रूप मे नाटकों का संक्षेप से उपस्थित करना, कुछ नवीन नहीं है। ऐसी ही दो एक पुस्तकें पहले भी प्रकाशित हो चुकी हैं। 'नाट्य-कथाऽमृत' नाम की ऐसी ही एक पुस्तक का पहला संस्करण सन् १६१४

में प्रकाशित हुआ था। दूसरी पुस्तक 'रूपक-रत्नावली' सन् १६२८ में निकली थी। दोनों ही पुस्तकों का जनता में आदर हुआ है। किन्तु इन दोनों पुस्तकों के ढँग से 'नाट्य-सुधा' का ढँग किञ्चित् पृथक् है।

नाट्य-कथाऽमृत में तो नाटकों का "सार खींचकर कथा-रूप में रक्खा गया है।" परन्तु इसके ढँग में न्यूनता यह है कि इससे नाटक की कथा वास्तविक रूप में पाठकों के सामने उपस्थित नहीं होती। कथा के रहस्य को, जो अन्तिम भाग में खुलता है, पहले ही प्रकट कर देने से कथा की रोचकता में न्यूनता आ जाती है। फिर अपनी ओर से इतनी मिलावट है कि नाट्यकार की वास्तविक कथा, भाव, उपमा, शैली आदि का अभाव होने से ये कथाएँ लिखकर उक्त नाट्यकारों के नाम पर बलपूर्वक आरोपण करना है।

'रूपक-रत्नावली' के लेखक ने नाट्यकार की कृति का अनुकरण करने का अधिक प्रयत्न किया है और उसी प्रकार नाटक में, अङ्कों में विभागों से, कथा को भी विभक्त कर दिया है। किन्तु कई स्थानों पर अपनी ओर से उन्होंने अधिक मिलावट कर दी है और कई स्थानों पर नाटक के अङ्कों का क्रम भी उलट-पुलट कर दिया है।

उक्त दोनों पुस्तकों में अन्य त्रुटियाँ भी हैं। नाट्य कथाऽमृत में, शकुन्तला की कथा में, पृष्ठ २० पर लिखा है—"राजा ज्यों ज्यों ऊपर जाते थे, त्यों-त्यों दूरता के कारण पृथ्वी के

पदार्थ छोटे दिखाई देते थे, बडी-बडी नदियाँ नालियों के समान भासित होती थीं।' किन्तु नाट्यकार का आशय इसके सर्वथा विपरीत है। कालिदास ने तो इस दृश्य का वहाँ वर्णन किया है जहाँ दुष्यन्त, मातलि के साथ, इन्द्र के शत्रु का नाश कर पृथ्वी को लौट रहे थे। सो यह भाव यो होना चाहिए था—"ज्यों-ज्यो दुष्यन्त आकाश-यान से नीचे उतरते आते थे त्यो-त्यों वे नदियाँ, जो पहले सूक्ष्म दिखाई पडती थीं, विस्तृत दिखने लगीं . ।"

इसी प्रकार 'मालविकाग्निमित्र' की कथा मे पृष्ठ ५० पर मदनिका और वकुलावलिका लिखा है। परन्तु मदनिका का नाम सारे मालविकाग्निमित्र मे कहीं नहीं आया। वास्तव में मालविका होना चाहिए था।

'रूपक रत्नावली' में एक तो यही त्रुटि है कि इसमे केवल पाँच नाटकों की कथाएँ हैं। परन्तु इसके लिए दोष नहीं दिया जा सकता। इतना ही कहा जा सकता है कि ग्रन्थ अपूर्ण है, किन्तु अन्य त्रुटियाँ अवश्य हैं। 'मुद्रा-राक्षस' की कथा के दूसरे अङ्क में, पृष्ठ १३ पर, लिखा है—"चाणक्य-बहुत अच्छी बात है। वे उत्तर क्रिया तो स्वय कर दें, और आभरण आदि मेरे पास भेज दें। मैं उन्हे सुयोग्य और सुपात्र ब्राह्मणों मे बाँट दूँगा।" यह कथन वास्तव मे पहले अङ्क में है। यह हेर-फेर इस कारण हुआ है कि लेखक ने पहला अङ्क नाटक की प्रस्तावना, जो दस पृष्ठों की है, रख दिया है।

मूल नाटक के आधार पर इस प्रकार होना चाहिए था—"चाणक्य ने कहा—शोणात्तरा। हमारी ओर से वृषल से कहो—ठीक है, तुम लौकिक व्यवहारों से परिचित हो। सो जैसा चाहो, करो। किन्तु पर्वतेश्वर के धारण किये हुए बहुमूल्य आभूषण गुणियों को ही देने चाहिएँ। सो मैं स्वयं ही परीक्षित गुणी ब्राह्मणों को भेजता हूँ।"

इसी प्रकार पृष्ठ १८ पर लिखा है—चाणक्य ने शार्ङ्गरव से कहा—"तुम अभी जाकर भागुरायण से कहो कि सिद्धार्थक और शकटदास को पकड लावे।"

शार्ङ्ग०—'महाराज, भागुरायण तो पहले ही भाग गया।"

चा० (और भी क्रुद्ध होकर)—"अच्छा, भद्रभट, पुरुषदत्त, डिंगुरात, बलगुप्त और राजसेन आदि से कहो कि वही लोग जाकर उन दोनों को पकड लावें।"

शार्ङ्ग०—'महाराज, वे तो सभी पहले ही से भाग गये हैं।"

यहाँ शार्ङ्गरव का उत्तर दोनों स्थानों पर ठीक नहीं दिया गया। क्या वह पहल से ही जानता था कि वे भाग गये हैं? यदि वह यह जानता होता तो इतने महत्त्व की सूचना पहले ही गुरु को न दे देता। वास्तव में होना यह चाहिए था कि वह बाहर जाकर पता लगाता है और तब गुरु को यह सूचना देता है। अस्तु, यह सच है कि लेखक ने स्थानाभाव से ऐसा लिखा है परन्तु फिर भी भाव में अन्तर न आने देना चाहिए था।

'मुद्रा-राक्षस' की ही कथा मे पृष्ठ २२ पर लिखा है—"शयनागार की तरतबन्दी के नीचे से च्यूँटियाँ चावल के दाने लिये चली आ रही हैं।" वास्तव मे नाट्यकार ने यहाँ लिखा है—"किसी दीवार के छिद्र में से चींटियो की पङ्क्ति को अन्न के कण लिये निकलते देखा।"

फिर इसी कथा में पृष्ठ २५ पर लिखा है—राक्षस ने विराधगुप्त से पूछा—"चाणक्य और चन्द्रगुप्त मे विरोध-भाव उत्पन्न करने का जो प्रयत्न किया गया था, उसमे कुछ सफलता हुई?" इस वाक्य का भाव मूल में सर्वथा अनुपलब्ध है। कहीं किसी सङ्केत-द्वारा भी इसकी कल्पना नहीं हो सकती। वास्तव में राक्षस तो शकटदास और सिद्धार्थक को विश्राम के लिए भेजकर यों कहता है कि मित्र। विराधगुप्त। शेष वृत्तान्त कहो। क्या चन्द्रगुप्त की प्रजा हमारे प्रयत्न से सहमत है? तब उसका उत्तर देते हुए करभक बताता है कि चन्द्रगुप्त चाणक्य पर, मलयकेतु के भाग जाने से, रुष्ट है और चाणक्य भी अति गर्व से असहन करता हुआ वार-बार आज्ञा-भङ्ग से चन्द्रगुप्त की पीडा बढाता है।

फिर इसी कथा में पृष्ठ ३५ पर लिखा है—"करभक ने कहा कि आपकी प्रशसा करते हुए राजा ने चाणक्य को पद-च्युत कर दिया। यह सवाद सुनकर मलयकेतु ने कहा—सम्राट् चन्द्रगुप्त राक्षस पर बहुत श्रद्धा रखते हैं। इस पर भागुरायण बोला—यह तो इस घटना मे और भी स्पष्ट हो

गया। कौमुदी-उत्सव के सम्बन्ध में चन्द्रगुप्त और चाणक्य में जो कहा सुनी हुई थी, वह सब करभक ने कह सुनाई।" वास्तव में करभक कौमुदी-महोत्सव का सभी वृत्तान्त सुनाता है और उसी वार्तालाप में यह बताता है कि आपकी प्रशंसा करते हुए राजा ने चाणक्य को पदच्युत कर दिया है। पद-च्युति का इतना समाचार करभक पहले ही राक्षस से नहीं कहता। अन्यथा, क्या यही आशय राक्षस का था कि जो करभक आते ही उससे यह कह दे? राक्षस को तो इसका आभास भी न था।

इसी कथा में पृष्ठ ३७ पर लिखा है कि "राक्षस ने मेरे द्वारा विषकन्या का प्रयोग करके महाराज पर्वतक की हत्या कराई थी।' मूल-नाटक के आधार पर "मेरे" शब्द नहीं आ सकता। वास्तव में आशय यह है—"मैं मन्दभाग्य पाटलिपुत्र में रहता था। राक्षस से मित्रता हो गई। उस समय राक्षस ने गुप्त रूप में विषकन्या के प्रयोग से राजा पर्वतेश्वर की हत्या करवा दी।' यदि क्षपणक ने पर्वतेश्वर को मारा होता तो क्या वह इस अपराध को पर्वतेश्वर के पुत्र के सामने ही स्वीकार करता? और यह तो हम जानते ही हैं कि वह वास्तव में चाणक्य का गुप्तचर था, उसके कहने से उसने चाहे ऐसा किया भी हो परन्तु उसके मुख से मलय-केतु के सामने ही अपराध स्वीकार कराना कठिनता से समझ में आने योग्य है।

इसी प्रकार "रत्नावली" की कथा मे पृष्ठ ६९ पर कुछ दोप है। लिखा है—"उद०—यह (चित्र) किसने वनाया है यह मैने नहीं देखा।" यह उत्तर मूल के विपरीत है। मूल के आधार पर तो यह उत्तर है—राजा ने मुस्कराकर रानी से कहा—कुछ और शङ्का मत करो। अपनी कल्पना से ही कोई ऐसी कन्या अङ्कित कर दी है, इसे पहले देखा नहीं। "इसे" का तात्पर्य चित्र से नहीं है, वरञ्च सागरिका मे।

"मूल मालती-माधव" नाटक मे दस अङ्क है। परन्तु इस पुस्तक मे आठ ही अङ्क दिये गये है। रत्नावली तो ३१ पृष्ठों मे है और यह ७४ पृष्ठों मे, जब कि यह रत्नावली से कुछ बडा ही है। इस कथा मे बहुत ही हेर-फेर हुआ है। नाट्यकार ने माधव को मालती के प्रथम दर्शन होने का वर्णन अगले दृश्य मे किया है, परन्तु इसमें वह पहले ही लिख दिया गया है।

उत्तर-रामचरित' की कथा मे पृष्ठ १३६ और १३७ पर, एक वार्त्तालाप में, दशरथ-द्वारा भी सम्भाषण कराया है। किन्तु उत्तररामायण की कथा में दशरथ वार्त्तालाप करने कहाँ स आये? वास्तव मे यहाँ जनक का नाम होना चाहिए।

'शकुन्तला' की कथा मे पृष्ठ १८५ पर लिखा है—"सानुमती अदृश्य होकर महाराज के अन्त पुर में गई। वहाँ उसने महाराज को शकुन्तला के विरह मे अत्यन्त व्याकुल दशा मे देखा। उसने यह भी सुना कि इस वर्ष महाराज की आज्ञा

से वसन्तोत्सव भी बन्द है।" यह आशय मूल नाटक के अनुसार नहीं है। वास्तव में सानुमती, कञ्चुकी-द्वारा दो दासियों को उत्सव के लिए पुष्प चुनने से मना किये जाते समय, जान लेती है कि वसन्तोत्सव राजा ने बन्द कर दिया है। इससे सानुमती की इच्छा राजा को देखने की हुई। अकस्मात् राजा वहाँ उद्यान में ही आ गये। फिर यहाँ जो दृश्य है वह अति मनोहर है। शकुन्तला का चित्र देखकर दुष्यन्त दुःखित हो रहे थे। धनमित्र की निःसन्तान मृत्यु से उसकी धन-सम्पत्ति के राजकीय कोष में मिला लिये जाने के भाव में राजा का दुःख और तीव्र हो गया। "रूपक-रत्नावली"-कार ने इसे सर्वथा छोड़ दिया है।

ऐसी कई त्रुटियाँ देखकर मैंने नाट्य-सुधा पुस्तक लिखी है। मैंने इसमें कथा-रूप में नाट्यकार की कथा को ज्यों की त्यों ही रखने का प्रयत्न किया है। हाँ, भाषा की दृष्टि से अथवा कथा-रूप देने की इच्छा से कहीं-कहीं किञ्चित् परिवर्त्तन अवश्य हुआ है। परन्तु कथा या भाव आदि में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आने पाया। यथासम्भव किसी अङ्क का कोई भी दृश्य नहीं छोड़ा गया है, क्योंकि उसका भी सम्बन्ध मूल कथा के साथ रहता है। जहाँ जहाँ अत्युत्तम उपमा, शिक्षा तथा अन्य प्रकार के उत्कृष्ट वाक्य अथवा श्लोक मिले हैं, उनका आशय पुस्तक के विस्तार के अनुसार लिख दिया है। क्योंकि नाट्यकार की महत्ता केवल रोचक

कथा पर ही आश्रित नहीं रहती, उपमा आदि अन्य विषय भी देखे जाते हैं।

कथाओं के विचार से पुस्तक के दो भाग कर दिये गये हैं। नाटको के निर्माण-काल का विशेष ध्यान नहीं रक्खा गया है। विषय की दृष्टि से दो तीन नाटक उचित स्थान पर नहीं रक्खे जा सके। प्रत्येक भाग मे भिन्न भिन्न पाँच नाट्यकारों की रचनाओं की कथाएँ हैं। पहले भाग मे छोटे विस्तार की कथाएँ रक्खी गई हैं। इन कथाओं के अन्त में रामायण के दो नाटको की, अर्थात् पूर्व और उत्तर-रामायण की, कथाएँ सन्निविष्ट की गई हे। दूसरे भाग मे भी पाँच भिन्न-भिन्न नाट्यकारो की उत्कृष्ट रचनाओ की पाँच कथाएँ हैं। पहले रामायण और महाभारत के नाटको की कथाएँ ही हैं। प्रथम भाग मे, कुछ ही वर्षों में उपलब्ध हुए, 'स्वप्नवासवदत्ता' और 'कुन्दमाला' नाटकों की कथाएँ रक्खी गई हैं। स्वप्नवासवदत्ता महाकवि भास की रचना बताई जाती है। कुन्दमाला आचार्य दिङ्नाग की कृति है जो कालिदास के प्राय समकालीन माने जाते हे। अत ये उत्तर-रामचरित के कर्त्ता भवभूति मे पहले हुए थे। कुन्दमाला की भी कथा, उत्तर-रामचरित के समान, उत्तर-रामायण के आधार पर ही है। दोनों नाटकों को पढकर पाठक जान सकते हैं कि भवभूति दिङ्नाग से कहाँ तक प्रभावित हुए थे।

इन दो भागो मे, स्थान के अभाव से, मैं मालती-माधव

और मृच्छकटिक नाटकों की कथाएँ नहीं रख सका। यदि मेरा यह प्रयत्न सफल हुआ तो इन दोनों नाटकों की कथाएँ, जो लिखी रक्खी हैं, अन्य नाटकों की कथाओं के साथ, उपस्थित करूँगा। यह पुस्तक बड़े अल्प समय में लिखी गई है। इसकी छपाई भी शीघ्रता में हुई है। सम्भव है, कतिपय भूलें रह गई हों। इसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।

अन्त में मैं स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंह, पण्डित सत्य-नारायण कविरत्न और रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए० को धन्यवाद देता हूँ जिनके कतिपय पद्यों को मैंने इस पुस्तक में उद्धृत किया है। प० उदयशंकर भट्ट जी ने कुछ पद्यों का मेरे लिए अनुवाद किया है। मैं उनका भी धन्यवाद करता हूँ।

लाहौर
दिसम्बर, १९३२ } कैलाशनाथ

दूसरा संस्करण

इस पुस्तक का जनता ने अच्छा आदर किया है। "पंजाब टैक्स्ट बुक कमेटी" ने सन् १९३३ में इस पुस्तक पर २००) रुपये पारितोषिक दिया था। इस पुस्तक के ढँग, शैली आदि से प्रभावित होकर कई मित्रों ने अनुरोध किया कि इसका एक संस्कृत-संस्करण भी निकाला जाय। गत वर्ष सन् १९३५ में संस्कृत-संस्करण भी प्रकाशित कर दिया गया। संस्कृत-संस्करण का नाम "नाट्यकथामञ्जरी" है। इस संस्कृत संस्करण

और नाट्य-सुधा मे बहुत कम अन्तर है। संस्कृत संस्करण में मैंने मूल पद्य भी उद्धृत कर दिये हैं। संस्कृत-संस्करण तैयार करते समय कुछ बातें और भी सूझी थीं। उनके अनुसार अब इस पुस्तक का संशोधन किया गया है। कुछ स्थलों पर शृङ्गाररसमय कुछ शब्द रह गये थे। इन सबको अब हटा दिया है। मूल नाटक के आधार का विचार रखते हुए कुछ स्थलों का भी संशोधन कर दिया है। मैं उन सब संस्थाओं को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन-जिनने इस पुस्तक को पाठ्यक्रम में नियत कर लेखक का उत्साह बढ़ाया है। अन्यथा, इतनी जल्दी अभी दूसरे संस्करण की आवश्यकता न होती। पंजाब-यूनिवर्सिटी ने इस पुस्तक को हिन्दीभूषण तथा इन्टरमीडियेट की लड़कियों के हिन्दी कोर्स में नियत किया है। यू० पी० के शिक्षा-विभाग ने इसके दोनों भागों को ऐंग्लो-वर्नाकूलर स्कूलों की सातवीं और आठवीं कक्षाओं के लिए स्वीकृत किया है।

मुझे आशा है कि अब नाट्य-सुधा पुस्तक और भी अच्छी प्रमाणित होगी।

लाहौर
१०—७—३६

कैलाशनाथ

तीसरा संस्करण

एक वर्ष के भीतर ही इस पुस्तक का तीसरा संस्करण निकालना पड़ा। मैं इस पुस्तक के प्रेमियों के निकट कृतज्ञ हूँ। कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन किये हैं। इसी पुस्तक के संस्कृत संस्करण 'नाट्यकथामञ्जरी' का भी यथेष्ट आदर हुआ है। यह पुस्तक नागपुर यूनिवर्सिटी की "बी० ए० आनर्स" और "प्राज्ञ" परीक्षाओं में पाठ्य पुस्तक नियत हो चुकी है। आशा है जनता नाट्य सुधा को और अपनायेगी।

लाहौर
३०—६—३७

कैलाशनाथ

कथा-सूची

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

प्रथम भाग

नाट्य-सुधा

(१) स्वप्न-वासवदत्ता

(१)

महाराज उदयन कौशाम्बी के एक प्रसिद्ध राजा थे। इनकी अत्यन्त प्रिय रानी महाराज प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता थी। उसके प्रेम में लीन होकर अन्त में इन्होंने राज्य-भार अपने मन्त्रियों पर छोड़ दिया। मन्त्रियों ने अपने को राज्य-वृद्धि के लिए उत्तरदायी समझकर, इसी के निमित्त, अत्यन्त सोच-विचार में एक उपाय निश्चित किया। उस उपाय के अनुसार कार्य आरम्भ कर दिया गया।

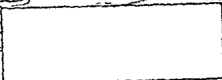
मन्त्री यौगन्धरायण ने सन्यासी का वेष धारण किया और वासवदत्ता ने आवन्तिका का। इसके पश्चात् दोनों मगध की ओर चल पड़े। मगध के निकट एक तपोवन में राज-पुरुषों के 'हटो, हटो'' शब्द सुनाई पड़े। इस अपरिचित तिरस्कार से इन्हें खेद हुआ, वासवदत्ता को तो असीम खेद हुआ। यौगन्धरायण ने यह कहकर उसे धीरज "

ज्ञान से देवताओं ' हो जाता

कार, ये सुख दुख ने 'घूमते रहने

राजपुरुषों क

कञ्चुकी ने




वासवदत्ता

तापसी एक दासी से पूछ रही थी कि इसके विवाह की कहीं बातचीत हुई है या नहीं।

दासी—हाँ, माता जी। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत ने अपने पुत्र के लिए कहला भेजा है।

इस उत्तर से वासवदत्ता को विशेष हर्ष हुआ। वह मन में कहने लगी कि तब तो यह अपनी ही हो गई।

तापसी—ठीक है। इसकी सुन्दरता बड़े मान के योग्य है। दोनों राजकुल अति प्रसिद्ध हैं।

इस विषय में उदासीनता प्रकट करने के लिए पद्मावती ने कञ्चुकी से पूछा—आर्य। कोई ऐसे मुनि देखे हैं जिनके अभीष्ट पूर्ण कर मैं अनुगृहीत होऊँ? आप तपस्वियों में निवेदन करें कि उन्हें क्या-क्या वाञ्छित है। ज्ञात होने पर वह पूर्ण किया जाय।

कञ्चुकी ने ऐसी ही घोषणा कर दी। यह सुअवसर यौगन्धरायण के हाथ लगा। वह कञ्चुकी से बोला—'मेरी कुछ इच्छा है।' यह सुनकर पद्मावती ने अपना तपोवन में आना सफल समझा।

कञ्चुकी ने यौगन्धरायण से पूछा—आपकी क्या इच्छा है?

यौगन्धरायण—यह मेरी बहन है। इसका पति परदेश गया है। मेरी इतनी ही इच्छा है कि राजकन्या इसे कुछ समय तक अपने पास रख ले।

नहीं, निकालो मत। यहाँ से भी निकालते हो ? इसमें राजा की अकीर्ति होती है। तपस्वियों के साथ कठोर व्यवहार करना उचित नहीं। नगर के कलह आदि से बचने के लिए ये महानुभाव वन में रहते हैं, यहाँ भी तुम कष्ट देते हो।

कञ्चुकी के इन भावों को देखकर निःशङ्क हुए मन्त्री यौगन्धरायण, वासवदत्ता-सहित, उसकी ओर बढ़ गये। यौगन्धरायण ने राजपुरुषों के दूर हटाने का कारण पूछा।

कञ्चुकी—सुनिए, ये महाराज दर्शक की बहन पद्मावती हैं। अपनी माता महादेवी के दर्शन के लिए तपोवन आई थीं। अब उनकी आज्ञा से राजगृह को जा रही हैं। आज, इस आश्रम में, विश्राम करने का विचार है। आप निर्भय होकर अपना कार्य करें। कोई बाधा नहीं होगी। यह राजकन्या धर्मप्रिय है। इसके कुल का व्रत ही ऐसा है।

यौगन्धरायण ने अब मन में सोचा—यह मगधराज की पुत्री पद्मावती है जो पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों के कथनानुसार 'हमारी रानी होगी'। हमारे स्वामी की स्त्री होने के कारण इसके प्रति हमारी अतीव भक्ति उत्पन्न हो गई है।

वासवदत्ता—'राजकन्या है' यह सुनकर, उसके प्रति मुझे अपनी बहन का-सा स्नेह उठ रहा है।

अतः यौगन्धरायण और वासवदत्ता को अब पद्मावती के देखने की इच्छा हुई। दोनों पद्मावती की ओर बढ़ गये। पद्मावती उस समय एक तापसी के निकट बैठी थी।

तापसी एक दासी से पूछ रही थी कि इसके विवाह की कहीं बातचीत हुई है या नहीं।

दासी—हाँ, माता जी! उज्जयिनी के राजा प्रद्योत ने अपने पुत्र के लिए कहला भेजा है।

इस उत्तर से वासवदत्ता को विशेष हर्ष हुआ। वह मन में कहने लगी कि तब तो यह अपनी ही हो गई।

तापसी—ठीक है। इसकी सुन्दरता बड़े मान के योग्य है। दोनों राजकुल अति प्रसिद्ध हैं।

इस विषय में उदासीनता प्रकट करने के लिए पद्मावती ने कञ्चुकी से पूछा—आर्य! कोई ऐसे मुनि देखे हैं जिनके अभीष्ट पूर्ण कर मैं अनुगृहीत होऊँ? आप तपस्वियों से निवेदन करें कि उन्हें क्या-क्या वाञ्छित है। ज्ञात होने पर वह पूर्ण किया जाय।

कञ्चुकी ने ऐसी ही घोषणा कर दी। यह सुअवसर यौगन्धरायण के हाथ लगा। वह कञ्चुकी से बोला—'मेरी कुछ इच्छा है।' यह सुनकर पद्मावती ने अपना तपोवन में आना सफल समझा।

कञ्चुकी ने यौगन्धरायण से पूछा—आपकी क्या इच्छा है?

यौगन्धरायण—यह मेरी बहन है। इसका पति परदेश गया है। मेरी इतनी ही इच्छा है कि राजकन्या इसे कुछ समय तक अपने पास रख लें।

कञ्चुकी इसमे टालमटोल करने लगा। परन्तु पद्मावती ने कहा—स्वय ही उन्हे वाञ्छित माँगने के लिए कहकर अब 'नहीं' कैसे कर सकते हो ? जो ये कहते है वह कार्य स्वीकार करना होगा।

यौगन्धरायण ने अपना कार्य स्वीकृत जानकर अपने को धन्य समझा। उसने वासवदत्ता से राजकन्या के पास जाने को कहा।

वासवदत्ता—मैं अभागिनी यह चली।

ऐसा विचार करती हुई वह पद्मावती के पास चली गई।

अब यौगन्धरायण ने सोचा कि वासवदत्ता का भार मेरे सिर से टल गया। मन्त्रियों के साथ जैसी मन्त्रणा हुई थी वैसा ही हुआ। राजा के पुन प्रतिष्ठा पाने पर यही पद्मावती वासवदत्ता के सच्चरित्र की साक्षी होगी, क्योंकि ज्योतिषियो के कथनानुसार पद्मावती महाराज उदयन की रानी अवश्य होंगी। उन्होंने तो यह विपत्ति पहले ही बता दी थी। सो उन पर विश्वास कर मैंने यह चाल चली है।

इस प्रकार मन्त्री यौगन्धरायण विचार कर रहा था कि एक विद्यार्थी वहाँ आ उपस्थित हुआ। वह स्त्रियों को तपोवन मे देखकर विस्मित हुआ। परन्तु कञ्चुकी ने "आश्रम तो सभी के लिए है" ऐसा कहकर उसे आगे बढ आने के लिए कहा। उसे देखकर पर-पुरुष के दर्शन से बचने के लिए वासवदत्ता एक ओर हट गई।

विद्यार्थी के आचमन आदि कर चुकने पर यौगन्धरायण ने पूछा—आप कहाँ से आ रहे हैं? कहाँ जाना है? आपका कौनसा स्थान है?

विद्यार्थी—सुनिए, मैं राजगृह से आ रहा हूँ। वत्स-देश में, मगध की सीमा पर, लावाणक नाम का एक स्थान है। वेदाध्ययन करने के लिए मैं वहाँ रहता था। वहाँ अब एक दुर्घटना हो गई है। इस कारण विद्या समाप्त किये बिना ही आ गया हूँ।

यौगन्धरायण—ऐसी क्या घटना हुई?

विद्यार्थी—उसी स्थान में उदयन राजा रहते हैं। वे अपनी रानी अवन्तिपुत्री वासवदत्ता को अधिक मानते हैं। एक दिन राजा उदयन मृगया के लिए गये। उनकी अनु-पस्थिति में रानी, गाँव में आग लग जाने से, जल गई। मन्त्री यौगन्धरायण भी उसे बचाते-बचाते स्वयं जलकर मर गये। लौटने पर राजा को इस घटना से अत्यन्त दुःख हुआ। वे आग में कूदकर प्राण देने के लिए उद्यत हो गये। बड़ी कठि-नता से मन्त्रियों ने उन्हें रोका। तब राजा उसके शरीर पर से जले हुए आभूषणों को हृदय से लगाकर शोक के कारण विह्वल हुए और मूर्च्छित हो गये।

यह करुणामय वृत्तान्त सुनकर सबका हृदय द्रवीभूत हो गया। हाय! हाय! शब्द अपने आप निकल पड़े। वासवदत्ता के तो आँसू भी निकल आये। आँसू बहते

देखकर पद्मावती ने समझा कि मेरी सखी का हृदय अति दयालु है।

यौगन्धरायण—हाँ, तब क्या हुआ ?

विद्यार्थी—तब कुछ समय के अनन्तर राजा को चेत हुआ।

चेतनता सुनकर पद्मावती ने अपनी कुशल समझी।

विद्यार्थी—चैतन्य होकर राजा भूमि पर लोटते हुए उन्मत्त की नाई प्रलाप करने लगे—"हा वासवदत्ते! हा अवन्ति-राजपुत्रि! हा प्रिये!" उनका सारा शरीर धूलि से भर गया। इतना दुःख तो चकवा भी नहीं करता। अन्य पुरुष को भी वियोग से इतना दुःख नहीं होता। वह स्त्री धन्य है जिसे स्वामी इस प्रकार मानता है। वह दग्ध होने पर भी पति-स्नेह से जीवित है।

यौगन्धरायण—क्या किसी मन्त्री ने राजा को शान्त नहीं किया ?

विद्यार्थी—क्यों नहीं। मन्त्री रुमण्वान् ने उनके शान्त करने का भरसक प्रयत्न किया। राजा के न खाने पर उसने भी नहीं खाया, निरन्तर रोते रहने से उसका मुख म्लान हो गया है। राजा के दुःख को मानता हुआ वह शरीर पर उचित वस्त्र भी धारण नहीं करता। दिन-रात राजा के शान्त करने में लगा रहता है। यदि राजा ने प्राण त्याग दिये तो रुमण्वान् भी जीवित न रहेगा। बड़े यत्न से मन्त्री रुमण्वान्

महाराज को उस ग्राम से ले गया। जाते समय राजा यही विलाप करते जाते थे—"यहाँ मैं उसके साथ हँसता था, यहाँ उसके साथ सलाप करता था, यहाँ हम दोनों ने रात्रि व्यतीत की थी। यहाँ हम दोनों झगड़ पड़े थे, इत्यादि।"

राजा के चले जाने पर ग्राम उजड़ गया। मानो आकाश चन्द्रमा तथा तारागण से रहित हो गया हो। अत मैं भी वहाँ से चला आया हूँ।

यह वृत्तान्त सुनाकर विद्यार्थी ने, आज्ञा लेकर, अपना मार्ग लिया। यौगन्धरायण भी राजकन्या पद्मावती तथा वासवदत्ता से आज्ञा लेकर अपने काम पर चला गया।

(२)

पद्मावती और वासवदत्ता की परस्पर प्रीति विशेष बढ गई। वे दोनों सदा एक साथ बैठती-उठती थीं। एक दिन दोनों गेंद खेलती हुई आपस मे हँसी ठट्ठा कर रही थीं।

वासवदत्ता—सखी! इतनी देर तक गेंद खेलने मे तुम्हारे हाथ, लाल हो जाने के कारण, किसी दूसरे के से हो गये हैं।

पद्मावती—जाने भी दो, तुम तो मुझे बना रही हो।

वासवदत्ता—नहा, सखी! कभी नहीं। सचमुच आज तुम अधिक सुन्दर जान पड़ती हो। मैं चारों ओर तुम्हारा सुन्दर मुख ही देखती हूँ।

पद्मावती—चलो हटो मुझे बहुत मत बनाओ।

वासवदत्ता—अच्छा, महासेन प्रद्योत की पुत्रवधू! मैं कुछ न कहूँगी।

तब एक दासी ने कहा—राजकुमारी उनसे विवाह नहीं करेगी। वे तो वत्सराज उदयन के गुणों पर मोहित हैं।

वासवदत्ता ने सोचा कि अच्छा, यह तो मेरे स्वामी के साथ ही विवाह की इच्छा करती है।

इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि पद्मावती की धाय ने आकर शुभ सूचना दी—पद्मावती की सगाई वत्सराज उदयन से हो गई। उन्होंने विवाह करना स्वीकार कर लिया है।

वासवदत्ता का असीम दुःख हुआ। सहसा वह बोल उठी—कैसा अन्धेर है?

धाय—अन्धेर कैसा?

वासवदत्ता—क्यो? इस प्रकार रो-पीटकर अब उदासीन हो गये हैं।

धाय—अजी! महापुरुषों के हृदय पर शास्त्रों के कथन का अधिक प्रभाव पड़ता है। वे अपना शोक शीघ्र भूल जाते हैं। किसी कारण यहाँ महाराज उदयन को आये देखकर महाराज दर्शक ने पद्मावती के विवाह के विषय में स्वयं ही प्रस्ताव किया। उन्होंने स्वीकार कर लिया।

वासवदत्ता ने सोचा कि यदि ऐसा है तो महाराज निरपराध हैं। इस समय एक दासी ने आकर कहा—

शीघ्र चलिए। आज ही इसके अनन्तर वह शुभ दिन जानकर विवाहोत्सव आरम्भ कर दिया गया है। आज ही विवाह का कँगना बाँधा जायगा। ऐसा महारानी कहती है।

(३)

महाराज उदयन का विवाह पद्मावती के साथ होने का निश्चय सुनकर वासवदत्ता अति व्याकुल हुई। परन्तु वह अभागिनी कुछ कर नहीं सकती थी। मन्त्री यौगन्धरायण उसे गुप्त रहने का आदेश दे गया था। वह अपना हृदय भारी जानकर, भीतर आँगन में विवाह की भीड-भाड के बीच पद्मावती को छोडकर, अकेली प्रमदावन मे चली गई। उसे कई प्रकार के विचार घेरने लगे। 'मेरे स्वामी भी अब और किसी के हो गये।' इस विचार से उसका हृदय दहल जाता था। वह कहती थी--मैं चकवी से भी निकृष्ट हूँ। बेचारी चकवी तो चकवे से पृथक् होते ही प्राणहीन हो जाती है परन्तु मैं पति वियोग से अभी तक जीवित हूँ।

इस प्रकार वासवदत्ता विचार-समुद्र मे निमग्न थी, जब उसे ढूँढती हुई एक दासी आई। उसने प्रियगु लता के नीचे शिला पर बैठी, चिन्ता मे लीन, वासवदत्ता को देखा। पास पहुँचकर उसने जयमाल बनाने के लिए पुष्प आदि आगे रख दिये और कहा कि हमारी महारानी कहती है--आप उच्च कुल की कन्या है, चतुर और कुशल हैं। इस कारण इस जयमाल को आप बना दें।

वासवदत्ता ने अति दुखित होकर कहा—यह भी मुझे करना था ? ईश्वर बडा कठोर है।

दासी के कहने से वह माला गूँथने लगी। किसी-किसी पुष्प-पत्र आदि के लाभ के विषय मे पूछ लेती थी। एक पत्तो के विषय मे पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह 'सदा-सौभाग्यवती' नामक जडी है। वासवदत्ता ने उसे माला में अधिक गूँथने का विचार किया। किसी और पत्तो के विषय मे पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह 'सपत्नी-नाशक' जडी है। वासवदत्ता ने उसे सर्वथा न गूँथने का निश्चय किया। उसने दासी के सतोष के लिए कह दिया—इससे अब क्या लाभ ? राजा की रानी तो मर चुकी है।

इतने में ही एक और दासी आई और कहने लगी—जल्दी करो, जल्दी करो। वर आँगन मे सधवा स्त्रियो-सहित जा रहा है।

दोनो दासियाँ जयमाल बनवाकर ले गई। वासवदत्ता अपने दुर्भाग्य को कोसती हुई कहने लगी—हाय! अनर्थ हो गया। अब मेरे स्वामी भी दूसरी के हो गये।

(४)

वत्सराज उदयन का विवाहोत्सव सकुशल सम्पन्न हो गया। एक दिन पद्मावती और वासवदत्ता प्रमदावन गई। वहाँ शेफालिका के पुष्पो की शोभा देखती हुई दोनो एक शिला पर बैठ गई। एक दासी ने अजलि भर पुष्प लाकर दिये।

फूल बहुत सुन्दर थे। दासी ने और पुष्प लाने के लिए पूछा। पद्मावती ने मना कर दिया।

वासवदत्ता ने मना करने का कारण पूछा तो पद्मावती ने कहा—महाराज आकर यहाँ पुष्पों के ढेर देखेंगे तो मेरा सम्मान करेंगे।

वासवदत्ता—क्या महाराज से बहुत प्रेम करती हो?

पद्मावती—कह नहीं सकती, परन्तु उनके न रहने पर मुझे उदासी घेर लेती है।

वासवदत्ता ने मन ही मन सोचा—ओह। यह भी ऐसा कहती है। मैं ही जानती हूँ जो मुझ पर बीत रही है।

पद्मावती ने फिर कहा—मुझे एक सन्देह है। मैं नहीं समझ पाती कि क्या वासवदत्ता महाराज को उतना ही चाहती थीं जितना मैं?

वासवदत्ता—इससे भी अधिक। वासवदत्ता का प्रेम यदि थोड़ा होता तो वह अपने बन्धुओं का त्याग न करती।

इस समय एक दासी ने कहा—राजकुमारी। अवसर पाकर किसी दिन महाराज से कहना कि मैं भी वीणा बजाना सीखूँगी।

पद्मावती—मैंने एक दिन महाराज से कहा था। वे कुछ बोले ही नहीं। केवल ठण्डी साँस लेकर चुप रह गये।

वासवदत्ता—किस कारण?

शोक-ग्रस्त उदयन अब वसन्तक के साथ समुद्रगृह की ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि एक शय्या के अतिरिक्त वहाँ और कुछ न था। शून्य स्थान देखकर वसन्तक ने कहा—कदाचित् रानी यहाँ आकर चली गई हों। परन्तु राजा कहने लगे—वह अभी आई ही नहीं। देखो, बिछौने पर कोई सिलवट नहीं है, चादर ज्यों की त्यों बिछी है, न रजाई की तह खुली है और न तकिया किसी लेप से मलिन हुआ है। रोगी की दृष्टि के विनोद के लिए कहीं कुछ सजावट नहीं है। सचमुच कोई प्राणी रोग के कारण शय्या पर लेटा हुआ शय्या को अपने आप शीघ्र ही नहीं छोड़ता।

अतएव वहाँ बैठकर दोनों पद्मावती की प्रतीक्षा करने लगे।

राजा वहाँ पलँग पर बैठ गये, कुछ ही समय के पश्चात् उन्हें निद्रा आने लगी। मनोविनोद के लिए उन्होंने वसन्तक से कोई कथा सुनाने को कहा।

वसन्तक—उज्जयिनी नाम की एक प्रसिद्ध नगरी है। वहाँ स्नान करने के लिए रमणीय स्थान है।

उज्जयिनी के नाम से राजा को वासवदत्ता का स्मरण हो आया। इस कारण उसने वसन्तक को कोई और कथा सुनाने को कहा। दूसरी कथा अभी ठीक से आरम्भ ही हुई थी कि राजा सो गये। राजा को सोते देखकर वसन्तक ने उन्हें रजाई ओढ़ा दी और वह अपना अँगरखा लेने चला गया।

उधर वासवदत्ता पद्मावती की शिर-पीडा सुनकर समुद्र-गृह में गई। जाकर और देखकर वह बोली—अहो दासियाँ बडी असावधान है। ऐसी अवस्था मे भी पद्मावती को केवल दीपक के भरासे छाड दिया है। यह अच्छा है कि पद्मावती को नींद आ गई है और वह नियमपूर्वक साँस ले रही है। इसकी पीडा अवश्य टूट गई होगी, अतएव सोती हुई पद्मावती को जगाना उचित नहीं।

पलँग का एक भाग शून्य देखकर वासवदत्ता ने समझा कि पद्मावती उसे साथ लेटने को आदेश करती है। सो वासवदत्ता वहाँ लेट गई।

राजा उदयन उस समय स्वप्न मे बडबडाने लगे—हा! वासवदत्ता!

वासवदत्ता चौंक उठी और उठकर बैठ गई। सोचने लगी—अरे! ये तो महाराज हैं, न कि पद्मावती। कहीं मुझे इन्होंने देख तो नहीं लिया। अन्यथा यौगन्धरायण की प्रतिज्ञा टूट जायगी।

राजा ने फिर बडबडाते हुए कहा—"हा! अवन्ति-राजपुत्री!"

वासवदत्ता—अहा, ये नींद में बोल रहे है। इस समय पास कोई भी नहीं है। कुछ देर यहाँ ठहरकर अपनी आँखे तो तृप्त कर लूँ। अपने हृदय का बोझा तो हलका कर लूँ।

राजा फिर बोले—हा प्रिये! हा प्रिय शिष्ये! बोलती क्यों नहीं?

वासवदत्ता थोडी देर ठहरकर चल पडी। चलते समय वह राजा के हाथ को, जो पलँग के नीचे लटक रहा था, पलँग के ऊपर रख गई।

हाथ के स्पर्श से राजा चौंक उठे और वासवदत्ता से 'ठहरो, ठहरो' कहने लगे। दौडकर पीछा करते समय राजा किवाड से टकरा गये। उन्हें भ्रम हुआ कि यह स्वप्न है। पुन विचार हुआ कि यह तो यथार्थ घटना है।

वसन्तक के लौटने पर राजा ने उससे कहा—वासवदत्ता मरी नहीं, जीवित है।

उनकी बात बिना पूरी सुने ही वसन्तक बोल उठा--हा वासवदत्ता! रानी वासवदत्ता कहाँ? उनको मरे तो बहुत दिन हो गये।

राजा—नहीं मित्र, ऐसा न कहो। जब मैं शय्या पर सो रहा था तब मुझे जगाकर वह लुप्त हो गई। मन्त्री रुमण्वान् ने मुझे नि सन्देह ठगा है। वह जली नहीं।

वसन्तक--हा! यह कब सभव है? आपने अवश्य उन्हें स्वप्न में देखा है।

राजा ने खिन्न होकर कहा—यदि यह स्वप्न है तो अच्छा हो कि मैं इसे सदा देखता रहूँ। यदि यह भ्रम है तो मैं इसी भ्रम में पडा रहना चाहता हूँ।

वसन्तक—महाराज! इस नगर में अवन्ति-सुन्दरी नाम की एक यक्षिणी रहती है। आपने उसे देखा होगा।

राजा—नहीं मित्र ! नहीं ! आँख खुलने पर मैंने वासवदत्ता की बिना अंजन लगी आँखें और खुले केश देखे हैं। चारित्र्य का पालन कर रही उसका मुख क्षीण हो गया है। और मित्र ! देखो ! यह भुजा, जिसका उसने स्पर्श किया था, अभी तक रोमाञ्चित है यद्यपि ऐसा स्वप्न में ही हुआ था।

व्यर्थ की बातें सोचने से रोककर वसन्तक राजा को प्रासाद में ले गया। वहाँ कञ्चुकी-द्वारा विदित हुआ कि महाराज दर्शक ने सन्देश भेजा है कि आरुणि पर आक्रमण करने के लिए मन्त्री रुमण्वान् भारी सेना लेकर आया है और मगध की सेना भी सज्जित है। सो अब आप उठें। अब आपके शत्रुओं में फूट हो गई है। आपके गुणों से अनुरक्त प्रजा को आश्वासन दिया गया है। सेना की अनुपस्थिति में गृह-रक्षा का प्रबन्ध कर लिया गया है। शत्रु-नाश के लिए जो कुछ आवश्यक है, सब विद्यमान है। सेनायें गंगापार पहुँच चुकी हैं और वत्सों का देश अब आपके अधीन है।

यह समाचार सुनकर महाराज उदयन प्रसन्न हुए। वे स्वयं भी दुष्ट आरुणि पर आक्रमण करने के लिए उद्यत हो गये।

(६)

एक बार महाराज महासेन का भेजा हुआ रैभ्य गोत्र का कञ्चुकी और महारानी अङ्गारवती की भेजी हुई देवी वासवदत्ता की धाय वसुन्धरा दोनों महाराज उदयन के पास आये। पहरे पर प्रतिहारी विजया थी। उसने कह दिया कि यह

अवसर मिलने का नहीं है। कारण पूछने पर विजया ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया कि महाराज के पूर्वीय प्रासाद में कोई वीणा बजा रहा था। उसे सुनकर महाराज ने कहा कि जान पड़ता है कोई वासवदत्ता की प्रिय, घोषवती नाम की, वीणा बजा रहा है। उसके पास जाकर महाराज ने पूछा कि तुम्हें यह वीणा कहाँ मिली तो उसने कहा कि मैंने इसे नर्मदा-तट पर एक झाड़ी में पाया है। महाराज को आवश्यकता हो तो इसे ले लें। उससे वीणा लेते ही महाराज मूर्च्छित हो गये और सचेत होते ही फिर विलाप करने लगे। कहने लगे कि घोषवती! तुझे तो मैं पा गया हूँ परन्तु उस प्रिया का पता नहीं। यही कारण बताकर दासी ने कहा कि ऐसे समय आपकी सूचना कैसे दूँ।

कञ्चुकी—मेरी सूचना भी उसी के सम्बन्ध में है। जाकर निवेदन करो।

इतने में राजा को वीणा लिये हुए पूर्वीय प्रासाद से नीचे उतरते देखकर विजया ने उनसे निवेदन कर दिया। राजा ने पद्मावती से इनके आने के विषय में कहा। इनके आने की सूचना पाकर पद्मावती अति प्रसन्न होकर बोली—मुझे अपने बन्धुवर्ग का कुशल-वृत्तान्त सुनना अभीष्ट है।

राजा—तू धन्य है जो वासवदत्ता के बन्धुवर्ग को अपना बन्धुवर्ग मानती है। यह उदारता तेरे कुल और शील के अनुकूल है।

पहले पद्मावती आसन पर न बैठी। कारण पूछने पर कहने लगी कि कहीं रैभ्य कञ्चुकी और धाय वसुन्धरा को आपका दूसरा विवाह अप्रिय लगे। राजा ने उसे पास बैठा लिया।

पद्मावती और राजा अब गुरुजनों के सन्देश के लिए उत्सुक हो रहे थे। इतने में प्रतिहारी के साथ रैभ्य कञ्चुकी और धाय वसुन्धरा दोनों वहाँ आये।

कञ्चुकी ने चलते चलते सोचा कि सम्बन्धी के राज्य में आकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, पर राजकन्या की स्मृति आने से मुझे बड़ा दुःख होता है। हा दैव! यदि शत्रुओं ने राज्य न छीन लिया होता तो राजकुमारी अवश्य कुशल से रहतीं।

कञ्चुकी और धाय ने महाराज के सामने खड़े होकर उनका सत्कार किया। कुशल क्षेम सुनने सुनाने के पश्चात् कञ्चुकी ने कहा—महाराज ने कहा है कि शत्रुओं के हाथ से आपने अपना राज्य छीन लिया इस पर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई है। जो कायर और दुर्बल हैं वे सदा हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। उद्यमी पुरुष ही राज भोग करते हैं।

राजा—यह महाराज महासेन की कृपा का फल है। एक बार पराजित करके मुझे अपने पुत्रों की भाँति रक्खा, पर मैं उनकी कन्या को केवल भगा ही नहीं लाया बल्कि उसकी रक्षा भी न कर सका। अपनी कन्या की मृत्यु सुन-कर भी उन्होंने मुझसे नाता नहीं तोड़ा। क्या यह महाराज

की कृपा का फल नहीं है कि मुझे वत्सदेश फिर शत्रुओं से वापस मिल गया है ?

कञ्चुकी—महाराज। मैंने आपको महाराज महासेन का सन्देश सुना दिया, महारानी का सन्देश धाय वसुन्धरा कहेंगी।

धाय—महारानी ने कहा है कि वासवदत्ता तो अब है नहीं, पर फिर भी तुम मेरे लिए वैसे ही हो जैसे हमारे गोपालक और पालक। हम लोगों ने पहले से ही तुम्हें अपना जामाता बनाने का निश्चय कर लिया था। इसी प्रयोजन से हम लोग तुम्हें उज्जयिनी ले आये थे और वीणा सिखाने के बहाने वासवदत्ता को, बिना अग्नि को साक्षी किये ही, तुम्हारे हाथ सौंप दिया था। अपनी चञ्चलता के कारण, बिना विवाह किये ही, जब तुम उसे ले भागे तब हम लोगों ने दोनों का चित्र बनवाकर विवाह-कार्य्य सम्पादन किया। वही चित्र तुम्हारे पास भेजा है। इसे देखकर अब शान्ति-लाभ करो।

राजा—ये प्रेमभरी कृपापूर्ण बातें माताजी के योग्य ही है। यह सन्देश मुझे सैकड़ों राज्यों से भी प्रिय है। अपराधी होने पर भी मेरे ऊपर उनका स्नेह तो ज्यों का त्यों है।

पद्मावती—महाराज। मैं चित्र में लिखे गुरुजनों के दर्शन करना चाहती हूँ।

धाय ने चित्र पद्मावती को दे दिया। पद्मावती ने चित्र देखकर साश्चर्य मन ही मन सोचा कि अरे। यह तो ठीक

आवन्तिका जैसा रूप है और महाराज ने पूछा—क्या यह वहन वासवदत्ता का ठीक चित्र है ?

राजा—चित्र नहीं, मुझे तो साक्षात् वही जान पडती है। हा। ऐसे सुन्दर रूप पर ऐसी दारुण विपत्ति। हा। कैसे यह सुन्दर मुख उस अग्नि मे भस्म हुआ होगा।

पद्मावती—महाराज का चित्र देखने से मैं बता सकती हूँ कि देवी वासवदत्ता का चित्र ठीक बना है या नहीं।

धाय—देख लीजिए।

पद्मावती ने महाराज का चित्र देखकर कहा—महाराज का चित्र तो सर्वथा ठीक बना है, अत दूसरा भी अवश्य ठीक बना होगा।

राजा—देवी। मैं देखता हूँ कि चित्र देखकर एक बार तुम प्रसन्न और फिर कुछ व्यथित सी दिखाई पडी। इसका क्या कारण है ?

पद्मावती—महाराज। इसी चित्र के सदृश एक स्त्री इसी प्रासाद मे रहती है।

राजा—क्या वासवदत्ता की भाँति ?

पद्मावती—हाँ, महाराज।

राजा—तो उसे शीघ्र बुलवाओ।

पद्मावती—महाराज। मेरे विवाह के पहले एक ब्राह्मण मेरे पास उसे यह कहकर छोड गया था कि यह मेरी ब

हैं। इसका पति परदेश मे है। अत वह पर-पुरुष के सामने नहीं आती।

राजा—यदि ब्राह्मण की बहन है तो कोई दूसरी होगी। ससार में परस्पर रूप की सदृशता पाई जाती है।

इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि प्रतिहारी ने महाराज को सूचना दी कि उज्जयिनी का रहनेवाला एक ब्राह्मण द्वार पर खड़ा है। कहता है कि वह अपनी बहन को महारानी के पास छोड गया था। अब वह उसे लेने आया है।

राजा ने उसे शीघ्र प्रवेश कराने के लिए आज्ञा दी। उधर पद्मावती वासवदत्ता को लाने गई। प्रासाद में प्रवेश करते हुए उस ब्राह्मण यौगन्धरायण को इन विचारों ने घेर लिया—ओह ! महाराज के हित के लिए ही मैंने महारानी को छिपाया था। मेरे प्रयत्न सिद्ध होने पर भी मुझे यह शङ्का होती है कि महाराज न जाने क्या कहें।

महाराज के सामने पहुँचकर, सत्कार करने के लिए 'जय हो' कहकर, ब्राह्मण ने अपनी बहन वापस माँगी। इस समय पद्मावती भी वासवदत्ता-सहित आ गई। महाराज ने धरोहर सौंपने के लिए यह सोचकर कि 'धरोहर तो सबके सामने सौंपनी चाहिए' रैभ्य और धाय वसुन्धरा के सामने ही इसकी बहन के लौटाये जाने की आज्ञा दी।

पद्मावती ने ब्राह्मण यौगन्धरायण से कहा—आर्य ! अपनी बहन को सँभालो।

धाय ने ध्यान से वासवदत्ता को देखकर कहा—अरे! यह तो कुमारी वासवदत्ता है!

महाराज ने आश्चर्य पूछा—महासेन की पुत्री? फिर वासवदत्ता से कहा—देवी! पद्मावती के साथ प्रासाद में जाओ।

यौगन्धरायण—नहीं, यह तो मेरी बहन है। महाराज! आप भरत वंश में उत्पन्न हुए हैं। आप बुद्धिमान्, ज्ञानी और सदाचारी हैं। मुझसे मेरी बहन छीन लेना आपको उचित नहीं। आपको तो राजधर्म का आदर्श होना चाहिए।

महाराज ने स्वयं जाँच करनी चाही। परदा खींचने के लिए कहा गया।

इस समय यौगन्धरायण ने अपने आपको प्रकट कर दिया। राजा अति विस्मित होकर बोले—अरे! ये आर्य यौगन्धरायण हैं। ये हैं देवी वासवदत्ता? यह सत्य है या स्वप्न, जो मैं फिर से देवी को देख रहा हूँ? उस बार भी मैंने इसी भाँति इन्हें देखा था और धोखा खाया था।

यौगन्धरायण ने स्वामी से, देवी को छिपाने के अपराध की, क्षमा माँगी। वह राजा के पैरों पर गिर पड़ा।

राजा ने उसे उठा लिया और कहा—क्या आप सचमुच मन्त्री यौगन्धरायण हैं? हम जब-जब विपत्ति के समुद्र में पड़े हैं तब-तब आपने मिथ्या-उन्माद से, युद्ध-द्वारा और शास्त्र में लिखे हुए अन्य उपायों से हमारा उद्धार किया है।

यौगन्धरायण ने मुँह नीचा करके कहा—हम तो महाराज के भाग्य के अनुयायी हैं।

पद्मावती ने भी वासवदत्ता से क्षमा माँगी और कहा—देवी! अनजान में मैंने आपसे सखी का-सा व्यवहार करने का अपराध किया है, अतः आपके चरण छूकर क्षमा माँगती हूँ।

वासवदत्ता ने पद्मावती को उठा लिया और कहा—सौभाग्यवती! इसमें मेरा ही अपराध है।

राजा ने यौगन्धरायण से पूछा—वासवदत्ता के छिपाने का क्या कारण था?

यौगन्धरायण—इसका कारण केवल कौशाम्बी की रक्षा थी।

राजा—पद्मावती के हाथ में उसे क्यों सौंपा था?

यौगन्धरायण—बात यह थी कि पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों ने कह रक्खा था कि राजकुमारी पद्मावती आपकी दूसरी रानी होगी।

राजा को अब ज्ञात हुआ कि यह सब वृत्तान्त मन्त्री रुमण्वान् भी जानता था। परन्तु यह कौशल सबने अपने स्वामी के कल्याण के लिए ही रचा था।

महाराज उदयन ने अब रैभ्य, कञ्चुकी और वसुन्धरा धाय के साथ—पद्मावती और वासवदत्ता-सहित—उज्जयिनी में अपने ससुर महाराज प्रद्योत (महासेन) के पास जाने का निश्चय किया।

---

(२) मालविकाग्निमित्र

(१)

विदिशा नगरी में अग्निमित्र नाम के एक राजा थे। इनकी दो रानियाँ था—धारिणी और इरावती। धारिणी के वसुमित्र नाम का पुत्र था और वसुलक्ष्मी नाम की कन्या थी।

महारानी धारिणी की सेवा में मालविका नाम की एक दासी थी। महारानी ने उसे नाट्याचार्य गणदास को, नृत्य आदि सिखाने के लिए, सौंप दिया।

महारानी की वकुलावलिका नाम की एक और दासी थी। एक दिन कार्यवश कहीं जाते हुए वकुलावलिका को मार्ग में कुमुदिका नाम की दासी मिल गई। वह महारानी की 'नाग-मुद्रा' लेकर जा रही थी। वकुलावलिका को देखकर कुमुदिका ने पूछा—सखी! कहाँ जा रही हो?

वकुलावलिका—महारानी धारिणी ने मुझे गणदास के पास यह पूछने को भेजा है कि मालविका उपदेश ग्रहण करने में कैसी है।

कुमुदिका—सखी! नृत्य शिक्षा के व्याज से दृष्टि-पथ में दूर हटी हुई मालविका को महाराज ने कैसे देख लिया? नृत्यशाला के नियमानुसार महाराज अकले वहाँ जा नहा सकते।

वकुलावलिका—ओह ! महारानी के पास चित्र में इसे देखा था।

कुमुदिका—कैसे ?

वकुलावलिका—चित्रशाला में महारानी एक बार चित्रकार का एक नया रंगीन चित्र देख रही थीं। महाराज भी वहाँ पहुँच गये। वह चित्र महाराज ने भी देखा और मालविका का चित्र देखकर प्रश्न किया—यह दासी तो नई है और महारानी के पास इसका चित्र है। इसका क्या नाम है ? जब कोई न बोला तब वसुलक्ष्मी ने नाम बता दिया। तब से मालविका महाराज के सामने नहीं आने पाती।

इतना सुनकर कुमुदिका ने अपना मार्ग पकड़ा। वकुलावलिका भी गणदास को रङ्गशाला से बाहर निकलते देखकर उसके पास पहुँच गई और महारानी का सन्देश सुना दिया।

गणदास ने सन्देश के उत्तर में कहा—महारानी से निवेदन करना कि मालविका परम निपुण है। जो कुछ उसे सिखाता हूँ उसमें वह अपने गुण प्रकट करती है।

नाट्याचार्य को ऐसी चतुर शिष्या के विषय में जानने की उत्सुकता हुई। उसने पूछा—महारानी के हाथ मालविका कैसे लगी ?

वकुलावलिका—महारानी के एक भाई वीरसेन हैं। वे महाराज की ओर से नर्मदा के किनारे अन्तपाल गढ़ के

रक्षक हैं। यह लड़की कला सीखने के योग्य थी। अत उन्होंने इसे अपनी बहन महारानी को भेंट कर दिया।

गणदास ने सोचा कि यह रूप से तो कोई उच्च कुल की कन्या जान पड़ती है। फिर बकुलावलिका से कहा—इसे शिक्षा देने में यश होगा। किसी ने कहा है कि जिस प्रकार बादल का पानी समुद्र की सीप मे पडकर मोती बन जाता है, उसी प्रकार सुयोग्य पात्र में दी हुई गुरु की विद्या विशेष गुणवाली हो जाती है।

उधर राजा अग्निमित्र को मन्त्री वाहतक इस समय विदर्भ-राज का एक पत्र सुना रहे थे। उसमे लिखा था—"आपकी आज्ञा है कि 'तुम्हारा चचेरा भाई कुमार माधवसेन, सम्बन्ध की प्रतिज्ञा से, हमारे पास आ रहा था। उसे तुम्हारे सीमा-दुर्ग के रक्षक ने मार्ग मे ही पकड़ लिया है। हमारे लिए उसे स्त्री तथा बहन सहित मुक्त करना उचित है।' इसके उत्तर मे मेरा यही कथन है कि पकड़े जाते समय माधवसेन की बहन कहीं खो गई है। उसके ढूँढने का मैं यत्न करूँगा। और आप यह जानते हैं कि समान वंश के राजाओं का बर्ताव कैसा होता है। सो यदि आप हमारे साले मौर्य-सचिव को मुक्त कर दे तो मैं माधवसेन को शीघ्र ही मुक्त कर दूँगा।"

इस उत्तर में अपनी समानता देखकर अग्निमित्र क्रोधित हुए और वीरसेन को आज्ञा दी कि विदर्भराज को समूल उखाड़ दे।

वाहतक 'तथास्तु' कहकर चला गया।

इसी समय राजा के पास उनका मित्र गौतम आ पहुँचा। राजा ने उससे अपने कार्य के विषय मे पूछा कि कोई उपाय सूझा। गौतम ने कान में कुछ कहा। राजा प्रसन्न हो गये। उन्होंने समझा कि मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायगा।

इतने में एक ओर से किसी के झगडने का शब्द सुनाई दिया। कोई कह रहा था—बहुत आत्मश्लाघा से क्या? राजा के सामने ही हमारी छोटाई-बडाई का निर्णय हो जायगा।

राजा ने यह सुनकर गौतम से कहा—मित्र! तुम्हारी चतुराई का वृक्ष फूलने लगा।

इसी समय आचार्य हरदत्त और गणदास वहाँ आ पहुँचे।

गणदत्त ने निवेदन किया—महाराज! आज हरदत्त ने प्रधान सभ्यो के सामने मुझसे कहा कि मैं इसके चरणो की धूलि के भी तुल्य नहीं हूँ।

हरदत्त—महाराज! इन्हीं ने पहले छेडा है। ये कहते थे कि तुममे और हममे समुद्र और गडही का-सा अन्तर है। सो आप शास्त्र और प्रयोग में परीक्षा लें।

गौतम ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया। परन्तु राजा ने महारानी और योगिनी के सामने ही न्याय करना उचित समझा, अन्यथा महारानी इसमे पक्षपात समझतीं। अत महारानी और योगिनी बुलाई गई।

राजा ने अपने आपको और महारानी को पक्षपाती समझकर योगिनी को मध्यस्थ बनाया। दोनों आचार्यों ने

भी इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। पहले तो योगिनी ने टालना चाहा परन्तु अन्त में उसे मध्यस्थ बनना स्वीकार करना ही पडा। महारानी को तो यह कलह ही अप्रिय था। राजा ने योगिनी से पूछा—इन दोनों का निर्णय कैसे किया जाय ?

योगिनी—कोई किसी कला में स्वय प्रवीण होता है और कोई दूसरे को उसकी शिक्षा देने में विशेप कुशल होता है। वास्तव में *श्रेष्ठ गुरु वही है जिसमे ये दोनों गुण हों।*

गौतम को तो इस विचार का समर्थन करना ही था, अत वह बोला—सुना, उपदेश देखकर न्याय होगा।

हरदत्त और गणदास यह मान गये। धारिणी ने कहा—यदि मूढ शिष्या नाट्योपदेश बिगाड दे तो गुरु का क्या दोष ?

राजा—महारानी ! यह गुरु का ही दोष समझा जाता है। अयोग्य को शिक्षा देना ही मूर्खता है।

महारानी सब समझ गई थीं। वे गणदास की ओर मुँह करके बोलीं—तुम्हारी शिष्या तो अभी थोडे ही समय से शिक्षा पा रही है। उसे बुलाना नाट्योपदेश का अपमान करना है।

परन्तु गणदास ने कहा—इसी लिए तो मेरा आग्रह है।

अब महारानी ने सोचा कि मेरी चाल नहीं चल सकती। उन्हें योगिनी पर क्रोध आता था। वे योगिनी से कहने लगीं कि तुम मुझ जागती हुई को भी सोई हुई समझती हो। विवश होकर महारानी को स्वीकृति देनी पडी। दोनों के प्रयोग

देखे जाने का निश्चय हुआ। दोनों नाट्याचार्य सङ्गीतशाला में सामग्री ठीक करने चले गये।

महारानी क्रोधाग्नि मे प्रज्वलित हो रही थी। राजा से कहने लगी—आपकी इतनी निपुणता यदि राजकार्य में हो तो अधिक श्रेयस्कर है।

राजा—आप मेरा प्रयोजन कुछ और न समझें। मैंने इसमे कुछ नहीं किया। प्राय समान विद्यावाले परस्पर स्पर्धा रखते हैं।

(२)

सङ्गीतशाला मे राजा, गौतम, धारिणी, योगिनी आदि सब उपस्थित हुए। योगिनी ने गणदास का प्रयोग पहले देखने का आदेश किया। गणदास ने मालविका को बुलाया। मालविका के रूप-लावण्य का राजा पर तीव्र प्रभाव पडा।

मालविका ने आकर गाना आरम्भ किया—

पीय मिलन है कठिन छोंड़ु ताकी आसा हिय।
फरकत नाई आँखि सगुन केहिकर यहि मानिय॥
अब फिर दरसन होय हाय कब, तरसत मो जिय।
हौं परबस मे परी हियो अरुझो तोहन पिय॥

इतना गा चुकने पर मालविका ने भाव का भी अभिनय किया। सोने में सुगन्ध का काम हो गया। राजा इस अभिनय पर मुग्ध हो गये। योगिनी ने निर्णय किया कि जो कुछ देखा है सब निर्दोष है। यही सम्मति राजा ने भी प्रकट की।

गणदास ने अपनी आचार्य की उपाधि सफल समझी। वह मालविका को साथ लेकर चला गया और हरदत्त ने अपना प्रयोग दिखाने के लिए आज्ञा माँगी।

राजा ने मन में कहा कि देखने का काम तो हो गया। परन्तु उससे प्रकट रूप में कहा—हाँ, हम उत्सुक हैं।

हरदत्त ने आज्ञा पाकर अपने आपको अनुगृहीत समझा। परन्तु इसी समय सूचना मिली कि दोपहर हो गया।

'दोपहर हो गया' सुनकर गौतम बिना कुछ खाये कब चुप रह सकता था। वह कहने लगा—ओह! भोजन का समय हो गया। वैद्य कहते ह कि ठीक समय पर भोजन न करना हानिकारक है। हरदत्त! तुम क्या कहते हो?

हरदत्त—यहाँ और कुछ कहने का अवकाश ही नहीं।

राजा ने भी कह दिया—अच्छा, तो आपका प्रयोग कल देखेंगे। अब विश्राम कीजिए।

सभा विसर्जित हुई।

(३)

एक दिन योगिनी ने समाहितिका नाम की अपनी दासी को महाराज की वाटिका मे, रानी के उपहार के लिए, नारंगी लाने भेजा। वहाँ मधुकरिका मालिन ने समाहितिका दासी से पूछा—दोनों गुरुओं में से योगिनी ने किसके नाट्योपदेश को श्रेष्ठ बताया?

समाहितिका—यश गणदास को ही मिला।

मधुकरिका—मालविका के विषय में कुछ अपवाद सुना जाता है ?

समाहितिका—यही कि महाराज उस पर आसक्त हैं; परन्तु महारानी धारिणी के हृदय को नहीं दुखाना चाहते, इससे वे अपनी प्रभुता नहीं दिखाते। मालविका भी इन दिनों उपभुक्त माला के समान मुरझा रही है। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानती। अच्छा, अब जाती हूँ।

मालिन भी साथ हो ली। वह महारानी से कहना चाहती थी कि रक्त अशोक वृक्ष के विकसित होने में विलम्ब हो रहा है। उसके मनोरथ के पूर्ण करने का उपाय कर दीजिए। इस प्रकार दोनों चल पड़ीं। दासी कौशिकी के पास चली गई मालिन महारानी धारिणी के पास।

इधर राजा मालविका के लिए विह्वल थे। किसी कार्य में चित्त नहीं लगता था। गौतम ने राजा को स्मरण कराया कि रानी इरावती ने निपुणिका द्वारा उन्हें रक्ताशोक पुष्पों की कलियों का उपहार भेजा था और कहला भेजा था कि "वसन्त-उत्सव है, स्वामी के साथ झूला झूलने की मेरी इच्छा है।" यह सँदेशा पाकर आपने वहाँ पहुँचने के लिए वचन दिया था, सो वहाँ चलो। गौतम के साथ, राजा प्रमदावन में गये।

प्रमदावन की शोभा विचित्र थी। उस वन ने राजा को लुभाने के लिए, युवती के वेष को लजानेवाले, वसन्त-काल के

पुष्पों को धारण कर रक्खा था। भाँति-भाँति के पुष्प विकसित हो रहे थे।

महारानी धारिणी की आज्ञा से मालविका भी प्रमदावन में चली आई। महारानी ने उससे कहा था कि गौतम की चपलता से मैं झूले पर से गिर गई थी। पैरों में चोट आ गई है। तुम जाकर रक्ताशोक का मनोरथ पूर्ण करो। यदि पाँच दिन के भीतर पुष्प निकल आयेंगे तो मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर दूँगी। सो मालविका बकुलावलिका की प्रतीक्षा करने लगी। वह नूपुर आदि आभूषण लेकर पीछे आ रही थी।

गौतम और राजा की दृष्टि इस पर जा पड़ी। दैवयोग से वे इसके निकट ही थे। वे मालविका के हार्दिक भावों के सूचक वचनों को सुनने लगे। जब मालविका ने कहा कि 'हे मन! तू ऐसा आश्रय-हीन असीम मनोरथ त्याग दे। मुझे व्यथित करने से तुझे क्या लाभ होगा?' तब राजा को निश्चय हो गया कि मालविका उससे प्रेम करती है।

कुछ समय के अनन्तर अलक्तक (महावर) और नूपुर आदि लिये बकुलावलिका वहाँ आई और बोली—महारानी ने तुम्हें इस कार्य में नियुक्त करके ठीक किया है। अपना एक पैर इधर बढ़ाओ। मैं अलक्तक लगाकर नूपुर पहना दूँ। महारानी उत्सुक हैं कि यह अशोक शीघ्र फूले।

यह सुनकर राजा समझ गया कि यह अशोक के मनोरथ पूर्ण करने का उपाय है।

इस समय रानी इरावती भी दासी निपुणिका-सहित वहाँ आ गई। निपुणिका ने देखा कि अशोक की छाया में वकुलावलिका मालविका के पैरों में अलक्तक लगा रही है। मालविका को वहाँ देखकर इरावती चकित हुई। परन्तु निपुणिका ने कहा कि रानी के पैरों में, झूले से गिर पड़ने के कारण, पीड़ा होने से उन्होंने अशोक की दोहद-पूर्ति के लिए मालविका को भेजा है।

उस समय वकुलावलिका महावर लगा चुकी थी। वह मालविका से पूछने लगी—कहो, महावर की रेखाएँ ठीक लगी हैं ?

मालविका—ऐसी चित्रकारी की शिक्षा तुझे किसने दी है ?

वकुलावलिका—महाराज ही मेरे गुरु हैं। तुम्हारा पैर तो रक्त कमल के सदृश जान पड़ता है। अब तुम सब प्रकार से महाराज की गोद में बैठने के योग्य हो।

रानी इरावती ने ये वचन सुन लिये, उसने निपुणिका की ओर देखा। वकुलावलिका विश्रब्ध होकर और ऐसी ही बातें करने लगी जिससे मालविका को विश्वास हो जाय कि राजा उसे चाहते हैं। रानी इरावती समझ गई कि यह पहले से ही सिखाई हुई है।

बातों ही बातों में वकुलावलिका ने मालविका के दूसरे पैर में भी महावर लगा दिया। उसने नूपुर पहनाकर कहा—हे सखी, उठो, अशोक के विकास करनेवाली आज्ञा का पालन करो।

अब इरावती को निश्चय हो गया कि यह कार्य महारानी के आदेश से हुआ है। अशोक पर पादाघात करके मालविका बोली—यह क्या हमारे मनोरथ को पूर्ण करेगा ?

वकुलावलिका—सखी, इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं। यदि तुम्हारे पैरों से सम्मानित होकर भी विकसित न हो तो यह अशोक ही निर्गुण होगा।

यह सब लीला देखकर राजा का मन मुग्ध हो गया। वह अपने मित्र गौतम से, पास चलने के लिए, कहने लगा। गौतम ने भी कहा—हाँ, चलकर हँसी करनी चाहिए।

दोनों मालविका की ओर बढ़े। निपुणिका ने इन्हें देख लिया और रानी इरावती से कह दिया कि महाराज आ गये। इरावती तो जानती ही थी कि महाराज यहीं कहीं होंगे।

गौतम ने आगे बढ़कर कहा—तुम्हारे लिए क्या यह उचित था कि महाराज के अशोक को बायें पैर से ठुकराओ ?

मालविका और वकुलावलिका दोनों ठिठक गईं।

गौतम ने वकुलावलिका को डाँटकर कहा—क्यों री, तूने इसका अभिप्राय जानकर भी इस अनुचित कार्य से इसे नहीं रोका ?

मालविका डर गई। वकुलावलिका ने कहा—इसने तो महारानी की आज्ञा का पालन किया है। इस कार्य में यह पराधीन है। महाराज, इसे क्षमा करें।

ऐसा कहकर दोनों महाराज के चरणों पर गिर पड़ीं। राजा ने कहा—यदि ऐसा है तो तू निर्दोष है। उठ!

राजा ने मालविका का हाथ पकड़कर उठाया और कहा—अशोक-वृक्ष पर पादाघात करने के कारण तुम्हारे कोमल चरण मे चोट तो नहीं आ गई?

मालविका लज्जित हो गई और वकुलावलिका से बोली—वकुलावलिका! आओ, चलें। महारानी से निवेदन कर दे कि काम कर दिया।

वकुलावलिका ने मालविका मे कहा कि महाराज से आज्ञा ले लो।

राजा—तो जाओगी? तो अब हमारा भी मनोरथ पूर्ण करना।

रानी इरावती ने यह सब सुन लिया। वह तुरन्त आगे बढ़कर बोली—हाँ, हाँ, पूर्ण करो, अशोक मे तो केवल पुष्प आते हैं, यहाँ फल-फूल दोनों होगे।

रानी इरावती को देखकर सब स्तब्ध हो गये। मालविका और वकुलावलिका रानी से क्षमा माँगकर खिसक गईं।

इरावती राजा को बुरा-भला कहने लगी—पुरुष विश्वासघाती होते हैं। मैं आपके मिथ्या वचनों पर विश्वास करती थी। मुझे आपसे ऐसी आशा न थी।

राजा ने कुछ बहाना करना चाहा। और कुछ न सूझने पर उन्होंने यही कह दिया—प्रिये! मालविका से मुझे क्या काम? तुम्हारे बिना मैंने उससे तनिक जी बहलाया था।

इरावती—आप तो विश्वास के योग्य हैं। मुझे पता न था कि आपको विनोद के लिए कोई ऐसा पदार्थ प्राप्त हो गया है, नहीं तो मैं अभागिनी यहाँ न आती।

क्रोधित होकर रानी जाने लगी। राजा ने क्षमा माँगी परन्तु रानी क्रोधवश थी, उसने राजा की एक न सुनी। कहने लगी कि मुझे तुम्हारा विश्वास नहीं। राजा ने उसके पैर तक छुए किन्तु रानी रुष्ट थी, वह चली गई।

(४)

राजा मालविका के लिए भय करने लगे। गौतम को उन्होंने मालविका का वृत्तान्त जानने के लिए भेजा था और उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

गौतम ने आकर कहा—उसे महारानी ने बन्दीगृह में डाल दिया है। योगिनी ने मुझसे कहा है कि कल ही महारानी इरावती, बड़ी महारानी धारिणी के पास, पीडा-ग्रस्त पैरों का समाचार पूछने आई थी। महारानी धारिणी ने पूछा कि क्या तुमको महाराज ने दर्शन दिये। इरावती ने कहा कि "यह पूछना व्यर्थ है, क्या आप नहीं जानतीं कि उनका प्रेम-भाव तो सेविकाओं पर चला गया है।" महारानी ने बार-बार पूछकर इरावती से सब वृत्तान्त जान लिया। इसका फल यह हुआ है कि मालविका और बकुलावलिका बेड़ी पहने, पाताल में नाग-कन्याओं के समान,

अँधेरे स्थान में निवास कर रही हैं। महारानी ने माधविका को आज्ञा दे रक्खी है कि मेरी अँगुली की नागमुद्रा देखे बिना इन्हें न छोड़ना।

यह सुनकर महाराज बड़े दुःखित हुए। वे ठंढी साँस लेकर कहने लगे कि क्या कुछ उपाय नहीं है। गौतम ने कहा कि म आपके कान में कहता हूँ जिसमें कोई सुन न ले।

गौतम ने तब महाराज के कान में कुछ कह दिया। उपाय सुनकर महाराज प्रसन्न हो गये। गौतम के बताये उपाय के अनुसार कार्य आरम्भ किया गया। महाराज महारानी धारिणी का पैर देखने गये। कुछ ही समय के पश्चात् यज्ञोपवीत से अँगूठा बाँधे हुए गौतम व्याकुल-सा वहाँ आकर चिल्लाने लगा—बचाइए, बचाइए। मुझे साँप ने डस लिया।

यह सुनकर सब लोग व्याकुल हो गये।

राजा ने दुःखित होकर पूछा—आप कहाँ घूम रहे थे?

गौतम—'महारानी को देखना है' इस कारण पुष्प लेने के लिए मैं प्रमदावन गया था।

धारिणी बीच ही में बोल उठी—हाय, हाय! मैं ब्राह्मण के जीवन-सङ्कट का कारण हुई।

गौतम फिर कहने लगा—अशोक पुष्पों का गुच्छा तोड़ने के लिए मैंने ज्यों ही हाथ बढ़ाया त्यों ही कोटर से निकलकर काल-रूपी साँप ने मुझे डस लिया।

गौतम ने साँप के काटने के दो चिह्न दिखाये। अब ध्रुवसिद्धि वैद्य को बुलाने के लिए जयसेना भजी गई। गोतम विप का फैलना दिखाता था। वह कहता था—हाय! मेरे अङ्ग टूट रहे हैं। हाय! म मरा!

धारिणी—हाय, साँप ने बहुत बुरा काटा। ब्राह्मण को सँभालो। सेवक जनों ने गौतम को सहारा दिया।

गौतम राजा की ओर देखकर कहने लगा—महाराज! मैं आपका शैशव-काल का मित्र हूँ। उसका विचार करके मेरी पुत्रहीना माता का पालन करना।

इतने मे जयसेना ने लौटकर कहा कि वैद्य ध्रुवसिद्धि ने गौतम का वहीं बुला भेजा है। राजा ने गौतम को, सेवक-जनों-द्वारा सहारा दिलाकर, वैद्यराज के पास भेज दिया।

जाते समय गौतम महारानी से कहता गया कि "महाराज की सेवा में मैंने आपके जो अपराध किये हों उन्हे क्षमा करना।" धारिणी ने उसे सौ वर्ष जीने का आशीर्वाद दिया।

गौतम को देखकर वैद्य ने, जलकुम्भ बनाने के लिए, जयसेना से कहा कि कहीं से नागमुद्रा मँगवाओ। जयसेना ने आकर राजा से निवेदन किया। धारिणी ने यह सुनकर अपनी ही नागमुद्रा दे दी और कह दिया कि फिर इसे मुझे ही दे जाना।

राजा ने भी कहा—जयसेना! अपना काम करके मुद्रा शीघ्र लौटा जाना।

कुछ समय के पश्चात् जयसेना ने आकर सूचना दी कि गौतम का विष दूर हो गया। फिर उसने महाराज से निवेदन किया कि किसी राज-कार्य-वश मन्त्री आपके दर्शन करना चाहते हैं।

राजा बाहर चले गये। जयसेना भी उनके साथ हो ली। दोनों ही गुप्त मार्ग से प्रमदावन को चले। मार्ग में गौतम मिल गया। उसने महाराज से कहा—बधाई हो। कार्य सिद्ध हो गया।

अब महाराज ने जयसेना को लौटा दिया। उन्होंने गौतम से पूछा—माधविका तो बड़ी चतुर है। क्या उसने यह नहीं पूछा कि इन दोनों वन्दिनियों को मुक्त कराने का कारण क्या था? महारानी ने अपने सेवक को छोड़कर आपको क्यों भेजा?

गौतम—उसने पूछा तो था, किन्तु मैंने कह दिया कि महाराज से ज्योतिषियों ने कहा है कि "आपके ग्रह अच्छे नहीं हैं। सब वन्दी मुक्त करवा दीजिए।" यह सुनकर, इरावती के भावों की रक्षा के अभिप्राय से, धारिणी ने मुझे ऐसी आज्ञा दी है जिससे सब यह समझें कि राजा ने इनको मुक्त किया है। माधविका ने इस कारण को ठीक समझकर मालविका और वकुलावलिका को मुक्त कर दिया। उन्हें मैं समुद्र-गृह में छोड़ आया हूँ।

महाराज ने गोतम की अत्यन्त प्रशंसा की। उन्होंने उसे छाती से लगा लिया। अब दोनों समुद्र गृह की ओर चल पड़े। वहाँ पास ही इरावती की दासी चन्द्रिका फूल चुन रही थी। उसे देखकर ये दोनों ओट में हो गये। वहाँ से राजा एक झरोखे से यह देखने लगे कि कुञ्ज में बैठी मालविका और बकुलावलिका क्या यथार्थ में मेरी प्रतीक्षा कर रही हैं।

उस समय बकुलावलिका और मालविका दोनों ही चित्र में महाराज को देखकर प्रणाम कर रही थीं। मालविका ने कहा—सखी! उस दिन महाराज के रूप-दर्शन से आज जैसी तृप्ति नहीं हुई थी। आज भले प्रकार उन्हें निहार लिया। फिर इरावती की ओर महाराज की स्नेह-दृष्टि देखकर माल विका कुछ निराश-सी हो गई। बकुलावलिका ने और चिढ़ाने के लिए कहा—अरी! यह महाराज को अधिक प्रिय है।

मालविका—तो फिर मैं क्यों दुःख सहन करूँ? अब उसने क्रोध पूर्वक मुँह फेर लिया।

इसी समय राजा और गोतम भीतर चले गये। दोनों ने राजा का स्वागत किया। तब गोतम, अशोक वृक्ष को मृग से बचाने के बहाने, बकुलावलिका को साथ लेकर बाहर चले गये। केवल मालविका और राजा भीतर रह गये।

बकुलावलिका कहीं छिप गई। गोतम बाहर द्वार पर ठहर गया और शिला के सुखदायी स्पर्श के कारण लेट गया और सो गया।

कुछ समय के पश्चात् चन्द्रिका-द्वारा निपुणिका को विदित हो गया कि गौतम समुद्र-गृह के द्वार पर सो रहा है। निपुणिका ने यह वृत्तान्त रानी इरावती से कह दिया। इरावती निपुणिका के साथ मृत्यु सकट से बच गये गौतम को देखने के लिए, और चित्रगत महाराज के प्रति आदर-भाव दिखाने के लिए, समुद्र-ग्रह की ओर आ गई। इरावती के लिए हृदय-शून्य महाराज और उनके चित्र में कुछ अन्तर न था। इसलिए इरावती ने अपने अशिष्टाचार का परिमार्जन करने के लिए महाराज का चित्र ही पर्याप्त समझा। वहाँ पहुँच कर निपुणिका ने गौतम को समुद्र-गृह के द्वार पर सोते देखा। वह नींद मे भी मालविका का नाम लेकर कह रहा था कि तुम इरावती से बढ जाओ।

निपुणिका ने गौतम को डराने के अभिप्राय से उस पर लकडी फेक दी। गौतम शीघ्र उठकर चिल्लाने लगा—हाय रे। मेरे ऊपर साँप गिर पडा।

यह सुनकर राजा शीघ्र बाहर निकल आये। महाराज को साँप के निकट जाने से रोकती हुई मालविका भी आ गई। वकुलावलिका ने भी प्रकट होकर सकेत-द्वारा मना किया परन्तु राजा तब बाहर निकल चुके थे।

गोतम ने लकडी देखकर कहा—क्या? यह लकडी है? मैं तो समझा था कि केतकी के काँटों से जो मैंने साँप के डसने का-सा चिह्न बनाया था, वह सचमुच हो गया। इरा-

वती ने उन सबको देख लिया। उसने वकुलावलिका से कहा—कुटनी, तूने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली।

वकुलावलिका ने हाथ जोड़कर कहा—महारानी मेरे ऊपर प्रसन्न हों। मेंढकों के हर्राने से क्या इन्द्र पृथ्वी को भूल जाता है ? नहीं, वह तो और भी अधिक वर्षा करके पृथ्वी के प्रति अपना अनुराग प्रकट करता है।

राजा ने बहाना किया कि उत्सव के दिन सेवकों को, अपराध करने पर भी, मुक्त करना चाहिए। अत मैंने इन दोनों को भी मुक्त कर दिया है। इसी से ये मुझे धन्यवाद देने आई थीं।

इसी समय जयसेना व्याकुल-सी वहाँ आई और कहने लगी—महाराज! कुमारी वसुलक्ष्मी गेंद के पीछे दौड़ते समय वानर से डर गई है। वह महारानी की गोद में बैठने पर भी काँप रही है, उसका चित्त स्वस्थ नहीं होता।

यह घटना सुनकर इरावती ने महाराज को वहाँ शीघ्र पहुँचकर उसे धीरज बँधाने को कहा। राजा शीघ्र कुमारी के पास चल दिये। इरावती, गौतम आदि सब चले गये। केवल मालविका और वकुलावलिका खड़ी भयभीत हो रही थीं। परन्तु इसी समय मालिन का शब्द सुनाई दिया कि अशोक पाँच दिन के भीतर ही विकसित हो गया। यह सुनकर दोनों प्रसन्न हो गईं और मालिन का शब्द जानकर उसके पीछे-पीछे ही चली गईं।

(५)

पुष्यमित्र ने अपने पुत्र अग्निमित्र को विदिशा का उपराज बना दिया था। पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ के लिए अश्व छोड़ा और अश्व-रक्षा के लिए कुमार वसुमित्र को नियुक्त किया। यह सूचना पाकर कुमार की दीर्घायु के निमित्त महारानी धारिणी दान-पुण्य करने लगीं।

एक दिन वे मङ्गलगृह में बैठी, विदर्भ से आये हुए, भाई के पत्र को सुन रही थीं। पत्र से विदित हुआ कि महाराज की सेना ने, वीरसेन की अध्यक्षता में, विदर्भ देश के राजा को पराजित कर दिया। माधवसेन मुक्त कर दिये गये। एक दूत को अमूल्य रत्न आदि उपहार देकर, कला-निपुण सेविकाओं के साथ, महाराज की सेवा में भेज दिया है। वह कल महाराज से मिलेगा।

इस विजय के समाचार से सारे राजप्रासाद में प्रसन्नता छा रही थी। महारानी धारिणी को प्रसन्नता का एक और कारण था। गौतम को भी वह विदित हो चुका था। उसने राजा से कहा—मुझे जान पड़ता है कि आप शीघ्र ही अत्यन्त सुखी होंगे।

राजा—कैसे ?

गौतम—महारानी ने आज चतुर कौशिकी (योगिनी) से कहा है कि आपको शृंगार करने के चातुर्य का गर्व है, सो मालविका के शरीर पर विवाहकाल का-सा शृंगार कर दीजिए। इस कारण मालविका विशेष आभूषणों से

अलङ्कृत की गई है। आशा है महारानी आपका मनोरथ पूर्ण कर दें।

राजा—मित्र! महारानी धारिणी सदा मेरे अनुकूल रही है। सम्भव है, मेरी ओर से ईर्ष्या-रहित होकर उसने ऐसा किया हो।

इतने में जयसेना ने आकर महाराज से निवेदन किया—पुष्प विकसित होने के कारण रक्ताशोक की छवि देखने के लिए महारानी ने आपको बुलाया है। चलकर उनके प्रयत्न को सफल कीजिए। वे स्वयं वहाँ प्रतीक्षा कर रही हैं।

अग्निमित्र ने प्रस्ताव स्वीकार कर जयसेना को भेज दिया और गौतम के साथ आप भी वहाँ चल पड़े।

राजा ने प्रमदावन में पहुँचकर वहाँ की विचित्र शोभा देखी। वसन्त अपने पूर्ण यौवन पर था। अशोक वृक्ष ने लाल पुष्पों की चादर ओढ़ रक्खी थी। मालविका का भी रूप-लावण्य आज विकसित हो उठा था। उसे यद्यपि अपने शृंगार का कारण ज्ञात था परन्तु उसे विश्वास नहीं होता था। कमलपत्र पर जल-बिन्दु की नाईं उसका हृदय कम्पित हो रहा था। परन्तु बाईं आँख फड़कने से शुभ सूचित होता था।

महाराज जब वहाँ पहुँच गये तब महारानी धारिणी ने मालविका को पास खड़ा किये ही उनका स्वागत किया। महाराज अशोक वृक्ष की शोभा देखकर बैठे ही थे कि मन्त्री ने सूचना भेजी कि विदर्भ से दो कला-निपुण स्त्रियाँ आई थीं।

मार्ग की परिश्रम से श्रान्त होने के कारण वे आपकी सेवा में नहीं भेजी गई थीं। अब आपकी सेवा के योग्य हैं। कहिए क्या आज्ञा है ?

महाराज ने दोनों को बुला भेजा। दोनों ने आकर प्रणाम किया और महाराज की आज्ञा पाकर बैठ गई।

राजा—तुम लोगों ने कौन-सी कला सीखी है ?

दोनों—हम संगीत में कुशल हैं।

राजा—महारानी ! इनमें से एक को ले लो।

धारिणी—मालविका ! इधर देखो। तुम्हें सङ्गीत के समय कौन-सी सहकारिणी ठीक पड़ेगी ?

मालविका का नाम सुनकर आगन्तुक दोनों स्त्रियों ने उसे पहचान लिया। वे हाथ जोड़कर खड़ी हो गईं। मालविका और ये स्त्रियाँ आँसू गिराने लगीं। सब लोग साश्चर्य देखने लगे। राजा ने पूछा—तुम दोनों कौन हो और यह कौन है ?

दोनों—महाराज ! यह हमारी राजकुमारी है।

राजा—कैसे ?

दोनों—महाराज ! सुनिए। विदर्भ देश के राजा को जीतकर आपने जिस कुमार माधवसेन को मुक्त कराया है उसी की यह छोटी बहन है।

धारिणी सुनकर चकित हुईं। बोलीं—ओह ! यह राजकुमारी है। मैंने चन्दन जैसी लकड़ी को, खड़ाऊँ बनाकर, दूषित किया।

राजा ने इस अवस्था का कारण पूछा तो मालविका ने साँस लेकर मन में ही कहा कि दैवयोग से।

दूसरी कला-निपुण स्त्री ने कहा—जब कुमार माधवसेन पकड़े गये तब उनके मन्त्री सुमति इन्हे, हम लोगों से छिपाकर, न जाने कहाँ ले गये थे।

इसके आगे का वृत्तान्त इस स्त्री को ज्ञात न था। तब योगिनी ने कहा कि मुझसे पूछिए। योगिनी के शब्द से इन दोनों ने पहचान लिया कि यह कौशिकी है। योगिनी ने अब आगे का वृत्तान्त कहना आरम्भ किया—मेरे बड़े भाई सुमति माधवसेन के मन्त्री थे। जब इनकी यह दशा हुई तब आपके साथ सम्बन्ध करने की इच्छा से इनको मेरे सङ्ग लेकर वे विदिशा के कुछ यात्रियों के साथ चले। दिन की यात्रा समाप्त कर वन के मध्य में ही वे विश्राम के लिए ठहरे। वहाँ धनुष-बाण लिये डाकुओं ने घेर लिया। सैनिकों ने कुछ समय तक सामना किया परन्तु फिर भाग गये। राजकुमारी की रक्षा करते हुए सुमति ने स्वामी का ऋण अपने प्राणों-द्वारा चुका दिया।

इतना कहने पर योगिनी के आँसू निकल आये। वे दोनों कलानिपुण स्त्रियाँ भी दुःखित हुईं। राजा ने आश्वासन दिया और योगिनी ने आगे कहना आरम्भ किया—तब मैं मूर्च्छित हो गई। जब मुझे चेत हुआ तब इनका पता न था। मैंने भाई का दाह संस्कार किया और गेरुआ वस्त्र पहनकर आपके

राज्य में प्रवेश किया। मालविका वीरसेन के द्वारा डाकुओं के हाथ से बचकर महारानी के पास आ गई। मैंने यहाँ पहुँचकर इसे देखा। बस, यही इसका वृत्तान्त है।

महारानी ने योगिनी से कहा—आपने अच्छा नहीं किया जो मालविका के उच्च कुल में उत्पन्न होने का वृत्तान्त मुझसे नहीं कहा।

योगिनी—इसका एक कारण था। जब इसके पिता जीवित थे तब यात्रा से लौटकर एक सिद्ध ने मेरे सामने कहा था कि यह कन्या एक वर्ष-पर्यन्त दासी रहेगी और तब इसे अनुरूप वर प्राप्त होगा। आपकी सेवा में इसका कर्म-भोग कटता देखकर मैं समय की प्रतीक्षा करती रही।

इस समय कञ्चुकी ने आकर निवेदन किया—मन्त्री जी कहते हैं कि विदर्भ के विषय में जो निश्चय करना था सो कर लिया है। आप अपना अभिप्राय कहें।

राजा—हमारी तो इच्छा है कि यज्ञसेन और माधवसेन को राज्य बाँट दिया जाय। वरदा नदी के उत्तर और दक्षिण के प्रदेश दो भागों में बाँट दिये जायँ।

कञ्चुकी ने यह आज्ञा मन्त्रि-परिषद् को जा सुनाई और पुनः लौटकर कहा कि मन्त्रि परिषद् इस आज्ञा का सहर्ष अनुमोदन करती है।

राजा—यही आज्ञा लिखवाकर वीरसेन के पास भेज दी जाय।

इतने मे सेनापति पुष्यमित्र का, उपहार-सहित, एक पत्र आया। ससुर का पत्र सुनकर धारिणी को पुत्र के विषय में चिन्ता हुई। राजा ने पत्र पढना आरम्भ किया। पत्र मे विदित हुआ कि राजसूय यज्ञ का अश्व यवना-द्वारा सिन्धु नदी के दक्षिण तट पर पकडा गया था। उस पर बडा युद्ध हुआ। धनुर्वीर वसुमित्र ने शत्रुदल को पराजित कर दिया और अश्व छीन लिया। अत आप स्त्रियो-सहित यज्ञोत्सव में सम्मिलित हो।

सबको कुमार की विजय पर असीम हर्ष हुआ। प्रसन्न होकर राजा ने यज्ञसेन के साले मौर्य सचिव तथा अन्य बन्दियों को मुक्त कर दिया।

महारानी धारिणी ने भी मालविका को महाराज को सौंपने की इच्छा की थी। अब उसे राजकुमारी जानकर इरावती ने भी सहर्ष इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। धारिणी ने मालविका को दुलहिन बनाकर राजा के अर्पण कर दिया। राजा ने लजाते हुए उसे ग्रहण कर लिया।



पुरुरवा-द्वारा उर्वशी का केशी राक्षस से उद्धार

के वेग के आगे गरुड की गति भी कुछ न थी। भला उसके लिए उस दैत्य का पकड़ना क्या कठिन था ?

इधर रम्भा आदि अप्सराएँ हेमकूट पर राजा पुरूरवा की प्रतीक्षा करती हुई, उनकी विजय की सम्भावना के विषय मे, वार्त्तालाप कर रही थीं। उनकी विजय के सम्बन्ध में रम्भा क सन्देह करने पर मेनका ने कहा—सखी ! तू कुछ सन्देह न कर। युद्ध मे सङ्कट पड़ने पर इन्द्र भी इन्हे सादर बुलाकर विजयिनी सेना का अधिनायक बनाते हैं।

उधर राजा ने दैत्य को शीघ्र ही पकड़ लिया। उसे परास्त कर उन्होंने उर्वशी का उद्धार किया। फिर चित्रलेखा को भी मुक्त करके दोनों को अपने रथ पर बैठा लिया। भयभीत उर्वशी अभी तक रथ पर मूर्च्छित पड़ी थी। उसका हृदय शीघ्रता से धड़क रहा था। वह जब सचेत हुई तब सखी से पूछने लगी—"क्या प्रभावशाली इन्द्र ने मुझ पर अनुग्रह किया है ?" चित्रलेखा ने बताया कि महेन्द्र ने नहीं, प्रत्युत उन्हीं के समान प्रतापी राजर्षि पुरूरवा ने।

अब उर्वशी ने राजा की ओर देखकर समझा कि दैत्य ने तो मुझ पर उपकार ही किया है, अन्यथा ऐसे पुरुष के दर्शन कैसे होते ? राजा पुरूरवा के हृदय को उर्वशी के अलौकिक रूप-लावण्य ने विशेष रूप से आकर्षित कर लिया। यथावसर परस्पर सभाषण मे इनके वचनों से स्पष्ट हो गया कि दोनों प्रेम पाश मे बँध गये हैं।

अप्सराओं ने जब रथ को दूर से आते देखा तब व अति प्रसन्न हो उठी। रम्भा ने सहर्ष कहा—प्रिय सखी। जिस प्रकार विशाखा नक्षत्र से भगवान् चन्द्रमा अति रमणीय हो जाते हैं उसी प्रकार चित्रलेखा-सहित उर्वशी से राजा पुरूरवा सुशोभित हुए हैं। महाराज को अन्तःशरीर, तथा अपनी सखी को सकुशल देखकर सखियों का अपार हर्ष हुआ। उन्होंने महाराज का यथोचित सत्कार किया। उर्वशी अपनी उत्कण्ठित सखियों से मिली। यह दृश्य वर्णना तीत था। प्रत्येक सखी उसे अपने हृदय से लगाती थी। अत इस पुनर्मिलन के मूल कारण राजा पुरूरवा ही थे। इनकी विशेष कृतज्ञ थीं। वे महाराज की वार-वार ।शसा करती थीं और प्रार्थना करती थीं कि ये सैकड़ों वर्ष-पर्यन्त राज्य करें।

इस समय आकाश में किसी के रथ का शब्द सुनाई पड़ा। बाहुभूषणों से अलकृत कोई देदीप्यमान पुरुष आकाश से उतरता दिखाई दिया। अप्सराओं ने समझ लिया कि गन्धर्वराज चित्ररथ आ रहे हैं।

इतने में चित्ररथ वहाँ पहुँच गये। उन्होंने यह सन्देश कहा—महर्षि नारद जी के द्वारा यह सुनकर कि केशी दैत्य उर्वशी को हर ले गया है, इन्द्रदेव ने उसके उद्धार के लिए एक चतुरङ्गिणी सेना भेजी थी। परन्तु मार्ग में ही भाटों से आपका विजय-गान सुनकर मैं आपके पास आया हूँ। आप

उर्वशी को साथ लेकर इन्द्रदेव को दर्शन दीजिए। नि सन्देह आपने उनका अत्यन्त उपकार किया है।

पुरूरवा—प्रिय मित्र! ऐसा मत कहो। यह इन्द्रदेव का ही प्रताप है जो उनके पक्ष के लोग शत्रुओ पर विजय प्राप्त करते है। पर्वत की कन्दरा मे गूँजनेवाली सिंह की प्रतिध्वनि भी हाथियो को भगा देती है। जो साथ चलने के लिए तुमने मुझसे कहा है, सो मित्र! अत्यावश्यक कार्य के कारण इस समय देवराज मुझे क्षमा करें। उर्वशी को प्रभु के पास आप ही पहुँचा दे।

चित्ररथ के साथ अप्सराएँ चलने लगी। उर्वशी ने एकान्त में सखी चित्रलेखा से कहा—मैं उपकारी महाराज के साथ सलाप करने मे असमर्थ हूँ, अत तू ही मेरी ओर से पूछ कि महाराज आज्ञा दे तो मै उनकी कीर्त्ति को स्वर्ग में ले जाऊँ।

चित्रलेखा के ऐसा कहने पर राजा पुरूरवा ने समझ लिया कि यह जाने के लिए आज्ञा माँगती है। उन्होंने कहा—हाँ, जाओ, परन्तु पुन दर्शन देना।

इसके अनन्तर अप्सराएँ और चित्ररथ आकाश में उडने लगे। उडते ही उर्वशी की एक लडीवाली वैजयन्ती माला, लता की शाखा में, उलझ गई। उर्वशी ने लौटकर बहाने से राजा की ओर देखकर चित्रलेखा से उसे छुडाने को कहा।

चित्रलेखा ने हँसकर कहा—यह तो भली भाँति उलझ गई है। इसको सुलझा लेना कठिन है। तब भी यत्न करती हूँ।

उर्वशी भी उसके अभिप्राय को समझ गई थी। वह मुस्कराकर बोली—प्रिय सखी! अपने इस वचन का स्मरण रखना।

चित्रलेखा माला सुलझाने लगी। उर्वशी को अपनी ओर देखते देखकर राजा ने मन मे कहा कि स्वर्ग को जा रही उर्वशी के जाने मे विघ्न पहुँचाकर लता ने मेरा बड़ा उपकार किया है। अत मैं उस कमलाक्षी को फिर देख सका हूँ जो मेरी ओर आधा मुख किये हुए है।

माला सुलझ जाने पर उर्वशी राजा की ओर देखती हुई, अन्य सखियो और चित्ररथ के साथ, चली गई।

राजा पुरूरवा रथ मे बैठकर अपने स्थान को चल पड़े। उनके चित्त मे उर्वशी ही समा रही थी। परन्तु उन्हें यह मनोरथ दुर्लभ जान पड़ा।

(२)

राजा पुरूरवा का मित्र माणवक, राजा के रहस्य से फूला हुआ, वैसे ही अपनी जिह्वा को पुरुषों के बीच वश में नहीं रख सकता था जैसे ब्रह्मभोज में आमंत्रित ब्राह्मण मिष्टान्न से पेट भर जाने पर भी अपनी जिह्वा को वश में रखने में

असमर्थ हो जाता है। उसे भय था कि यह रहस्य कहीं उसके मुँह से प्रकट न हो जाय। अत जब तक राजा न्यायासन पर बैठे थे, वह जनशून्य विमानपरिच्छन्द प्रासाद में जाकर बैठा रहा।

इस समय माणवक को ढूँढती हुई निपुणिका दासी वहाँ आ पहुँची। उसे महारानी ने, माणवक से राजा का रहस्य जानने के लिए, भेजा था। उसे देखते ही माणवक के हृदय को तोड-फोडकर राज रहस्य बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगा। माणवक ने निपुणिका से इधर आने का कारण पूछा।

निपुणिका—महारानी ने कहा है कि आप सदा मेरे पक्षपाती रहे हैं। अनुचित क्लेश से दु खित मेरी आप कभी उपेक्षा नहीं करते।

माणवक ने पूरा सन्देश सुने बिना ही कहा—क्या मेरे मित्र पुरूरवा ने महारानी का कुछ अपराध किया है ?

निपुणिका—जिस स्त्री के विरह में महाराज पीडित हैं, उसी का नाम लेकर उन्होंने देवी को पुकारा था।

अब तो माणवक को निश्चय हो गया कि महाराज ने स्वय ही रहस्य खोल दिया है। फिर उसे अपनी जिह्वा बन्द रखकर दु ख भोगने की क्या आवश्यकता ? वह तुरन्त कहने लगा—क्या महाराज ने महारानी को उर्वशी कहकर पुकारा था ?

निपुणिका—आर्य ! उर्वशी कौन है ?

माणवक—उर्वशी एक अप्सरा है। उसके दर्शन से उन्मत्त होकर महाराज मुझे भी भोजन आदि न देकर कष्ट पहुँचा रहे हैं। मेरी ओर से तू महारानी से कह दे कि मैं तो महाराज को इस मृग तृष्णा से हटाते-हटाते श्रान्त हो गया हूँ। अब उर्वशी के दर्शन से ही इन्हें सन्तोष होगा।

दासी अपना उद्देश सिद्ध कर महारानी के पास चली गई।

महाराज जब वहाँ आते दिखाई पड़े तब माणवक भी उठकर उनके पास चला गया। पुरूरवा को तो उर्वशी की ही धुन लगी थी। माणवक ने महाराज को देखकर मन में कहा—बेचारी महारानी अवश्य दु खी हो रही है।

राजा ने यह विचार कर कि इसने रहस्य खोल तो नहीं दिया, उससे पूछा—मित्र! रहस्य को तुमने प्रकट तो नहीं कर दिया?

माणवक ने मन में सोचा कि वह निपुणिका मुझे ठग ले गई है। परन्तु महाराज से कुछ न कहा। राजा के फिर प्रश्न करने पर कहने लगा—मैंने तो अपनी जिह्वा इस प्रकार वश में कर रक्खी है कि मैं आपके सामने भी इस रहस्य का कहने में असमर्थ हूँ। और किसी की क्या बात?

उर्वशी के कारण व्याकुल राजा पुरूरवा मनोविनोद के लिए प्रमदावन में गये। वहाँ व्याकुलता और बढ़ गई। दक्षिण-वायु चल रही थी। वसन्त ऋतु थी। वन की शोभा रमणीय थी। वसन्त लक्ष्मी का पूर्ण साम्राज्य था।

राजा अब फिर निरुपाय हो गये। दुःखित होकर कहने लगे—वह मेरे मानसिक दुःख की तीव्र पीड़ा को नहीं जानती अथवा दैवी शक्ति से जानकर भी मेरा अपमान कर रही है।

अब तो उर्वशी का राजा के प्रेम पर पूर्ण विश्वास हो गया। तुरन्त भोजपत्र पर कुछ लिखकर उसने नीचे फेंक दिया। पत्र में लिखा था—

स्वामी जस सम्भावन कीन्हीं मोहि अजान अनाथ कै,
तामे कछु अपराध नहीं, यह दसा प्रेम मे आय कै।
पारिजात-सयनीयहु पर मोहिं नहीं सान्ति को लेस है,
नन्दन वन की त्रिविध बयारी मानहु अग्नि विशेष है॥

माणवक ने उस पत्र को गिरते देखकर उठा लिया और कहा—निस्सन्देह उर्वशी ने आपका विलाप सुनकर गुप्त रीति से यह प्रेमपत्र लिखा है।

राजा ने पत्र पढ़कर सहर्ष कहा—मित्र! तुम्हारा अनुमान ठीक है। राजा ने उसे भी पत्र पढ़कर सुनाया।

माणवक—तो अब आपको कुछ धैर्य हुआ?

राजा—धैर्य कैसा? अब तो उर्वशी की प्राप्ति समझनी चाहिए।

राजा ने यह सोचकर कि अँगुलियों के पसीने से अक्षर मिट न जायँ, वह पत्र माणवक को रखने के लिए दे दिया। राजा की सेवा के लिए उर्वशी जब तक अपने अधीर मन को स्थिर करने लगी तब तक चित्रलेखा को

महाराज के पास, विषयानुकूल वार्त्तालाप करने के लिए, भेज दिया।

महाराज ने चित्रलेखा का स्वागत करके कहा—जो पुरुष पहले सङ्गम-तीर्थ (प्रयाग) में गङ्गा-यमुना का सङ्गम देख चुका हो, उसे जैसे गङ्गा-रहित यमुना नहीं भाती वैसे ही उर्वशी के बिना तुम मुझे आनन्द नहीं देतीं।

चित्रलेखा ने भी समीचीन उत्तर दिया। उसने कहा—निःसन्देह पहले मेघों की पंक्ति दिखाई देती है, पश्चात् बिजली।

क्षण भर में वहाँ उर्वशी भी प्रकट हो गई। राजा ने हाथ पकड़कर उसे आसन पर बैठा लिया।

इसी समय देवदूत ने आकर चित्रलेखा से कहा कि उर्वशी को शीघ्र भेजो। भरत मुनि ने जो आठ रसों से आश्रित और ललित अभिनय-युक्त नाटक आपको सिखाया है, आज उसे देखने को देवराज और लोकपाल उत्सुक हैं।

यह सुनकर उर्वशी को हार्दिक दुःख हुआ। महाराज से आज्ञा लेकर चित्रलेखा उर्वशी को साथ लेकर चली गई।

राजा को अब अपनी आँखें निरर्थक प्रतीत होने लगीं। मनोविनोद के लिए उन्होंने माणवक से पत्र माँगा। माणवक ने पत्र कहीं खो दिया था। इससे तुरन्त बात बदल दी। परन्तु राजा ने पुनः पत्र माँगा। माणवक ने चारों ओर देखकर कहा—हा! शोक! भोजपत्र नहीं मिलता।

मित्र! दिव्य भोजपत्र निस्सन्देह उर्वशी के साथ स्वर्ग को चला गया है।

राजा ने असावधानी के लिए उसे डाँटा और पत्र खोजने की आज्ञा दी।

इससे कुछ समय पहले काशिराज-पुत्री औशीनरी महारानी, दासियों-सहित, वहाँ आ चुकी थीं। निपुणिका-द्वारा रहस्य जानकर उन्हें यथार्थ वृत्तान्त की जिज्ञासा थी। महाराज को माणवक के साथ बैठे देखकर वे गुप्त रूप से इनकी बातें सुनने लगीं। इतने में वायु से उड़ती हुई कुछ वस्तु दिखाई दी। वह वस्तु उड़कर महारानी के पैरों से आ लगी। महारानी ने उठाकर देखा तो भोजपत्र पर कुछ अक्षर लिखे पाये। निपुणिका ने पत्र पढ़कर बताया कि यह तो उसी लोकापवाद (अर्थात् उर्वशी और महाराज के प्रेम) का पत्र है। दासी ने पत्र पढ़कर सुना दिया।

महारानी ने इस पत्र को साथ लेकर महाराज से मिलने का विचार किया। माणवक अब तक भोजपत्र खोजने का व्यर्थ यत्न कर रहा था। महारानी ने वहाँ पहुँचकर वही पत्र महाराज के हाथ पर रख दिया। वहाँ अकस्मात् महारानी को उपस्थित देखकर राजा चकित हो गये और बोले—महारानी! आपका स्वागत है।

क्रोधित औशीनरी ने कहा—मेरा स्वागत कहाँ? अब तो दुरागमन हो गया।

राजा ने माणवक की ओर मुँह करके पूछा--मित्र! अब क्या उपाय करना चाहिए? उसने कहा—वही उपाय करो जो चोरी की वस्तु के साथ पकडा गया चोर करता है। राजा ने माणवक से कहा--मूर्ख! यह हँसी का समय नहीं है।

राजा ने महारानी से कहा—मैं इस भोजपत्र को नहीं खोज रहा था। मैं तो मन्त्रवाले एक और पत्र की खोज में था।

महारानी ने ताने क ढँग पर कहा—ठीक है, अपने सौभाग्य की वस्तु छिपानी ही चाहिए।

माणवक ने बात को हँसी मे टालना चाहा। कहा—महारानी! महाराज के लिए भोजन शीघ्र बनवाइए जिससे इनका चित्त शान्त हो और ये स्वस्थ हो जायँ।

महारानी—निपुणिका! ब्राह्मण ने अपने मित्र को अच्छा आश्वासन दिया है।

माणवक—हाँ, देखिए, निस्सन्देह महाराज को विचित्र भोजनों से आश्वासन हो गया है।

राजा—मूर्ख! व्यर्थ ही मुझे अपराधी बना रहा है।

महारानी—स्वामी! आपका कुछ अपराध नहीं। अपराधिनी तो मैं ही हूँ जो देखी जाने के योग्य न होने पर भी आपके सम्मुख खडी हूँ। मैं यहाँ से जाती हूँ।

इस प्रकार क्रोध प्रकट कर महारानी जाने लगीं तब राजा ने कहा—महारानी! मैं अपराधी हूँ। प्रसन्न हूजिए।

क्रोध छोड़िए। भला जब स्वामी क्रोधित हो तब सेवक निरपराधी कैसे हो सकता है?

अब राजा ने महारानी के चरण छू लिये परन्तु रानी ने कुछ ध्यान न दिया। वे वर्षा-ऋतु में उमड़ी हुई नदी की नाई क्रोध से भरी हुई चली गईं।

उनके चले जाने के पश्चात् राजा को पहले तो विचार हुआ कि स्त्रियों के हृदयों पर प्रिय जनों का, वास्तविक प्रेम के बिना, केवल मधुर वचनों से कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु विचार ने फिर पलटा खाया। राजा ने अब कहा—यद्यपि मेरा मन उर्वशी में अनुरक्त है फिर भी महारानी के लिए मेरा वैसा ही प्रेम है। चरण छूने पर भी उसने मेरी उपेक्षा की है। मैं भी अब प्रासाद में न जाऊँगा।

(३)

स्वर्ग में 'लक्ष्मी-स्वयंवर' नाटक के अभिनय में उर्वशी ने लक्ष्मी का रूप धारण किया और मेनका ने वारुणी का। मेनका ने उर्वशी से पूछा—लक्ष्मी। लोकपाल और विष्णु आदि तीनों लोकों के पुरुष उपस्थित हैं। इनमें से तू किसको हृदय से चाहती है? उर्वशी के मुख से 'पुरुषोत्तम नारायण को' कहने के बदले 'पुरूरवा को' निकल पड़ा। इस पर क्रोधित होकर भरत मुनि ने उसे शाप दे दिया कि तूने मेरे उपदेश पर ध्यान नहीं दिया, अस्तु तेरा वास स्वर्ग में

न होगा। परन्तु इन्द्र को उर्वशी पर दया आ गई। उन्होंने कहा—उर्वशी! जिसके साथ तेरा अगाध प्रेम है, और जो युद्ध में मेरी सहायता किया करता है उस राजर्षि का मुझे कुछ प्रत्युपकार करना है। इसलिए तू पुरूरवा के पास जाकर अपने इच्छानुसार उस राजा की तब तक सेवा कर जब तक वह तुझसे प्राप्त सन्तान का मुँह नहीं देखता। इस प्रकार मुनि का शाप भी आशीर्वाद में परिणत हो गया।

इधर जब रानी औशीनरी राजा से क्रुद्ध होकर चली गई तब उन्हें स्वयं पश्चात्ताप हुआ। अन्त में उन्होंने विचार किया कि प्रिय प्रसादन व्रत किया जाय। इसके लिए निपुणिका और लातव्य कञ्चुकी-द्वारा महाराज का सन्देश भेजा गया। सायङ्काल का समय था। लातव्य कञ्चुकी ने महाराज को माणवक के साथ बैठे देखकर निवेदन किया—महाराज! महारानी प्रार्थना करती हैं कि चन्द्रदेव मणि-प्रासाद से स्पष्ट दिखाई देते हैं। अत जब तक रोहिणी का योग चन्द्रमा से होता है तब तक महाराज मेरी प्रतीक्षा करें।

राजा ने महारानी की बात स्वीकार कर ली।

कञ्चुकी के चले जाने पर राजा ने माणवक से पूछा—मित्र! व्रत का वास्तविक कारण क्या है?

माणवक—मेरा तो विचार है कि महारानी ने जो आपके पैर पड़ने की उपेक्षा की थी, इसी से उनके चित्त में पश्चात्ताप

हुआ है और अब व्रत के बहाने वे आपसे मेल कर लेना चाहती हैं।

राजा ने समझा कि यही बात है।

फिर निर्दिष्ट समय से पहले ही माणवक को साथ लेकर राजा मणि प्रासाद पर पहुँच गये। चन्द्रोदय होने मे अब विलम्ब नहीं था। पूर्व दिशा का मुँह कुछ कुछ रक्त वर्ण हो रहा था। देखते ही देखते चन्द्रमा का उदय हो गया। माणवक ने प्रसन्न होकर कहा—अहा! मित्र! खाँड के लड्डू जैसे चन्द्रदेव का उदय हो रहा है।

राजा ने मुस्कराकर कहा—पेटू मनुष्यो को सब जगह खाने की ही वस्तु दिखाई देती है।

चन्द्रमा को देखकर रानी के आने मे विलम्ब जानकर राजा ने फिर उर्वशी की चर्चा छेड दी। राजा का हृदय उसके लिए सन्तप्त हो रहा था। माणवक ने आश्वासन दिया। राजा को भी दाहिने अङ्ग के फडकने से कुछ धैर्य तो बँधता था, परन्तु इससे हृदय की वेदना कम न होती थी।

इस समय शाप-ग्रस्त उर्वशी चित्रलेखा के साथ आकाश-मार्ग से, रथ पर सवार होकर, भूलोक को आ रही थीं। मार्ग मे प्रश्नोत्तरो की झडी लगी रही। दोनों जब राजा के पास पहुँचीं तब वे, तिरस्करिणी विद्या से छिपकर, राजा की बातें सुनने लगीं।

राजा को उर्वशी की स्मृति व्याकुल कर रही थी। अपने लिए राजा का प्रगाढ प्रेम देखकर उर्वशी ने अपने को धन्य समझा। उसने अपना मनोरथ पूर्ण हुआ माना। वह शीघ्रता से राजा के सामने जा खडी हुई और राजा को तब भी उदासीन देखकर चकित हुई। परन्तु चित्रलेखा ने हँसकर स्मरण कराया कि तिरस्करिणी विद्या को हटाये बिना ही तू उनके सामने जा खडी हुई है, इससे राजा ने तुझे देखा ही न होगा।

इसी समय महारानी औशीनरी आती दिखाई पडीं। महारानी के साथ पूजा की सामग्री लिये हुए दासियाँ थीं। रानी ने चन्द्रमा की ओर देखकर कहा—रोहिणी के संयोग से भगवान् चन्द्रमा की शोभा अधिक बढ गई है।

दासी—निःसन्देह महारानी के साथ महाराज भी विशेष शोभित हो गये हैं।

तब श्वेत दुपट्टा ओढे हुए, मांगलिक आभूषण पहने और अलकों में पवित्र दूर्वा-दल लगाये महारानी राजा के पास आईं।

राजा ने महारानी का हाथ पकडकर बैठा लिया। महारानी ने कहा—नाथ! मुझे आपका पूजन करके एक विशेष व्रत पूर्ण करना है। इसलिए घडी भर यहाँ प्रतीक्षा करने का कष्ट स्वीकार कीजिए।

राजा—नहीं, कष्ट क्यों होगा ? अनुग्रह कभी कष्ट नहीं हो सकता। भला, तुम्हारे इस व्रत का क्या नाम है ?

महारानी ने निपुणिका की ओर देखा। निपुणिका ने कहा—महाराज ! इस व्रत का नाम 'प्रिय-प्रसादन' है।

राजा—यदि ऐसा ही है तो हे कल्याणी ! इस कठोर व्रत में कमलतन्तु के समान कोमल अपने शरीर को तुम वृथा कष्ट दे रही हो। भला जो सेवक तुम्हें प्रसन्न करने के लिए स्वयं उत्कण्ठित हो रहा है, उसे प्रसन्न करने के लिए तुम क्यों यत्न कर रही हो ?

यह सुनकर उर्वशी ने चित्रलेखा से कहा—महाराज के हृदय में इस रानी के लिए बहुत सम्मान है।

चित्रलेखा—मूढ ! दूसरी स्त्रियों के साथ प्रेम रखनेवाले नागरिक अपनी स्त्रियों के प्रति बड़ा प्रेम दिखाते हैं जिससे कि पत्नी को सन्देह न हो।

राजा का उत्तर सुनकर रानी ने कहा—महाराज ! यह इसी व्रत का प्रभाव है जो आप ऐसा कहकर मेरा इतना मान कर रहे हैं।

तदनन्तर रानी ने पूजा की सामग्री लेकर, प्रासाद में आई हुई, चन्द्रमा की किरणों की पूजा की और

कञ्चुकी और माणवक को दिये।

किया और हाथ जोड़कर

चन्द्रमा दोनों देवताओं

करती हूँ। महाराज! आज से लेकर आप जिस स्त्री की इच्छा करेंगे तथा जो स्त्री आपके समागम की इच्छुक होगी उसके साथ मे प्रीति-पूर्वक व्यवहार करूँगी।

उर्वशी इन शब्दों से रानी का अभिप्राय न समझ सकी। उससे चित्रलेखा ने कहा—सखी! महानुभाव पतिव्रता महारानी ने तुम्हारे और राजा के समागम के लिए स्वीकृति दे दी है। अब तुम्हारे लिए कुछ रुकावट नहीं रही।

रानी के वचन सुनकर माणवक ने महारानी के विषय मे धीरे से कहा—लूले के सामने मे यदि कोई वध के योग्य व्यक्ति भाग जाय तो वह कहता है कि 'जा, चला जा, धर्म होगा।' फिर महारानी को सम्बोधित कर कहा—महारानी! क्या पूज्य महाराज आपसे उदासीन हैं?

महारानी—मूर्ख! मैं तो अपने सारे सुखों को न्यौछावर करके भी महाराज को सुखी करना चाहती हूँ। बस, इसी से तू हमारा पारस्परिक प्रेम जान ले।

राजा ने भी कहा—देवी! मुझे तुम चाहे किसी और स्त्री के हाथ अर्पण कर दो, अथवा अपनी ही सेवा में रख लो। तुम समर्थ हो। मुझ पर तुम जैसी शङ्का करती हो, वैसा मैं नहीं हूँ।

महारानी—नाथ! तुम वैसे रहो या न रहो। मैंने तो प्रिय-प्रसादन व्रत कर लिया। अब जाती हूँ।

महारानी चली गई।

तब माणवक ने महाराज से कहा—महारानी ने आपको, असाध्य रोगी के समान, त्याग दिया है।

राजा फिर उर्वशी का स्मरण करने लगे। उन्होंने कहा—इस प्रासाद में उतरकर भय के कारण मन्द गति से चलती हुई उर्वशी को चतुर सखी बलपूर्वक मेरे पास ले आवे। छिपी हुई वह प्रिया मेरे कानों को नूपुर-शब्द मात्र ही सुना दे, अथवा पीछे से शनै-शनै आकर मेरे नेत्रों को करकमलों से छिपा दे।

उर्वशी ने तुरन्त पीछे जाकर राजा की आँखें मूँद लीं। राजा को रोमाञ्च हो आया। उनका शरीर पुलकित हो गया। उन्होंने हाथ पकड़कर उर्वशी को पास बैठा लिया। उर्वशी ने कहा—सखी! देवी ने अपने महाराज को मुझे दे दिया है। अत देवी की नाईं मैं भी इनकी अर्धांगिनी हो गई हूँ।

राजा—यदि 'देवी ने दिया' इसलिए तुम मुझसे प्रेम करती हो तो इससे पहले किसकी अनुमति से तुमने मेरा मन हर लिया था?

इस समय चित्रलेखा ने कहा—मित्र! इसका उत्तर उर्वशी नहीं दे सकती। अब मेरी एक प्रार्थना है। वसन्त ऋतु के अनन्तर ग्रीष्मकाल में मुझे सूर्य भगवान् की सेवा करनी है। सो आज्ञा दीजिए। मेरी सखी के साथ आप ऐसा व्यव-करें जिससे यह स्वर्ग जाने के लिए उत्कण्ठित न हो।

फिर सखी उर्वशी को गले लगाकर चित्रलेखा बिदा हुई। राजा पुरूरवा और उर्वशी का मनोरथ पूर्ण हुआ।

(४)

चित्रलेखा को शोकग्रस्त देखकर सहजन्या ने उसके दु:ख का कारण पूछा। चित्रलेखा ने करुणा के साथ कहा—सखी। उर्वशी और महाराज पुरूरवा, राज्य का भार मन्त्रियों के ऊपर डालकर, कैलासशिखर के समीप गन्धमादन वन में विहार करने के लिए गये थे। वहाँ एक दिन मन्दाकिनी के तट पर बालू के टीलों पर खेलती हुई विद्याधर-कन्या उदयवती को राजा पुरूरवा ने टकटकी बाँधकर देखा। इससे मेरी सखी उर्वशी कुपित हो गई। उसने राजा के अनुनय को भी स्वीकार न किया। क्रोधवश देवताओं के नियम को भूलकर उस कुमार-वन में चली गई जहाँ स्त्रियों के लिए जाना निषिद्ध है। प्रवेश करते ही वह उस वन में लता के रूप में परिणत हो गई।

यह सुनकर सहजन्या को भी शोक हुआ, वह कहने लगी—भाग्य के विरुद्ध कौन चल सकता है? फिर क्या हुआ?

चित्रलेखा—राजा पुरूरवा भी उन्मत्त होकर उसी गन्धमादन वन में उर्वशी को ढूँढते हुए रात दिन एक कर रहे हैं।

सहजन्या ने समागम का कोई उपाय पूछा। चित्रलेखा ने कहा—इसका एक ही उपाय है। पार्वती के चरणराग से उत्पन्न हुई सङ्गममणि ही इनका समागम कराने में समर्थ है।

सहजन्या—मेरा तो विचार है कि समागम का कोई उपाय शीघ्र हो जायगा। ऐसे महापुरुष चिरकाल तक दुःख नहीं भोगा करते।

इधर पुरूरवा की विचित्र दशा थी। व्याकुल पुरूरवा उर्वशी को इधर-उधर खोज रहे थे। उर्वशी के सिवा उन्हें कुछ सूझता न था। उन्हें सब वस्तुओं मे उर्वशी के अङ्गों की समानता दिखाई देती थी।

आकाश मे बादल देखकर उन्हें भ्रम हुआ कि यह कोई राक्षस है जो उर्वशी को लिये जा रहा है। क्रोध से मिट्टी के ढेले उठाकर वे उसे मारने लगे। बाद में उन्हें ज्ञात हुआ कि यह कोई अभिमानी राक्षस नहीं, प्रत्युत वर्षा ऋतु का नया बादल है और यह इन्द्रधनुष है न कि राक्षस का चढाया हुआ धनुष। यह बाणों की वर्षा नहीं, वरञ्च सुवर्ण की चमकती हुई रेखा के समान मेघ की बिजली है।

बादलो को देखकर राजा ने फिर सोचा—मुनि कहते हैं कि 'समय राजा के वश में है।' अत इस वर्षा-काल को क्यो न रोकूँ। अथवा जाने दो, इस समय मेघ भी तो मेरी ही सेवा कर रहे हैं। बिजली के कारण रंगबिरंगा यह मेघ मेरा छत्र है। निचुल वृक्ष की मञ्जरियाँ मेरे चँवर हैं। वर्षारम्भ के कारण गाते हुए चतुर मोर स्तुतिगान कर रहे मेरे भाट हैं। धारा रूप से वर्षा करनेवाले बादल उपहार देनेवाले मेरे साहूकारो के समान हैं।

परन्तु उर्वशी का पुन स्मरण हो आने पर राजा फिर उसे खोजने लगे। एक स्थान देखकर उन्हें हर्ष हुआ। भ्रम हुआ कि उर्वशी के ओठों पर होकर गिरने से रक्त-वर्ण के अश्रु-बिन्दुओं से चिह्नित हरे रङ्ग की चोली पडी है। राजा उसे उठाने लगे तो देखकर बोले—अहो! यह तो वीरबहूटियों से युक्त हरी घास है। हाय! किस प्रकार प्रिय उर्वशी को ढूँढूँ?

तदनन्तर वे एक शिला पर चढ गये। वहाँ ग्रीवा उठाये हुए एक मोर बोल रहा था। राजा ने पूछा—हे मोर! इस वन मे भ्रमण करते हुए तुमने क्या हस के समान गतिवाली मेरी कमलनयनी प्राणप्रिया को देखा है?

मोर ने कुछ उत्तर तो दिया नहीं प्रत्युत प्रसन्नता से नाचने लगा। राजा उसके हर्ष का कारण सोचने लगे। कुछ सोचकर बोले—हाँ, तुम्हारी प्रसन्नता का कारण मेरी समझ मे आ गया। उर्वशी का नाश हो जाने से तुम समझते हो कि तुम्हारे सुन्दर पख निरुपम हो गये हैं। अन्यथा सुकेशी उर्वशी के पुष्पों से सज्जित और खुले हुए केशसमूह के सामने इसके परों को कौन पूछता? खैर, और किसी से पूछता हूँ। यह दूसरे के दुख पर प्रसन्न होनेवाला नीच है।

राजा ने अब सामने जामुन के पेड पर बैठी कोयल को देखा। वे कहने लगे—तू पक्षियों मे चतुर मानी जाती है अत तुझसे पूछता हूँ। हे मधुरभाषिणी! प्रेमी जन तुझे

कामदेव की दूती करते हैं। तू या तो मेरी प्रिया को मेरे पास ले आ अथवा मुझे ही शीघ्र वहाँ ले चल।

परन्तु कोयल बिना ही बात सुने जामुन खाती रही। राजा ने कहा—हाँ, ठीक है, लोग दूसरे के महान् दुःख को भी हलका समझते हैं। अच्छा, ऐसा करने पर भी मेरी प्रिया के समान इस मधुरभाषिणी पर क्या क्रोध करना।

राजा ने अब एक राजहंस से पूछा—मानसरोवर को जानेवाले हे जलपक्षि राज। मेरा उद्धार करो। मैं प्रिया का समाचार न मिलने से शोकग्रस्त हूँ। सज्जन परोपकार को स्वार्थ से श्रेष्ठ समझते हैं।

परन्तु राजहंस ऊपर देखता रहा। इससे राजा ने समझा कि यह कहता है—मानसरोवर की ओर चित्त लगा रहने से मैंने तुम्हारी प्रिया को नहीं देखा।

राजा को अब अधिक खेद के कारण प्रबल उन्माद ने आ घेरा। वे राजहंस से कहने लगे—यदि उसे तूने सरोवर पर नहीं देखा तो हे चोर। उसकी चाल तूने किस प्रकार चुरा ली ? हे हंस। ला, मेरी प्रिया मुझे दे दे। उर्वशी को तूने ही चुराया है।

परन्तु राजहंस उड गया। राजा ने समझा कि राजहंस यह सोचकर भयभीत हो उड गया है कि यह चोरों को दण्ड देनेवाला राजा है, कहीं मुझे भी दण्ड न देने लगे।

राजा अब और किसी से पूछने के लिए आगे बढ़े। एक स्थान पर चकवा मिला। उससे वे पूछने लगे कि क्या तुमने मेरी प्रिया को देखा है? राजा को ऐसा सुनाई पड़ा जैसे वह पूछता हो 'तू कौन है?' राजा ने कहा कि मैं वह हूँ जिसके नाना और दादा सूर्य और चन्द्रमा हैं और जिसे उर्वशी तथा पृथिवी ने अपना स्वामी बनाया है। परन्तु चकवे को चुप देखकर राजा ने उलहना दिया—हे चकवे! कमलिनी के पत्ते की ओट में बैठी हुई अपनी प्रिया चकवी को दूर समझकर तू निःसन्देह उत्कण्ठित होकर रोता है परन्तु वास्तव में अपनी प्राणप्रिया से पृथक् हुए मेरे साथ वार्तालाप करने से विमुख होने में तेरा क्या अभिप्राय है? जैसी अपनी पीड़ा होती है वैसी ही दूसरे की भी माननी चाहिए।

राजा यहाँ भी निराश होकर अपने दुर्भाग्य को कोसने लगे। फिर अन्यत्र एक भौंरे को देखकर बोले—हे भौंरे! उस मतवाली आँखोंवाली उर्वशी का कुछ पता है? कहीं उसे देखा तो नहीं? जान पड़ता है, उसके मुख की साँस की सुगन्धि तूने नहीं सूँघी, अन्यथा इस तुच्छ कमल को तू क्यों चाहता?

इसी समय पास ही एक गजराज दिखाई पड़ा। राजा उससे पूछने लगे—पूर्ण चन्द्रमा की कान्ति को तिरस्कृत करनेवाली मेरी प्रिया को तूने देखा है? क्या तूने यूथिका-पुष्पों से अलङ्कृत केशोंवाली किसी स्त्री को देखा है?

राजा को उसके शब्द से कुछ आश्वासन मिला। वे प्रसन्न होकर बोले—हाँ, ठीक है। सहधर्मी होने से तेरे साथ मेरी बहुत प्रीति है। मैं राजाओं का राजा हूँ, तू हाथियों का राजा है। तू सदा मद की धारा बहाता है, मैं याचकों को सदा विपुल धन देता हूँ। स्त्री-रत्नों में उर्वशी मेरी प्रियतमा है और झुण्ड में यह हथिनी तेरी प्रियतमा है। इस प्रकार तुझमें और मुझमें बहुत समानता है, परन्तु तुझे अपनी प्रिया के वियोग का अनुभव नहीं हुआ। यही अन्तर है। इस कारण तू धन्य है। अच्छा, सुखी रह। हम जाते हैं।

राजा का चित्त अब सामने रमणीय सुरभिकन्दर नाम के पर्वत की ओर गया। उन्होंने सोचा कि अप्सराएँ इसको अधिक चाहती हैं। कहीं उर्वशी इसी पर्वत के पास न हो। अत राजा ने पर्वत से पूछा—उर्वशी यहाँ तो नहीं रहती? परन्तु राजा को कुछ उत्तर न मिला। उन्होंने समझा कि दूर होने के कारण यह मेरी बात नहीं सुनता। पास जाकर पूछा तो अपना ही प्रतिशब्द सुनाई दिया। राजा निराश हो गये। पास ही नदी-तट पर वे विश्राम करने लगे। वहाँ नदी के देखने से भी उन्हें उर्वशी का भ्रम हो आया। वे कहने लगे—तरङ्गरूपी भौंहोंवाली, चञ्चल पक्षियों की पंक्ति रूप करधनीवाली, शीघ्रता में शिथिल वस्त्र की तरह फेने को खींचती हुई, मेरे बहुत से अपराधों को चित्त में धारण करके टेढ़ी-मढ़ी

चाल से जाती हुई, यह क्रुद्ध उर्वशी ही नदी के रूप में परिणत हो गई है।

परन्तु वहाँ भी कुछ उत्तर न पाकर राजा ने सोचा कि यह नदी ही है, उर्वशी नहीं, क्योंकि उर्वशी मुझे छोड़कर समुद्र के पीछे क्यों जाती ? अच्छा, श्रेष्ठ वस्तुएँ सुगमता से नहीं मिलतीं। अब फिर उस सुनयनी को ढूँढता हूँ जहाँ वह लुप्त हुई थी।

वहाँ जाकर राजा ने एक कदम्ब का वृक्ष देखा। राजा को स्मरण हो आया कि प्रिया उर्वशी ने अपना केश-पाश सजाने के लिए इस वृक्ष से अधखिले फूल तोड़े थे। राजा की दृष्टि वहाँ से दो चट्टानों के बीच एक अत्यन्त रक्त वर्ण पदार्थ पर जा पड़ी। उनको भ्रम हुआ कि यह सिंह से मारे हुए हाथी के मांस का टुकड़ा अथवा आग की चिनगारी तो नहीं है। परन्तु फिर ध्यान आया कि अभी वर्षा हुई है, आग कैसे हो सकती है। फिर निश्चय किया कि यह रक्तवर्ण की मणि है जिसे उठाने के लिए सूर्य मानो अपने किरणरूपी हाथों को फैलाये हुए है। राजा मणि को उठाने लगे तो ध्यान आया कि यह उर्वशी के केश-पाश के योग्य है। सो जब वही दुर्लभ है तब इससे क्या लाभ ?

इसी समय राजा को सुनाई दिया—वत्स! उठा लो, उठा लो। महारानी पार्वती के चरण-कमलों से उत्पन्न यह सङ्गम-मणि है। इसे धारण करने से वियोगी का मिलन होता है।

यह सुनकर राजा ने कहा कि कौन मुझे ऐसे उपदेश कर रहा है। चारों ओर देखकर कहा—क्या कोई मृगरूपधारी मुनि मुझ पर कृपा कर रहा है। राजा ने उसी का उपदेश ग्रहण कर मणि उठा ली और कहा—हे सङ्गम-मणि। यदि तू मुझे उर्वशी से मिला दे तो मैं तुझे अपने मुकुट मे लगा लूँगा।

इसी समय राजा का ध्यान एक लता की ओर गया। राजा को अचम्भा हुआ कि इस पुष्परहित लता पर मेरा प्रेम-सा क्यो हो रहा है, स्पर्श करने की इच्छा होती है।

आँखे मूँद कर लता का स्पर्श करने से राजा का चित्त शान्त हो गया। उन्हे ज्ञात हुआ मानो उर्वशी का ही स्पर्श हुआ हो परन्तु विश्वास न हुआ। वे कई बार धोखा खा चुके थे। अब धोखा खाकर और मनोव्यथा बढाना नहीं चाहते थे। परन्तु जब धीरे से आँखे खोलकर देखा तब उर्वशी दीख पडी। उर्वशी ने इस कष्ट के लिए राजा से क्षमा माँगी।

राजा—इतनी देर तक अकेली कैसे रही ?

उर्वशी—महाराज। सुनिए। कुमार कार्त्तिकेय ने आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण कर गन्धमादन पर्वत के अकलुष नामक जल-प्राय प्रदेश मे निवास किया था। उन्होंने यह मर्यादा बाँधी थी कि जो स्त्री इस स्थान मे आवेगी वह लता हो जायगी। पार्वती के चरणराग से उत्पन्न मणि के विना वह स्त्री लता के रूप मे मुक्त न होगी। महान् शाप से मूढ होकर, देवता के नियम को भूलकर, और

आपकी विनती की उपेक्षा कर मैं यहाँ चली आई। प्रवेश करते ही लता बन गई।

राजा ने वह सङ्गम-मणि उर्वशी को दिखाई। उर्वशी ने मणि लेकर शिर पर धारण कर ली और कहा—बहुत समय हो गया। प्रजा मुझे कोसती होगी, अब लौट चलो। इस नये मेघ का विमान प्रस्तुत करके मुझे प्रतिष्ठानपुर ले चलो।

(५)

उर्वशी के साथ नन्दनवन आदि अनेक देवस्थानों में विहार करके महाराज पुरूरवा बहुत दिनों में राजधानी को लौटे। वे फिर से राज काज करने लगे। अब सन्तान के अतिरिक्त उनको और कोई चिन्ता न थी।

एक बार विशेष पर्व के दिन वे गङ्गा यमुना के सङ्गम पर, रानियों के साथ, स्नान आदि करके तम्बू में बैठे चन्दन लगा रहे थे कि बाहर कोलाहल सुनाई पड़ा। एक सेविका महाराज की उस महामूल्य सङ्गम-मणि को रेशमी वस्त्र में ढाके हुए, तालपत्र में रक्खे, लिये जा रही थी कि एक गीध उसे मांस का टुकड़ा समझ झपटकर ले गया। यह सुन कर राजा, कञ्चुकी, वेधक (शिकारी) आदि कुछ पुरुष एकत्र हो गये। मणि-सहित सोने की जञ्जीर को चोंच में दबाये हुए वह गीध आकाश को भी रँग-सा रहा था। राजा ने उसे देखकर धनुष मँगवाया। परन्तु इतने विलम्ब में वह पक्षी अधिक दूर

निकल गया। वह मणि ऐसी चमक रही थी जैसे रात्रि के समय मङ्गल ग्रह चमकता है।

राजा ने कञ्चुकी-द्वारा नगरवासियों को आज्ञा दी कि जाकर सायङ्काल के समय पक्षियों के घोंसलों में उस पक्षी को ढूँढो। राजा उस मणि को 'रत्न' समझकर नहीं चाहते थे, वे तो उसका आदर इसलिए करते थे कि उसने उन्हें उर्वशी से मिलाया था।

कुछ समय के पश्चात् बाण-सहित मणि लेकर कञ्चुकी आ गया। उसने मणि देकर राजा से कहा—आपके क्रोध ने बाण बनकर उस वध्य पक्षी को मार गिराया है। यह धुली हुई मणि लीजिए।

राजा ने सन्दूक में मणि रखवाकर पूछा—यह बाण किसका है?

कञ्चुकी—बाण पर नाम तो अङ्कित है, परन्तु मेरी दृष्टि काम नहीं करती।

राजा ने बाण लेकर अक्षर स्वयं पढ़े। लिखा था—यह शत्रुओं के प्राण लेनेवाला बाण उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न, उत्तम धनुर्धारी, पुरूरवा के पुत्र कुमार आयु का है।

माणवक ने महाराज को, सन्तानवान् होने पर, बधाई दी। राजा को विस्मय हुआ कि इसकी उत्पत्ति कब हुई।

माणवक—इसका कारण अप्सरा का दिव्य प्रभाव ही है।

इसी समय च्यवन ऋषि के आश्रम से कोई तापसी एक कुमार को लेकर आई। माणवक ने उसे देखते ही कह दिया—यह वही क्षत्रिय-कुमार है जिसका नाम गीध के मारनेवाले बाण पर अङ्कित है। इसकी आकृति आपके ही सदृश है।

उसे देखकर राजा की भी आँखें तृप्त हो गईं। हृदय में प्रेम का सञ्चार हो गया।

तापसी ने सत्कार आदि ग्रहण कर चुकने पर राजा से कहा—सोम-वंश चिरकाल तक फले-फूले। जन्मते ही इस चिरञ्जीवी आयु कुमार को उर्वशी, किसी कारण, मुझे सौंप गई थी। इसके जातकर्म आदि संस्कार च्यवन ऋषि ने स्वयं किये हैं। अब यह वेद-शास्त्र पढ़ चुका है और धनुर्वेद में भी निपुण हो गया है। आज यह राज-कुमारों के साथ फूल समिधा और कुश लाने गया था। वहाँ इसने वृक्ष की शाखा पर बैठे एक गीध को बाण से मार गिराया। यह कार्य आश्रम नियम के विरुद्ध है। यह जानकर महात्मा च्यवन ने मुझे आज्ञा दी कि यह उर्वशी की धरोहर है, सौंप आओ। अत मैं उर्वशी को देखना चाहती हूँ।

राजा ने उर्वशी को बुला भेजा। कुमार आयु ने पिता के चरण छुए और पुरूरवा ने उसे उठाकर गले से लगा लिया।

पुरुरवा के पास बैठे पुत्र आयु को उर्वशी ने दूर से ही देख लिया। पास आने पर माता को कुमार ने प्रणाम किया और उर्वशी ने तापसी को। तापसी ने राजा पुरुरवा के सामने उर्वशी को पुत्र सौंप दिया और आज्ञा लेकर आश्रम को वापिस चली गई।

राजा के सुख की सीमा न थी किन्तु उर्वशी कुछ स्मरण करके रोने लगी।

राजा ने विस्मित होकर पूछा—पुत्र-प्राप्ति के समय हर्ष के बदले तुम्हें शोक क्यों हो रहा है?

उर्वशी—महाराज! पहले तो मैं पुत्र दर्शन के आनन्द से अपने आपको भूल गई थी, किन्तु अब मुझे इन्द्र के साथ की हुई प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया है।

राजा—कौन सी प्रतिज्ञा?

उर्वशी—महाराज! आपकी चिन्ता में संलग्न रहने से मुझे पहले गुरु (भरत) ने शाप दिया था। फिर इन्द्र ने शाप की अवधि निर्धारित कर दी थी।

राजा—अवधि क्या है?

उर्वशी—"जब मेरे परम प्रिय मित्र महाराज पुरुरवा तेरे द्वारा उत्पन्न पुत्र का मुख देख लेंगे तब तू मेरे पास आ जाना।" यही इन्द्र ने कहा था। मैंने आपके वियोग से बचने के लिए, उत्पन्न होते ही, पुत्र को विद्याध्ययन के निमित्त च्यवन ऋषि के आश्रम में पूजनीया सत्यवती के हाथ

सौंप दिया था। अब यह बालक पिता की सेवा करने योग्य हो गया है, यह सोचकर वे इसे यहाँ छोड़ गई हैं। बस आपके साथ मेरे सहयोग की इतनी ही अवधि थी।

यह सुनकर राजा को मूर्च्छा आ गई। चेत होने पर उन्होंने कहा—आह! दैव किसी के सुख को सहन नहीं करता। पुत्र-प्राप्ति से सन्तुष्ट मेरे लिए तुम्हारा वियोग वैसा ही है जैसा किसी वृक्ष पर प्रथम वृष्टि के अनन्तर वज्रपात। अब मैं राज्य नहीं कर सकता। तुम इन्द्र की सेवा में जाओ। मैं भी तुम्हारे पुत्र आयु को राज्य देकर वन को जाता हूँ।

आयु—पिताजी! बड़े-बड़े राजाओं के पालन करने योग्य पृथिवी की रक्षा में मेरे जैसे बालक को नियुक्त करना उचित नहीं।

'पुत्र, ऐसा मत कहो। सिंह का बच्चा भी बड़े बड़े हाथियों का नाश कर देता है' यह कहकर राजा ने राज्याभिषेक की सामग्री लाने के लिए आज्ञा दी।

इस समय सहसा आकाश में बिजली चमकने लगी। फिर नारद मुनि प्रकट होते दिखाई पड़े। धीरे-धीरे नीचे उतर-कर वे राजा पुरुरवा के पास आये। राजा और उर्वशी ने उनकी यथोचित पूजा की। नारदजी ने आशीर्वाद दिया—तुम दोनों में कभी वियोग न हो।

राजा ने मन में कहा कि क्या ऐसा हो सकता है? फिर उनसे आने का कारण पूछा।

नारदजी—राजन्। देवेन्द्र ने अपने दिव्य प्रभाव से तुम्हारा वन जाने का सङ्कल्प जानकर कहा है कि देवताओं और राक्षसों मे घोर सग्राम होनेवाला है। युद्ध में आप हमारे महान् सहायक हैं, अत आप शस्त्र का त्याग न करें, यह उर्वशी जन्म भर आपके साथ रहेगी।

उपस्थित जन इन्द्र के कृतज्ञ हुए। दु ख सुख में बदल गया। नारदजी ने राज्याभिषेक का कार्य स्वय किया। नारदजी, माता, पिता आदि को प्रणाम करके आयु, उर्वशी तथा पुरूरवा के साथ ज्येष्ठ विमाता को प्रणाम करने चला। चारो ओर से सुख की वृष्टि होने लगी। नारदजी अपना कार्य पूर्ण कर चले गये।

---

(४) प्रिय-दर्शिका

(१)

प्राचीन समय में अङ्ग-देश में दृढवर्मा नाम के एक राजा थे। दृढवर्मा ने अपनी पुत्री प्रिय-दर्शिका का विवाह, कलिङ्ग देश के राजा की प्रार्थना की उपेक्षा करके, वत्स नरेश उदयन के साथ करना निश्चित कर लिया। इसी से कलिङ्गराज का अङ्ग-नरेश के प्रति द्वेष था। इस समय आक्रमण करने में लाभ यह था कि वत्सराज अभी उज्जयिनी से मुक्त नहीं हो सके थे। यह अवसर देखकर कलिङ्ग-नरेश ने दृढवर्मा पर सहसा आक्रमण कर दिया। दृढवर्मा के लिए दैव अति निष्ठुर था। उनका कञ्चुकी विनयवसु राजकुमारी को जैसे-तैसे इस भयङ्कर स्थान से ले जाकर अपने राजा के मित्र राजा विन्ध्यकेतु के पास ठहरा।

विनयवसु का विचार था कि यहाँ से पुन किसी समय महाराज उदयन को राजकुमारी सौंपकर अपने स्वामी को प्रतिज्ञा-रूपी ऋण से उऋण करूँगा। परन्तु वहाँ जब वह पास ही अगस्त्य तीर्थ पर स्नान के लिए गया तब किसी की सेना ने विन्ध्यकेतु पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया। राजा मार डाला गया, नगर आदि जला दिये गये, प्रजा पीडित की गई। राजकुमारी का भी कुछ पता न चला। विनयवसु ने सब स्थान खोज डाले पर सारा परिश्रम व्यर्थ रहा।

इसी समय विनयवसु को स्मरण आया कि वत्सनरेश उदयन अब बन्धन से मुक्त होकर वासवदत्ता के साथ कौशाम्बी आ चुके हैं। अत उसने कौशाम्बी जाने का विचार किया। परन्तु पुन उसने विचारा कि राजकुमारी के बिना वहाँ जाने मे क्या लाभ। अब उसने कारागार मे पडे, तीक्ष्ण प्रहारों से व्यथित, राजा दृढवर्मा के चरणो मे उपस्थित होने का निश्चय किया।

उधर वत्सराज उदयन कारागार से मुक्त होकर, वासवदत्ता के साथ, उज्जयिनी से कौशाम्बी को भाग आकर प्रसन्न हो रहे थे। कारावास का समय भी अब राजा को भला प्रतीत हो रहा था। वे कहते थे—इस समय मैंने सेवको की भक्ति, मन्त्रियो की नीति-निपुणता, मित्रों की मैत्री और प्रजा का अनुराग सब कुछ देख लिया। मेरा साहस-पूर्ण व्यसन शान्त हो गया, स्त्री-रत्न वासवदत्ता की प्राप्ति हो गई। इस प्रकार निश्छल धर्म-मय वन्दित्व मे मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया।

परन्तु मित्र वसन्तक ने दूसरा ही अर्थ लगाया। वह कहने लगा—यदि बन्धन इतना सुखकारी है तो राजा दृढवर्मा को बन्दी करने के कारण कलिङ्ग नरेश पर आप क्रोध क्यों कर रहे हैं ?

राजा उदयन मुसकराकर कहने लगे—चल मूर्ख। सब कोई वत्सराज नहीं हैं जो वासवदत्ता को साथ लेकर भाग सकें। अच्छा, इस विषय को हटाओ। मुझे विजयसेन को विन्ध्यकेतु

पर आक्रमण करने के लिए भेजे हुए बहुत दिन हो गये हैं। अब तक कुछ सूचना भी नहीं मिली। रुमण्वान् को बुलाओ।

इसी समय विजयसेन और रुमण्वान् वहाँ अकस्मात् आ पहुँचे। उनके यथोचित अभिवादन आदि कर चुकने पर राजा ने विजयसेन से विन्ध्यकेतु का वृत्तान्त पूछा।

विजयसेन—महाराज! सुनिए। आपके आज्ञानुसार यहाँ से चलकर तीन दिन में हम हाथियो, अश्वारोहियो और पैदल सैनिको के साथ विन्ध्यकेतु पर प्रात काल सहसा टूट पड़े। तब राजा विन्ध्यकेतु जागकर, विन्ध्याचल की कन्दरा से निकले हुए सिंह के समान, केवल थोड़े-से सैनिकों के साथ, युद्ध करने को निकल पड़ा।

राजा—विन्ध्यकेतु ने यह अच्छा किया। हाँ, तब?

विजयसेन—हमारी सेना के भीषण पराक्रम के कारण उसके सब सैनिक मारे गये। फिर जब वह सामने आया तब उसे देखकर हमारा क्रोध और उत्साह दूना हो गया। हमारे ललकारने पर वह नि सहाय राजा अकेला ही क्रोध के कारण विलक्षण पराक्रम प्रकट करता हुआ, भीषण युद्ध करने लगा। जब उसके सब अस्त्र शस्त्र चुक गये तब तलवार हाथ में लेकर वह हाथियो की सूँड काटने की क्रीडा करने लगा। अन्त मे अनेक बाणों से विध जाने पर वह मर गया।

राजा—रुमण्वान्! उस सत्पुरुषों के योग्य मार्ग पर चलनेवाले विन्ध्यकेतु की मृत्यु से हम यथार्थ मे लज्जित

है। विजयसेन! क्या उसके कोई पुत्र नहीं है जिसे मैं अपनी प्रसन्नता का फल प्रदान कर सकूँ?

विजयसेन—महाराज! यह भी कहता हूँ। जब विन्ध्य केतु इस प्रकार भाई बन्धुओं तथा सैनिकों सहित मारा गया तब उसकी स्त्रियों ने उसका अनुगमन किया। उसकी प्रजा ने विन्ध्याचल के शिखरों का आश्रय लिया। इस प्रकार नगर के जन-शून्य हो जाने पर विन्ध्यकेतु के प्रासाद में 'हा माता! हा पिता!' कहकर करुण स्वर से विलाप करती हुई एक कन्या दीख पड़ी। उस कन्या को राजकुमारी जानकर हम यहाँ ले आये हैं। वह द्वार पर प्रतीक्षा कर रही है। आपकी क्या आज्ञा है?

राजा ने उस राजकुमारी को रानी वासवदत्ता के पास भिजवा दिया और कहला भेजा कि तुम सदैव इसके साथ बहन का सा बर्ताव करना। इसे कुलीन कन्या के योग्य गीत, नृत्य, वाद्य आदि की शिक्षा देना और जब वह विवाह-योग्य हो तब मुझे सूचना देना।

मध्याह्न का समय हो गया था, अत सभा विसर्जित की गई।

(२)

रानी वासवदत्ता ने एक बार कोई व्रत किया। स्वस्ति-वाचन के लिए रानी ने वसन्तक को बुलवा भेजा। जाने से

पहले वसन्तक धारागृह उद्यान के सरोवर मे स्नान करने गया। वहाँ जाते हुए राजा उदयन भी मार्ग में मिल गये। राजा ने वसन्तक से उसकी प्रसन्नता का कारण पूछा।

वसन्तक—महारानी एक ब्राह्मण का सत्कार करेंगी। महारानी से मै ही सबसे पहले स्वस्तिवाचन का श्रेय प्राप्त करूँगा।

यह उत्तर सुनकर राजा ने कहा—तो अब चलो, वहीं धारागृह उद्यान को पधारो।

दोनों धारागृह चले गये। वहाँ पहुँचकर उद्यान के अति रमणीय दृश्यो से मनोविनोद करने लगे।

इसी समय इन्दीवरिका नाम की परिचारिका वहाँ आई। उसे रानी वासवदत्ता ने, महर्षि अगस्त्य के अर्घ्य के लिए, शेफालिका क पुष्पों की माला शीघ्र लाने के लिए भेजा था। साथ में धारागृह उद्यान के सरोवर से, सूर्यास्त के समय बन्द होने से पहले, कमल शीघ्र लाने के लिए आरण्यिका को भेजा था। आरण्यिका को सरोवर का पता न था। इस कारण दोनों साथ ही वहाँ जा रही थीं।

आरण्यिका उस समय चिन्तित हो रही थी। वह सोचती थी कि मैं उच्च कुल में उत्पन्न हूँ। पहले मै दूसरो पर आज्ञा करती थी, अब स्वय दूसरों की आज्ञा का पालन करती हूँ। भाग्य बडा प्रबल है। अथवा यह मेरा ही दोष है कि मैं आत्महत्या न कर अब तक जीवित हूँ। तो अब क्या करूँ ?

मैंने यह अच्छा ही किया कि अपना कुल बताकर उसे कलङ्कित नहीं किया। अब उपाय ही क्या है? जो आज्ञा मिली है उसका पालन करूँगी।

वसन्तक और उदयन जब सरोवर पर पहुँचे तब वसन्तक की दृष्टि अकस्मात् आरण्यिका पर पड गई। उसे देखकर वसन्तक ने कहा—मित्र! यह कौन है जिसकी सुगन्धित वेणी के इधर-उधर भ्रमरों के झुण्ड एकत्र हो रहे हैं? इसे देखकर तो मुझे प्रतीत होता है कि साक्षात् वन लक्ष्मी विचर रही है।

राजा ने उधर देखा किन्तु वे उसे पहचान न सके। उसके अलौकिक सौन्दर्य तथा अनुपम रूप-लावण्य से राजा का मन उसकी ओर आकृष्ट हो गया।

वसन्तक ने ध्यान से देखा तो उस कन्या के पास ही इन्दीवरिका दिखाई दी। अब राजा और वह दोनों, कुञ्ज के पीछे छिपकर, दोनो सखियों का वार्तालाप सुनने लगे।

आरण्यिका से कमल सञ्चय करने के लिए कहकर इन्दीवरिका शेफालिका-पुष्पों के लिए जाने लगी। परन्तु आरण्यिका ने कहा कि मैं तेरे बिना मुहूर्त्त भर भी नहीं रह सकती।

इन्दीवरिका—मैंने आज जैसा रानी से सुना है, उससे तुझे शीघ्र ही मेरे बिना रहना पडेगा।

आरण्यिका—रानी ने क्या कहा था?

इन्दीवरिका—उन्होंने कहा था कि 'महाराज का आदेश है कि जब यह कन्या विवाह के योग्य हो जाय तब मुझे

सूचना दी जाय', सो अब महाराज से कहूँगी कि इसके योग्य वर की चिन्ता करें।

इस उत्तर से राजा ने समझ लिया कि यह विन्ध्यकेतु की कन्या है। वे प्रसन्न होकर वसन्तक से कहने लगे—मित्र! इसके देखने में कुछ दोष नहीं।

उधर आरण्यिका ने सक्रोध कहा—चल, हट! तू व्यर्थ बातें करती है। अब मैं तुझसे न बोलूँगी।

पुष्प चयन करने के लिए इन्दीवरिका एक ओर बढ गई। आरण्यिका कमल तोडने लगी। परन्तु कमलों पर रसास्वादन के लिए बैठे भ्रमरों ने, कमल हिलाते ही, उसे घेर लिया। बेचारी भ्रमरों से दुःखित होकर उत्तरीयवस्त्र से मुँह ढककर, इन्दीवरिका को रक्षा के लिए पुकारने लगी।

यह उचित अवसर जानकर वसन्तक ने राजा को वहाँ भेज दिया और चुप रहने को कह दिया। राजा जब वहाँ पहुँचे तब उन्हें इन्दीवरिका समझकर आरण्यिका को धीरज बँधा। राजा ने कहा—अरी भीरु! भय छोडो। सुगन्धि के कारण ये भ्रमर तुम्हारे मुख-कमल पर मँडराते हैं।

अपरिचित स्वर जानकर आरण्यिका डर गई और मुँह पर से वस्त्र हटाने पर सामने अनजान पुरुष को देखकर वह पुन इन्दीवरिका को पुकारने लगी।

वसन्तक—देवी! जब सारी पृथिवी के रक्षक वत्सराज स्वय तुम्हारे रक्षक है तब तुम इन्दीवरिका को रक्षा के लिए क्यो बुलाती हो ?

यह जानकर कि ये महाराज उदयन हैं, आरण्यिका लज्जित हो गई और सोचने लगी—ये ही महाराज हैं जिनसे पिताजी ने मेरा विवाह करने का निश्चय किया था। पिताजी ने मुझे योग्य वर के हाथ सौंपने के लिए ही इतना आग्रह किया था।

आरण्यिका के पुकारने का शब्द सुनकर इन्दीवरिका ने कहा—डरो मत, आती हूँ।

अब उसे आती जानकर राजा फिर छिप गये। अन्यथा इन्दीवरिका-द्वारा रानी वासवदत्ता को सब वृत्तान्त विदित हो जाता।

इन्दीवरिका आई और उसे साथ लेकर चली गई। सायकाल हो गया था। अब राजा भी उसका चिन्तन करते वसन्तक के साथ प्रासाद को चले गये।

(३)

वासवदत्ता ने मनोरमा को आज्ञा दी कि महाराज और मेरे विषय मे साकृत्यायनी-द्वारा रचित नाटक का शेष अभिनय तुम्हे आज 'कौमुदी-महोत्सव' के समय करना होगा। मनोरमा ने सोचा कि कल शून्यहृदय आरण्यिका ने अभिनय

ठीक नहीं किया था। यदि आज भी रानी वासवदत्ता का अभिनय वह वैसा ही करेगी तो रानी अवश्य रुष्ट होंगी। इसलिए उसे ढूँढकर चेतावनी दे देनी चाहिए।

मनोरमा ने सरोवर के तट पर कदलीगृह में प्रवेश करती हुई आरण्यिका को अपने आपसे कुछ कहते पाया। मनोरमा छिपकर उसका प्रलाप सुनने लगी।

आरण्यिका दीर्घ निःश्वास लेकर कह रही थी—हृदय! दुर्लभ पुरुष की इच्छा करके तू मुझे क्यों दुःखित करता है? सौम्य-दर्शन राजा मुझे इस प्रकार क्यों सन्तप्त करते हैं? अथवा यह मेरा दुर्भाग्य है, न कि महाराज का दोष। सखी मनोरमा मेरा हृदय है। परन्तु उससे भी, लज्जा के कारण, मैं कुछ कहने में असमर्थ हूँ। मरण के बिना हृदय को शान्ति और कैसे मिल सकती है? यह वही स्थान है जहाँ भ्रमरों से पीडित होने पर मुझे महाराज ने अवलम्बन देकर आश्वासन दिया था कि 'भीरु! डरो मत।'

यह जानकर मनोरमा प्रसन्न हुई कि महाराज इसे पहले देख चुके हैं। उसने सोचा कि तब तो इसके जीवन का उपाय हो सकता है। अच्छा, इसे धीरज देती हूँ। ऐसा विचार करके वह आरण्यिका के सामने चली गई और कहने लगी—क्या अपने हृदय से भी लज्जा करनी चाहिए?

आरण्यिका लज्जित हो गई। वह सोचने लगी कि ओह! इसने सब कुछ सुन लिया। अब इससे सब वृत्तान्त कह

देना चाहिए। वह बोली—प्रिय सखी। क्रोध मत करो। यह लज्जा का ही अपराध है।

उसे धैर्य देती हुई मनोरमा ने कहा—महाराज ने तुम्हें देख ही लिया। अब शोक मत करो। तुमसे मिलने के लिए अब महाराज स्वयं उत्सुक होंगे।

इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि वसन्तक वहाँ आता दिखाई पड़ा। वह आप ही कहता आ रहा था कि आरण्यिका पर महाराज का इतना अनुराग है कि उन्होंने सब राज-कार्य त्याग दिया है और उसकी प्राप्ति के उपाय की चिन्ता में अपना मन बहलाया करते हैं।

आरण्यिका और मनोरमा उसे देखकर प्रसन्न हो गईं। आरण्यिका के विषय में उसे बोलते देखकर दोनों चुपचाप उसकी बातें सुनने लगीं।

वसन्तक अपने आप कह रहा था—महाराज के कहने से मैंने वासवदत्ता, पद्मावती आदि रानियों के प्रासादों में आरण्यिका को ढूँढा परन्तु वहाँ वह नहीं मिली। यहाँ सरोवर पर देखा था, इस विचार से यहाँ देखने आया हूँ। यहाँ भी नहीं है। अब क्या करूँ ?

मनोरमा—प्रिय सखी। सुना ?

वसन्तक फिर कहने लगा—अथवा महाराज ने यह भी कहा था कि यदि ढूँढने पर वह न मिले तो उस सरोवर से,

उसके स्पर्श से दूने शीतल हुए, कमलपत्र ले आना। भला मैं कैसे जानूँ कि उसने किन कमलों को छुआ था ?

यह सुनकर उदयन का प्रेम अब इन्हें स्पष्ट प्रतीत हो गया। मनोरमा ने प्रकट होकर कहा—वसन्तक! आओ, मैं बताती हूँ।

वसन्तक डर गया। बोला—किसे बतायेगी ? क्या देवी को ? मैंने तो कुछ भी नहीं कहा।

मनोरमा—वसन्तक! भय मत करो। तुमने अपने मित्र महाराज की जिस अवस्था का वर्णन किया है उससे दूनी बुरी अवस्था मेरी सखी की है। देखो न।

वसन्तक ने प्रसन्न होकर कहा—मेरा परिश्रम सफल हुआ। राजा से इसका मिलन किस प्रकार हो सकता है ?

मनोरमा ने वसन्तक के कान में कुछ कह दिया। इससे वह प्रसन्न हो गया और उसने एकान्त में कहने लगा—जब तक तुम दोनों वेष धारण करोगी तब तक मैं मित्र के साथ आ जाऊँगा।

अब वसन्तक चला गया और आरण्यिका को साथ लेकर मनोरमा रङ्गशाला में पहुँची।

परिवार-सहित रानी वासवदत्ता और सांकृत्यायनी भी उपस्थित हुईं। रानी वासवदत्ता ने आरण्यिका को अपने आभूषण उतारकर पहनने को दिये और इन्दीवरिका से कहा कि महाराज के ये आभूषण लाकर मनोरमा को पहनने को दे दे जो कि महासेन प्रद्योत ने महाराज उदयन को, नलगिरि हाथी पकड़ देने से प्रसन्न होकर, दिये थे।

मनोरमा और आरण्यिका रङ्गशाला के भीतर चली गईं। कुछ समय के अनन्तर नाटक आरम्भ हो गया।

हाथ में वीणा लिये हुए काञ्चनमाला के साथ वासवदत्ता ने प्रवेश किया। वे वीणाचार्य उदयन की प्रतीक्षा करने लगीं।

ठीक समय पर, जब मनोरमा को राजा उदयन का वेष धारण करके आना था तब, महाराज वहाँ नहीं पहुँचे थे। मनोरमा उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह सोचती थी—क्या वसन्तक ने उनसे कहा नहीं है अथवा वे रानी से डरते हैं?

इतने में वसन्तक के साथ राजा वहाँ आ पहुँचे। मनोरमा ने अब अपने आभूषण उतारकर राजा को पहना दिये।

वसन्तक ने हँसी में कहा—इस प्रकार राजाओं को दासियाँ भी नचाती हैं।

राजा ने मुस्कराकर उससे चुप रहने को कहा और आदेश किया कि मनोरमा के साथ रङ्गशाला में छिपकर हमारा अभिनय देखो।

वसन्तक और मनोरमा रङ्गशाला में छिप गये। राजा स्वयं ध्यान से सुनने लगे कि किस प्रसङ्ग का अभिनय चल रहा है।

काञ्चनमाला—राजकुमारी जो चाहे पूछें।

आरण्यिका—क्या यह सत्य है कि वीणा बजाते हुए वत्सराज यदि पिताजी को मोहित कर लेंगे तो वे अवश्य उन्हें बन्दीगृह से मुक्त कर देंगे?

अब राजा ने वह सुनकर यवनिका उठाकर प्रवेश करते हुए कहा—ठीक है। इसमें क्या सन्देह ? परिवार-समेत प्रद्योत को वीणा बजाकर मोहित करके मैं शीघ्र ही वासवदत्ता को हर ले जाऊँगा। मन्त्री यौगन्धरायण ने सब प्रबन्ध ठीक कर लिया है।

रानी वासवदत्ता वत्सराज उदयन को देखकर खड़ी हो गई। उसने उन्हें प्रणाम किया। राजा उदयन ने समझा कि कदाचित् रानी ने मुझे पहचान लिया। परन्तु इसी समय साकृत्यायनी ने मुस्कराकर कहा—रानी! व्याकुल मत हो। यह तो अभिनय है।

अब राजा को शान्ति मिली। वासवदत्ता ने भी विस्मित होकर मुस्कराहट के साथ कहा—क्या यह मनोरमा है ? मैंने तो समझा था कि ये स्वयं महाराज हैं। शाबाश मनोरमा शाबाश! तुम्हारा अभिनय निःसन्देह अत्युत्तम है।

आरण्यिका ने काञ्चनमाला से पूछा—क्या यह सत्य है कि वीणा बजाते हुए वत्सराज यदि पिताजी को मोहित कर लेंगे तो वे उन्हें कारागार से मुक्त कर देंगे ?

काञ्चनमाला—हाँ, तुम इस प्रकार वीणा बजाओ जिससे वत्सराज तुम्हारा अधिक मान करें।

राजा ने सोचा कि जो मेरी अभिलाषा थी वह इसने स्वयं पूर्ण कर दी। अब आरण्यिका गाकर वीणा बजाने लगी—

मेघाच्छन्न निरन्तर नभ में मानसरोवर करने वास।
चला हंस निज प्राणप्रिया सँग इच्छा करके निज आवास॥

मनोरमा ने इस समय वसन्तक को जगाया और आरण्यिका का अभिनय देखने के लिए कहा। वसन्तक ने रुष्ट होकर कहा—दासीपुत्री। तू मुझे सोने नहीं देती। मुझे कितने ही दिनों से निद्रा नहीं आई। अच्छा, मैं जाकर दूसरे स्थान पर सोता हूँ।

आरण्यिका ने फिर गाया—

कुटिल काम से संतापित हो मधुकरिका रस-रंग भरी।
प्रियदर्शन की सतत प्रार्थना में डूबी थी वहाँ खरी॥

प्रसन्न होकर राजा ने उसे साधुवाद दिया और कहा—अहो। तेरा गाना विचित्र है और वीणा का बजाना भी विलक्षण है।

आरण्यिका ने वीणा को हृदय से लगा लिया। आसन से उठकर उसने राजा को प्रेमपूर्वक देखा और प्रणाम किया।

राजा ने मुस्कुराकर कहा—तुम्हारे लिए मैं जो इच्छा करता हूँ वह तुम्हें प्राप्त हो।

काञ्चनमाला ने आरण्यिका के आसन की ओर सङ्केत किया और वत्सराज को वहाँ बैठने के लिए कहा।

वहाँ बैठकर राजा कहने लगे—अब राजपुत्री कहाँ बैठेंगी?

काञ्चनमाला ने मुस्कराकर कहा—अभी आपने राजकुमारी की, विद्या की निपुणता पर, प्रशंसा की है। सो वह गुरु के पास बैठने के योग्य है।

राजा ने आरण्यिका को आधे सिंहासन पर बैठने के लिए कहा तो वह काञ्चनमाला की ओर देखने लगी। काञ्चनमाला ने कहा—बैठ जाओ। इसमें क्या दोष है ?

आरण्यिका लज्जित सी होकर वहाँ बैठ गई।

वासवदत्ता ने सांकृत्यायनी से कहा—भगवती ! यह कल्पना आपने जोडी है। मैं तो उस समय एक आसन पर उनके साथ नहीं बैठी थी।

सांकृत्यायनी—काव्य ऐसा ही होता है।

राजा ने आरण्यिका को फिर वीणा बजाने को कहा। परन्तु आरण्यिका ने काञ्चनमाला से कहा—मैं देर तक वीणा बजाने के कारण थक गई हूँ, अत अब और बजाने में असमर्थ हूँ।

काञ्चनमाला ने राजा से निवेदन किया—उपाध्याय। राजकुमारी श्रान्त हो गई है। उनके गालों पर पसीने की बूँदों और काँप रही हाथों की अँगुलियों को देखिए। सो आप मुहूर्त्त भर प्रतीक्षा करें।

राजा—काञ्चनमाला ! तुमने ठीक कहा।

यह कहकर राजा ने आरण्यिका को हाथ से पकडना चाहा, पर उसने हाथ हटा दिया।

वासवदत्ता को ईर्ष्या हो आई। वे कहने लगीं—भगवती ! यह भी तुमने अपनी ओर से बढाया है। काञ्चनमाला के समान मैं काव्य से ठगी नहीं जा सकती।

साकृत्यायनी ने हँसकर कहा—रानी। काव्य ऐसा ही होता है।

उधर आरण्यिका ने क्रोध में कहा—काञ्चनमाला! चल, दूर हट। मैं तुझे नहीं चाहती।

काञ्चनमाला मुस्कराकर कहने लगी—यदि यहाँ बैठी हुई म तुम्हें अच्छी नहीं लगती तो लो, जाती हूँ।

जब वह जाने लगी तब आरण्यिका ने स्तब्ध होकर कहा—ठहर, काञ्चनमाला, ठहर। ले, यह मैं अपना हाथ इनको समर्पण करती हूँ।

राजा ने आरण्यिका का हाथ पकड लिया।

वासवदत्ता अब सहसा उठकर कहने लगी—भगवती! यह तुम देखो। मैं काल्पनिक काव्य का मिथ्या अभिनय देखने में असमर्थ हूँ।

साकृत्यायनी—रानी! यह धर्मशास्त्र के मतानुसार गान्धर्व-विवाह है। लज्जा का यहाँ क्या प्रयोजन? यह अभिनय-मात्र है। सो बीच में रसभङ्ग करके जाना उचित नहीं।

परन्तु वासवदत्ता चली गई। साथ में इन्दीवरिका थी। इन्दीवरिका की दृष्टि रङ्गशाला के द्वार पर सोये हुए वसन्तक पर पड गई।

वासवदत्ता ने उस देखकर सोचा कि राजा भी यहाँ अवश्य होंगे। सो यह पूछने के लिए वसन्तक को जगा दिया।

वसन्तक ने समझा कि मनोरमा फिर जगा रही है। वह उठकर पूछने लगा—क्या मेरा मित्र अभिनय समाप्त करके वापस आ गया?

अब तो सारा रहस्य खुल गया। वासवदत्ता ने पूछा—क्या महाराज अभिनय कर रहे हैं? मनोरमा कहाँ है?

वसन्तक—रङ्गशाला में बैठी है।

वासवदत्ता ने ताने के ढँग पर कहा—शाबाश, मनोरमा शाबाश! तूने खूब अभिनय किया।

मनोरमा—महारानी! इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं। इस दुष्ट वसन्तक ने मेरे आभूषण छीन लिये और द्वार पर खड़े होकर मुझे रोक रक्खा। फिर मृदंग आदि की ध्वनि के कारण मेरे पुकारने का शब्द किसी ने नहीं सुना।

वासवदत्ता ने कहा—मैंने सब जान लिया। 'आरण्यिका-वृत्तान्त' नाटक का सूत्रधार वसन्तक ही है।

वासवदत्ता—मनोरमा! इसे बाँध लो। अब इसके प्रबन्ध के अनुसार हो रहे अभिनय को देखने मैं रङ्गशाला में जाती हूँ।

मनोरमा को अब धीरज बँधा। वह वसन्तक को बाँधकर कहने लगी—अब अपनी दुर्नीति का फल भोगो।

वासवदत्ता राजा के पास चली गई। राजा ने समझा कि मैं पहचाना गया। अब कुछ उपाय हो न सकता था। उन्होंने रानी से क्रोध शान्त करने के लिए कहा।

वासवदत्ता ने व्यंग्य में कहा—यहाँ कुपित है कौन ?

राजा ने रानी का, चरण छूकर, प्रसन्न करना चाहा। परन्तु वासवदत्ता ने कहा—आरण्यिका ! तुम्हें कुपित समझकर महाराज प्रसन्न होने के लिए कह रहे हैं—'प्रिये ! प्रसन्न हाओ !' सो तुम इनके पास जाओ।

अब रानी ने आरण्यिका को खींचा। वह डरकर कहने लगी—महारानी ! मैं इस विषय में कुछ नहीं जानती।

वासवदत्ता—आरण्यिका ! तू कैसे कुछ नहीं जानती ? मैं तुझे सिखाती हूँ।

अब रानी ने इन्दीवरिका को आरण्यिका के पकड़ने की आज्ञा दी। राजा ने फिर चरण छूकर क्षमा माँगी। परन्तु रानी कुछ उत्तर दिये बिना ही, वसन्तक और आरण्यिका को साथ लेकर, अन्त पुर में चली गई।

(४)

रानी वासवदत्ता आरण्यिका पर अत्यन्त रुष्ट थीं। आरण्यिका ने दु खी होकर एक बार आत्म-हत्या करनी चाही परन्तु मनोरमा ने उसे रोक लिया। यह समाचार वसन्तक-द्वारा महाराज के पास पहुँचाकर मनोरमा आ रही थी कि उसे काञ्चनमाला मिल गई। वह साकृत्यायनी को ढूँढने आई थी। उसने मनोरमा से पूछा—सखी ! सांकृत्यायनी को देखा है ?

मनोरमा—देखा तो है। क्या काम है?

काञ्चनमाला—महारानी अङ्गारवती का आज एक पत्र आया था। उसे पढने से रानी की आँखों मे आँसू भर आये थे। उनके विनोद के लिए उसे पूछ रही हूँ।

पत्र के विषय मे मनोरमा को उत्सुकता हुई। वह पूछने लगी—पत्र मे क्या लिखा है?

काञ्चनमाला—पत्र मे लिखा है कि जो मेरी बहन है वह तुम्हारी माता ही है। उसका पति दृढवर्मा तुम्हारे पिता के तुल्य है, परन्तु इसके कहने की क्या आवश्यकता? अब एक वर्ष मे अधिक हुआ कि दुष्ट कलिङ्गराज ने उन्हें बन्दी किया था। अत तुम्हारे स्वामी के लिए यह उचित नहीं है कि उसके निकटवर्ती होकर, बलवान् होने पर भी, इस अनिष्ट वृत्तान्त को सुनकर ऐसी उदासीनता धारण करें।

मनोरमा ने उसे शीघ्र बता दिया कि वे तो इस समय रानी के ही पास बैठी हैं। काञ्चनमाला तुरन्त उधर चली गई।

आरण्यिका से मिले मनोरमा को कुछ विलम्ब हो गया था। इससे वह आरण्यिका के पास चली गई। उसे सन्देह था कि कहीं वह कुछ अनिष्ट न कर डाले।

उधर वासवदत्ता और सांकृत्यायनी बैठी हुई बातें कर रही थीं। वासवदत्ता कह रही थी—माता को क्या पता कि मैं अब वह वासवदत्ता नहीं रही। आरण्यिका का वृत्तान्त तो तुमने अभी प्रत्यक्ष देखा है।

साकृत्यायनी ने उस विषय को दबाना चाहा। वह कहने लगी—महाराज तो 'कौमुदी-महोत्सव' के दिन आपके विनोद के लिए अभिनय कर रहे थे।

परन्तु वासवदत्ता को इससे आश्वासन कहाँ हो सकता था? वे उसमें अपना अपमान समझकर रोने लगीं।

साकृत्यायनी ने कहा भी कि रोइए मत, वत्सराज ऐसे नहीं हैं कि आपकी ओर से उदासीन रहें, परन्तु वासवदत्ता को ये बातें अब कल्पना-मात्र प्रतीत होती थीं।

रानी को प्रसन्न करने के लिए इसी समय अकस्मात् राजा आ गये। उनके साथ वसन्तक था। वह कारागार से मुक्त हो चुका था। राजा को देखकर वासवदत्ता खड़ी हो गई और प्रणाम करके भूमि पर ही बैठ गई। उन्हें भूमि पर बैठते देखकर राजा भी भूमि पर बैठ गये और हाथ जोड़ कर प्रसन्न होने की प्रार्थना करने लगे। वासवदत्ता ने तब भी कहा—आप बहुत प्रसन्न हैं। अब मुझे क्यों सताते हैं? उठिए यहाँ क्या कष्ट है?

साकृत्यायनी—महाराज, उठिए। इससे क्या लाभ? इनकी उद्विग्नता का कारण और ही है।

राजा ने जब कारण पूछा तब साकृत्यायनी ने राजा के कान में कुछ कह दिया। सुनकर राजा हँस पड़े और रानी से कहने लगे—यदि यही कारण है तो शोक छोड़ो। मुझे भी यह ज्ञात था। कार्य पूर्ण किये बिना मैंने तुमसे कुछ

कहना उचित नहीं समझा था। भला मैं दृढवर्मा के विषय मे उदासीन कैसे रह सकता हूँ ? कुछ दिन हुए, मुझे सूचना मिली थी कि मेरे सेनापति विजयसेन ने उसकी सेना को नष्ट कर दिया है। कलिङ्गराज निःसहाय हो गया है। उसने दुर्ग मे आश्रय लिया है। आशा है कि दुर्ग के नष्ट होने पर वह या तो शीघ्र ही बन्दी हो जायगा अथवा युद्ध में मारा जायगा।

यह वृत्तान्त सुनकर वासवदत्ता को कुछ सन्तोष हुआ। इसी समय वहाँ विजयसेन और कञ्चुकी विनयवसु आ पहुँचे।

विनयवसु ने महाराज का स्वागत किया और निवेदन किया कि आपकी आज्ञा से कलिङ्गराज को मारकर विजयसेन ने हमारे स्वामी दृढवर्मा को सिंहासन पर बैठा दिया है। राजा ने प्रसन्न होकर रानी को बधाई दी।

वासवदत्ता—मै अनुगृहीत हूँ।

इस शुभ अवसर पर वसन्तक कब चूकनेवाला था ? अब उसे एक और चाल सूझी। वह कहने लगा कि राज-प्रासाद मे ऐसे अभ्युदय पर ये काम करने चाहिएँ—(राजा और वीणा की ओर सङ्केत करके) गुरु पूजा, (यज्ञोपवीत दिखाकर) ब्राह्मण-पूजा, (आरण्यिका की ओर सङ्केत करके) बन्दीगृह से सबकी मुक्ति।

प्रसन्न होकर वासवदत्ता ने सांकृत्यायनी को आरण्यिका के मुक्त करने के लिए भेज दिया।

विनयवसु फिर कहने लगा—दृढवर्मा आपके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। वे आपके लिए अपने प्राण तक समर्पण करने को उद्यत हैं। यद्यपि उन्हें इस बात का शोक था कि आपको सङ्कल्प की हुई पुत्री प्रिय-दर्शिका के खो जाने से आपके साथ उसका पाणि ग्रहण नहीं हो सका तथापि वासवदत्ता के स्वामी होकर आपने उनके उस शोक को दूर कर दिया है।

वासवदत्ता की आँखों मे आँसू भर आये। उन्होंने पूछा—मेरी बहन कैसे खो गई ?

विनयवसु—राजकुमारी। कलिङ्गराज के आक्रमण करने पर जब राजधानी मे प्रलय काल का-सा दृश्य उपस्थित हुआ तब मैं उसे, सौभाग्य-वश देखकर, वत्सराज के पास पहुँचाने को लेकर चल पडा। पुन कुछ सोचकर मैं उसे विन्ध्यकेतु को सौंपकर चला गया। किन्तु दुर्भाग्य-वश विन्ध्यकेतु का राज्य इसके पश्चात् नष्ट-भ्रष्ट हो गया। राजकुमारी का कहीं पता न चला।

इस प्रकार वार्त्तालाप हो रहा था कि मनोरमा ने आकर कहा—महाराज। उस कन्या के प्राण सङ्कट मे हैं।

वासवदत्ता—क्यों, आरण्यिका को क्या हुआ ?

मनोरमा—उसने विष खा लिया है। उसका मृत्यु-काल उपस्थित है। आप उसकी रक्षा करें।

वासवदत्ता ने सोचा कि लोग बडे दुर्जन हैं। पता नहीं इस विषय में क्या-क्या किंवदन्ती फैले। इसी से उन्होंने

मनोरमा को उसे लाने की आज्ञा दी और कहा कि महाराज ने नागलोक में विष चिकित्सा सीखी थी। विष उतारने में ये सिद्धहस्त हैं।

आरण्यिका को लेकर मनोरमा आ गई। आरण्यिका की अवस्था शोचनीय थी। उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था। हाथ पकड़कर वासवदत्ता ने राजा को उठाया और उसकी रक्षा करने के लिए कहा।

आरण्यिका को देखकर विनयवसु ने सोचा कि इसकी आकृति अवश्य प्रिय-दर्शिका के सदृश है। तब वासवदत्ता से पूछा—यह कहाँ से प्राप्त हुई थी?

वासवदत्ता—यह विन्ध्यकेतु की कन्या है। इसे विजयसेन यहाँ लाया था।

विनयवसु—यह विन्ध्यकेतु की कन्या नहीं हो सकती। यह तो वही राजकुमारी प्रिय-दर्शिका है।

अब तो वासवदत्ता उसकी रक्षा के लिए और भी व्याकुल हो उठीं। वे कहने लगीं—महाराज! बचाइए, बचाइए, मेरी बहन मर रही है।

राजा ने आगे बढ़कर अपना हाथ प्रिय-दर्शिका पर रक्खा और मन्त्र पढ़ना आरम्भ किया। धीरे धीरे स्वस्थ होकर प्रिय-दर्शिका उठ बैठी।

"राजकुमारी! मैं तुम्हारे पिता का सेवक हूँ।" यह कहकर विनयवसु उसके चरणों पर गिर पड़ा।

उसे देखने पर, माता-पिता का स्मरण करके, प्रियदर्शिका रोने लगी।

विनयवसु—राजकुमारी। रोओ मत। तुम्हारे माता-पिता सकुशल हैं। वत्सराज की कृपा से उन्हें फिर से राज्य प्राप्त हो गया है।

वासवदत्ता ने प्रसन्न होकर बहन को हृदय से लगा लिया।

वसन्तक—रानी। बहन को हृदय से लगाकर तो आप अधिक प्रसन्न हैं, किन्तु वैद्य को पारितोषिक देना भूल गई हैं।

उसकी चाल समझे बिना ही राजा ने अपना हाथ बढ़ा दिया। रानी ने भी आरण्यिका का हाथ आगे किया, किन्तु फिर राजा ने अपना हाथ खींचना चाहा। तब वासवदत्ता ने कहा—इसे अस्वीकार करने का आपको क्या अधिकार है? इसके पिता ने पहले ही इसे आपके अर्पण कर दिया है?

वासवदत्ता ने राजा का हाथ खींचकर आरण्यिका के हाथ से मिला दिया। राजा भी चुप हो रहे।

---

(५) नागानन्द

(१)

एक समय विद्याधरों के राजा जीमूतकेतु राज्य करते थे। उनका एकमात्र पुत्र जीमूतवाहन था। उसको राज्य-भार सँभालने योग्य देखकर राजा जीमूतकेतु ने वन जाने का निश्चय किया। परन्तु जीमूतवाहन, मन्त्रियों को राज पाट सौंपकर, माता-पिता की सेवा के लिए साथ ही चले गये।

जीमूतवाहन के विचार बड़े ऊँचे थे। वे जानते थे कि युवावस्था विषय-भोग की आवास-भूमि है, उसका नाश अवश्यम्भावी है, वह कर्त्तव्य निर्धारण में विमुख है। परन्तु राजकुमार का मत था कि इन्द्रियों के वशीभूत निन्दनीय यौवन भी, माता-पिता की सेवा शुश्रूषा में व्यतीत किया जाय तो, आनन्ददायक हो सकता है।

जीमूतवाहन का मित्र आत्रेयी अन्य प्रकृति का पुरुष था। वह चाहता था कि जीमूतवाहन माता पिता की सेवा का आग्रह छोड़कर इच्छानुसार राजसुख का उपभोग करें। परन्तु जीमूतवाहन ऐसा कब कर सकते थे? उन्हें तो पिता के सामने भूमि पर बैठने में जो गौरव प्रतीत होता था वह राज्योपभोग में नहीं दिखाई पड़ता था। पिता के चरण दबाने में

जयति जयति गिरिराज किशोरी।
विकसित अमल कमल केसर के सुचि पराग-सी डोरी।
ह्वै प्रसन्न मम मनवांछित फल वेगहि सिद्ध करो री॥

इसके पश्चात् ही ये शब्द भी सुन पड़े—राजकुमारी! तुमको वीणा बजाते बहुत समय हो गया। क्या तुम्हारी अँगुलियाँ नहीं थकीं?

राजकुमारी ने झिड़ककर कहा—सखी! देवी के सामने वीणा बजाने से मेरी अँगुलियाँ क्यों थकेंगी?

सखी—राजपुत्री! इस निर्दय देवी के सामने वीणा बजाने से क्या लाभ? इतने दिन पूजा करने पर भी यह तुम पर प्रसन्न नहीं हुई।

इसे कन्या जानकर आत्रेयी ने कुमार से देखने को कहा। जीमूतवाहन ने भी कहा—हाँ, कन्याओं को देखने में कोई दोष नहीं। किन्तु हमें देखकर भय और लज्जा से वह यहाँ ठहर न सकेगी। अतएव हम यहाँ लताकुञ्ज की आड़ में ही उसे देखते हैं।

उस कन्या को देखकर दोनों विस्मित हो गये। आत्रेयी ने कहा—यह केवल अपनी वीणा की निपुणता से ही हमें आनन्दित नहीं करती, बल्कि अपने अनुपम सुन्दर रूप से भी प्रमुदित करती है।

उस कन्या को देखने पर जीमूतवाहन की जो दशा हुई उससे आत्रेयी ने समझ लिया कि कुमार भी उसके प्रेम पाश में

बँध गये। उधर मन्दिर से पुन शब्द आया—राजकुमारी! इस निर्दय देवी के सामने वीणा बजाने से क्या लाभ?

अब सखी ने वीणा खींच ली। राजकुमारी ने क्रुद्ध होकर कहा—चतुरिका! भगवती गौरी की निन्दा मत करो। आज भगवती ने स्वप्न में मुझसे कहा है कि कुमारी मलयवती! मैं तुम पर सन्तुष्ट हूँ। इसलिए विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा शीघ्र ही तुम्हारा पाणि-ग्रहण करेगा।

अब तो चतुरिका प्रसन्न हो गई। वह कहने लगा—यदि ऐसा है तब तो भगवती ने ऐसा वर प्रदान किया है जो तुम्हारे हृदय मे स्थित है।

यह बातचीत सुनकर आत्रेयी ने कुमार को वहाँ ले जाकर सामने खडा कर दिया और कहा—देवी ने यही 'वर' दिया है।

मलयवती डरकर खडी हो गई। उसने चतुरिका से पूछा—यह कौन है?

चतुरिका—अपनी अपूर्व आकृति से मुझे तो यह देवी का प्रसाद जान पडता है।

मलयवती ने प्रेम और लज्जा के साथ जीमूतवाहन को देखा। परन्तु लज्जा के कारण वह अधिक देर तक ठहर न सकी। वह चतुरिका से और कहीं चलने के लिए कहने लगी।

इस पर आत्रेयी ने कहा—क्या आपके तपोवन में ऐसा ही नियम है कि अतिथि के आने पर वाणी-द्वारा भी उसका सत्कार नहीं किया जाता?

चतुर चतुरिका ने मलयवती की कुमार पर अनुरक्त दृष्टि देख ली थी। वह बोली—राजपुत्री! ब्राह्मण ठीक कहता है। तुम्हें अतिथि-सत्कार करना चाहिए। सो तुम हत-बुद्धि हुई क्यों खडी हो? अच्छा, मैं ही स्वागत किये देती हूँ।

इस पर मलयवती ने कहा—तुम्हें परिहास अधिक प्रिय है। ऐसा मत करो। कोई तपस्वी देख लेगा तो मुझे धृष्ट समझेगा।

इसी समय अकस्मात् एक तपस्वी आता दिखाई पडा। उससे कुलपति कौशिक ने कहा था—शाण्डिल्य! पिता की आज्ञा से सिद्धों के युवराज मित्रावसु, आज इस मलय पर्वत पर आये हुए, विद्याधरों के भविष्यत् चक्रवर्ती राजा जीमूत-वाहन को अपनी बहन मलयवती के लिए वर निश्चित करने के विचार से देखने गये हैं। भाई की प्रतीक्षा करते हुए मलयवती को मध्यन्दिन-सवन का समय व्यतीत हो जायगा। अतएव तुम उसे यहाँ बुला लाओ।

गुरु की आज्ञा से शाण्डिल्य ने पार्वती के मन्दिर में जाते हुए मार्ग में पदचिह्न देखे। पदचिह्नों से उसने समझ लिया कि यहाँ कोई चक्रवर्ती आया है। अवश्य वे जीमूतवाहन होंगे।

तपस्वी को आया देखकर जीमूतवाहन और मलयवती आदि ने प्रणाम किया। तपस्वी ने मलयवती से कहा—कुल-पति ने तुम्हारे लिए कहला भेजा है कि मध्यन्दिन-सवन का समय व्यतीत हो रहा है। अतएव शीघ्र आओ।

एक ओर गुरु की आज्ञा थी, दूसरी ओर प्रियतम के दर्शन का सुख। परन्तु विवश होकर मलयवती तपस्वी के साथ चली गई।

जीमूतवाहन और आत्रेयी भी भोजन आदि से निवृत्त होने के लिए चले गये।

(२)

मलयवती को हृदय का सन्ताप अधिक कष्ट देने लगा। उसने चतुरिका से कहा—नये केले के पत्तों से आवृत चन्दनलतागृह में चन्द्रमणि शिला को सजाओ।

चतुरिका जब चन्द्रमणि शिला को सजा चुकी तब राजकुमारी मलयवती को साथ लेकर चन्दनलतागृह में गई। दोनों चन्द्रमणि की शीतल शिला पर बैठ गईं। किन्तु मलयवती का चित्त वहाँ भी शान्त न हुआ। उसने चतुरिका से पूछा—यह चन्दनलतागृह, घने पल्लवों के कारण सूर्य की किरणें न पहुँचने पर भी, मेरे सन्ताप को क्यों नहीं दूर करता?

चतुरिका—मैं इसका कारण जानती हूँ। परन्तु तुम उसे असम्भव समझकर स्वीकार न करोगी।

मलयवती ने समझा कि इसने मेरी दशा को ताड़ लिया है परन्तु फिर भी पूछा—मैं स्वीकार क्यों न करूँगी? कहो, क्या कारण है?

चतुरिका—तुम्हारे इस सन्ताप का कारण वही वर है जो तुम्हारे हृदय में स्थित है। इसी कारण यह स्वभाव से ही शीतल चन्दनलतागृह तुम्हारे सन्ताप को नहीं हरता।

मलयवती—चतुरिका! तुम तो वास्तव में चतुरिका हो।

चतुरिका—अब तुम सन्ताप न करो। यदि मैं वास्तव में चतुरिका हूँ तो सच समझो कि वह वर भी तुम्हारे विना क्षण भर भी सुखी न होगा, यह भी मैंने देख लिया है। विना लक्ष्मी के विष्णु कभी शान्त रह सकते हैं?

मलयवती—मुझे अधिक शोक इस बात का है कि मैंने उन महानुभाव का वचनों-द्वारा भी सत्कार नहीं किया। सत्कार न करते देखकर वे मुझे अशिष्ट समझते होंगे।

अब मलयवती रोने लगी। चतुरिका ने उसके हृदय पर चन्दनलता का रस निचोड़कर लगाया परन्तु निरन्तर आँसुओं के गिरने से वह उष्ण हो गया। उसने केले के पत्ते से पङ्खा किया परन्तु मलयवती के उष्ण निःश्वासों से वायु उष्ण हो जाती थी। अब चतुरिका ने समझ लिया कि मलयवती के दुःख का अन्त जीमूतवाहन के दर्शन से ही होगा।

इसी समय जीमूतवाहन और आत्रेयी अकस्मात् आ पहुँचे। जीमूतवाहन मलयवती के लिए अधीर हो रहे थे और उसी के ध्यान में मित्र के साथ वहाँ आये थे। आत्रेयी ने उनके मन का प्रबल आवेग जानकर, दूसरा प्रसङ्ग आरम्भ

करने के अभिप्राय से, कहा—मित्र! आज तुम माता-पिता की सेवा से कैसे शीघ्र निपटकर आ गये?

जीमूतवाहन—मित्र! अच्छे समय में तुमने यह प्रश्न किया। तुम्हारे बिना यह बात और किससे कहूँगा? सुनो, आज मने स्वप्न में देखा है कि वह कन्या चन्दनलतागृह में चन्द्रमणि की शिला पर बैठी है। वह किसी कारण क्रुद्ध होकर मुझे उलहना दे रही है और रो रही है। अत इच्छा है कि उस स्वप्न के प्रिया-समागम के कारण इस रमणीय चन्दन-लतागृह मे शेष दिन व्यतीत करूँ। आओ, वहाँ चलें।

इनके पास आने से चतुरिका को आहट मिल गई। इससे मलयवती और चतुरिका रक्त अशोक वृक्ष के पीछे छिप गईं।

इतने में जीमूतवाहन और आत्रेयो वहाँ चन्द्रमणि शिला के पास आ पहुँचे। छिपे छिपे मलयवती और चतुरिका इन्हे देखने लगी।

आत्रेयी ने जीमूतवाहन से चन्द्रमणि शिला पर बैठने को कहा। आँसू बहाते हुए जीमूतवाहन ने दीर्घ श्वास लेकर कहा—यह वही चन्द्रमणि शिला है जहाँ मैंने उसे तीव्र नि श्वास लेते, पल्लव के सदृश अपने बायें हाथ पर चिन्ता से पीत वर्ण मुख को रक्खे, देखा था। अधर के कुछ काँपने से प्रकट मनोभाववाली वह, मेरे विलम्ब करने पर मानसिक क्रोध को दबाने के प्रयत्न में, रो रही थी। अतएव इस शिला पर ही बैठते हैं।

यह सुनकर मलयवती ने सोचा कि ये प्रेम से कुपित किस स्त्री का वर्णन कर रहे हैं।

आत्रेयी ने फिर पूछा—उस रोती हुई स्त्री से तुमने क्या कहा था ?

जीमूतवाहन—मैंने कहा था कि आँसुओं के जल से सिची हुई यह चन्द्रमणि शिला, जान पड़ता है, तेरे मुख रूपी चन्द्रमा का उदय होने से जल मुक्त कर रही है।

अब तो मलयवती के लिए यह सुनना असह्य हो उठा। वह अन्यत्र जाने लगी परन्तु चतुरिका ने कहा—कुछ और मत सोचो। इन्होंने तुम्हीं को स्वप्न में देखा है।

उसके कहने से मलयवती पूरी बात सुनने के लिए ठहर गई।

जीमूतवाहन ने स्वप्न मे देखी हुई स्त्री का चित्र उस शिला पर बनाकर मनोविनोद करने की इच्छा की। उसने आत्रेयी को पर्वत-शिखर से गेरू का टुकड़ा लाने के लिए भेजा। आत्रेयी एक के बदले पाँचों रङ्गों के पत्थर ले आया। जीमूतवाहन ने चित्र बनाना आरम्भ किया। वे पूरा चित्र बनाये बिना ही उसे देखकर प्रसन्न होने लगे। आत्रेयी ने भी कहा—मित्र, आपने जिसका चित्र बनाया है उसकी अनुपस्थिति में भी ऐसा सुन्दर चित्र।

जीमूतवाहन ने मुस्कराकर कहा—मित्र। सदा चिन्ता करने के कारण सामने स्थापित की हुई प्रिया सदा समीप ही है। उसको बार-बार देखकर चित्र बना रहा हूँ। इसमे क्या आश्चर्य ?

अब मलयवती को विश्वास हो गया कि यह किसी और की चर्चा है। वह निराश होकर आँसू बहाने लगी। परन्तु इसी समय जीमूतवाहन को देखते हुए मित्रावसु वहाँ आ गया।

मित्रावसु के पिता ने उससे कहा था कि जीमूतवाहन को हम लोगों ने, निकट होने के कारण, अच्छी तरह देख लिया है। इससे योग्य वर और कहाँ मिलेगा? अतएव मलयवती का विवाह इसके साथ कर दो। इस कारण मित्रावसु इस विषय में जीमूतवाहन से पूछने आया था। उसे सूचना मिली थी कि गौरी के मन्दिर के साथ लगे हुए चन्दनलतागृह में जीमूतवाहन विद्यमान हैं।

मित्रावसु को इधर आते देखकर शिला पर बनाये चित्र को जीमूतवाहन ने केले के पत्ते से ढँक दिया।

मित्रावसु ने आकर अपने पिता विश्वावसु का संदेश कहा—"मलयवती नाम की मेरी कन्या सम्पूर्ण सिद्धराज वश के प्राणों के तुल्य प्रिय है। उसे मैं आपको सौंपता हूँ। स्वीकार कीजिए।"

जीमूतवाहन—ऐसा कौन है जो आपके साथ इस प्रशंसनीय सम्बन्ध की अभिलाषा न करे? किन्तु अन्यत्र लगे हुए चित्त को वहाँ से हटाकर और कहीं लगाना कठिन है। अतएव मैं आपकी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सकता।

यह उत्तर सुनकर मलयवती मूर्च्छित हो गई। आत्रेयी ने मित्रावसु से कहा—यह कुमार परवश है। मलयवती के

लिए इनसे प्रार्थना करने में क्या लाभ ? इनके माता-पिता से जाकर प्रार्थना कीजिए।

यह उत्तर ठीक जानकर मित्रावसु जीमूतकेतु के पास चला गया।

मलयवती सचेत होकर मन में अपने जीवन को कोसने लगी। उसने अशोक वृक्ष के नीचे अतिमुक्त लता से गले में फाँसी लगाकर आत्महत्या करने का विचार किया। इसी निमित्त उसने चतुरिका से कहा—देखो तो, मित्रावसु दूर चले गये हों तो मैं भी यहाँ से चलूँ।

चतुरिका थोड़ी दूर चलकर रुक गई। वह मलयवती के विषय में कुछ सोचकर छिप गई।

मलयवती अपने गले में फाँसी लगाने लगी। यह देखकर चतुरिका ने "बचाओ बचाओ, राजकुमारी फाँसी लगा रही है" कहकर पास बैठे जीमूतवाहन को बुला लिया।

जीमूतवाहन ने मलयवती को देखकर कहा कि यह क्या ? यही तो मेरे मनोरथ का आधार है। अब उन्होंने हाथ से पकड़कर उसे लता की फाँसी से मुक्त कर दिया।

"कौन है ?" क्रोध से यह पूछकर मलयवती ने हाथ छोड़ने को कहा।

जीमूतवाहन ने हाथ न छोड़ा। कहा—यह अपराधी हाथ पकड़ लिया गया है।

आत्रेयी ने फाँसी लगाने का कारण पूछा। चतुरिका ने कहा—आपके मित्र ही कारण हैं। इन्होंने शिला पर जिस स्त्री का चित्र बनाया था उसमें अधिक अनुरक्त होने के कारण इन्होंने मित्रावसु की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। अपने इसी अपमान से ईर्ष्या-वश इसने ऐसा किया।

जीमूतवाहन को यह जानकर हर्ष हुआ कि यही विश्वावसु की पुत्री मलयवती है।

आत्रेयी—यदि ऐसा है तो मेरा मित्र निर्दोष है। विश्वास न हो तो आप स्वयं शिला के पास जाकर देख लें।

जीमूतवाहन मलयवती को, हाथ पकड़कर, शिला के पास ले गये। मलयवती अपना ही चित्र अङ्कित देखकर लज्जित और प्रसन्न हुई।

आत्रेयी—तुम्हारा गान्धर्व विवाह हो गया। अब हाथ छोड दो। कोई स्त्री शीघ्रता से इधर ही आ रही है।

यह स्त्री एक दासी ही थी। इसने आकर सूचना दी कि जीमूतवाहन के माता पिता ने राजकुमारी को अपनी पुत्रवधू बनाना स्वीकार कर लिया। आज ही मलयवती का विवाह निश्चित हुआ है। अत मित्रावसु ने इन्हें शीघ्र राजप्रासाद में ले चलने की आज्ञा दी है।

प्रेम और लज्जा के साथ जीमूतवाहन को देखती हुई मलयवती प्रासाद की ओर चली गई।

आत्रेयी ने हाथ से मुँह पोंछा और क्रोध से एक लट्ठ उठाकर कहा—अरी दासीपुत्री ! यह राजप्रासाद है। क्या करूँ ? फिर जीमूतवाहन की ओर देखकर कहा—मित्र ! आपके सामने ही इस दासीपुत्री ने मेरा अपमान किया। यहाँ ठहरने से क्या लाभ ? मैं अन्यत्र जाता हूँ।

प्रसन्न करने के लिए आत्रेयी के पीछे-पीछे दासी भी गई। केवल मलयवती और जीमूतवाहन वहाँ रह गये।

कुछ ही समय के अनन्तर इन्हें दासी-द्वारा विदित हुआ कि मित्रावसु आ रहे हैं। मलयवती प्रासाद को चली गई।

मित्रावसु ने आकर कहा—मतङ्ग ने आपके राज्य पर आक्रमण कर दिया है। आप मुझे उसका नाश करने की आज्ञा दें। मैं उसे युद्ध में मार डालूँगा।

उसका वध सुनकर जीमूतवाहन ने हाहाकार करते हुए कहा—यह बड़ी निर्दयता है। देखो, जो बिना माँगे ही दया करके अपने प्राण भी दे सकता है, वह भला राज्य के लिए जीव-नाश की निर्दयता कैसे सहन कर सकता है ! अज्ञान, राग, द्वेष आदि क्लेशों के अतिरिक्त मैं और किसी को अपना शत्रु नहीं मानता। यदि आप मेरा हित करना चाहते हैं तो क्लेशों के दास इस मन्दभाग्य पर दया करें।

मित्रावसु ने इस पर हँसकर अस्वीकृति प्रकट की। जीमूतवाहन उसे भले प्रकार समझाने के लिए भीतर ले गये। इस समय दिन व्यतीत हो चुका था।

(४)

महाराज विश्वावसु का कञ्चुकी वसुभद्र एक दिन लाल वस्त्र लिये कहीं जा रहा था। मार्ग में उसे प्रतीहार सुनन्द मिल गया। सुनन्द ने पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो। वसुभद्र ने कहा कि मित्रावसु की माता ने आज्ञा दी है कि मैं दस रात तक मलयवती और जीमूतवाहन के पास लाल वस्त्र ले जाया करूँ। सुना है, इस समय राजकुमारी मलयवती सुसराल में हैं। जामाता जीमूतवाहन, मित्रावसु के साथ, समुद्र तट पर भ्रमण करने गये हैं। अब वस्त्र राजकुमारी के पास ले जाऊँ अथवा जामाता के पास ?

सुनन्द—राजकुमारी के पास जाना चाहिए। वहाँ इस समय तक जामाता लौट आये होंगे।

वसुभद्र—तुम कहाँ जा रहे हो ?

सुनन्द—मैं महाराज विश्वावसु की आज्ञा पाकर मित्रावसु से यह कहने जा रहा हूँ कि दीपावली पर मलयवती और जामाता को उत्सव के योग्य जो उपहार देना है उस पर, आकर, विचार करें। सुनन्द समुद्र तट पर चला गया और वसुभद्र अपने कार्य से दूसरी ओर राजपुत्री के पास गया।

उधर जीमूतवाहन और मित्रावसु समुद्र-तट पर भ्रमण कर रहे थे।

समुद्र में जब ज्वार-भाटा आनेवाला था, मित्रावसु ने जल फैलनेवाले मार्ग से हटकर पर्वत-शिखर के समीपवाले मार्ग पर

चलने को कहा। जीमूतवाहन की दृष्टि पर्वत की ओर देखते देखते उसके श्वेत शिखरों पर पड़ी। उन्होंने मित्रावसु से कहा—देखो, शरत्काल में श्वेत मेघों से व्याप्त मलय पर्वत के शिखर हिमालय के शिखर की-सी शोभा धारण कर रहे हैं।

मित्रावसु—ये मलय पर्वत के शिखर नहीं हैं, ये तो साँपों की अस्थियों के ढेर हैं।

यह सुनकर जीमूतवाहन को शोक हुआ। उन्होंने पूछा—हाय! एक साथ इतनी मृत्युएँ किस कारण हुई?

मित्रावसु—इनकी मृत्यु एक साथ नहीं हुई है। इसका रहस्य सुनिए। सुना है, गरुड प्रतिदिन एक नाग को खाया करते थे। समूचे नागलोक के नाश की शङ्का से एक बार नागराज वासुकि ने गरुड़ से कहा कि मैं प्रतिदिन एक नाग को समुद्र-तट पर तुम्हारे पास भेज दिया करूँगा। यह व्यवस्था पक्षिराज गरुड ने स्वीकार कर ली। तब से गरुड जिन नागों को खाते हैं उन्हीं की अस्थियों का यह ढेर प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और बढ़ता रहेगा। हिम के समान शोभायमान उन्हीं अस्थियों का यह ढेर है।

इस वृत्तान्त के प्रत्येक अंश को सुन-सुनकर जीमूतवाहन दुःखित होते रहे। उन्हें आश्चर्य हुआ कि सब अपवित्रताओं की खान, कृतघ्न और नष्ट होनेवाले इस शरीर के लिए मूर्ख लोग क्या-क्या पाप करते हैं। फिर कहने लगे कि हाय!

नागों पर यह कैसी निस्सीम विपत्ति पड़ी है। क्या अपने शरीर के समर्पण से मैं एक भी नाग की रक्षा कर सकता हूँ ?

जीमूतवाहन इस प्रकार चिन्ता में निमग्न थे कि प्रतीहार सुनन्द ने आकर मित्रावसु के कान में कुछ कहा। तब वह अपने पिता के पास चला गया। जाते समय उसने जीमूतवाहन को, उस अत्यन्त भयपूर्ण स्थान पर अधिक देर ठहरने से, रोक दिया। जीमूतवाहन भी उस पर्वत के शिखर से उतरकर समुद्र-तट को देखने लगे।

वहाँ एक ओर से शब्द आया—हा पुत्र शङ्खचूड! मैं आज तुम्हारी हत्या कैसे देखूँगी ?

इस शब्द से जीमूतवाहन चौंक उठे। इसे किसी अबला का विलाप समझकर वे उधर ही चल पड़े।

जीमूतवाहन वहाँ पहुँचकर पूर्ण वृत्तान्त जानने के लिए एक वृक्ष की ओट में छिप गये। सामने एक वृद्धा, उसका पुत्र और एक राजपुरुष खड़ा था। राजपुरुष ने कहा—कुमार शङ्खचूड! नागों के राजा वासुकि आज्ञा देते हैं कि इन दोनों लाल वस्त्रों को पहनकर इस वध्य शिला पर चढ़ जाओ जिससे तुम्हें लाल वस्त्र के चिह्न से पहचानकर गरुड़, पकड़कर खा ले।

शङ्खचूड ने सादर वस्त्र लेकर कहा—स्वामी की आज्ञा मेरे सिर पर है।

पुत्र के हाथ में दोनों वस्त्र देखकर वृद्धा छाती पीटते-पीटते मूर्च्छित हो गई।

गरुड के आने का समय समीप जानकर राजपुरुष वहाँ से चला गया। शङ्खचूड माता को आश्वासन देने लगा परन्तु वह शोक-विह्वल होकर प्रलाप करती-करती पुन मूर्च्छित हो गई।

इस दृश्य को देखकर जीमूतवाहन करुणा से दब गये। वे शङ्खचूड की रक्षा का विचार करके उसके सम्मुख जाने लगे।

वृद्धा कह रही थी कि पुत्र! नागलोक के राजा वासुकि ने तुम्हें त्याग दिया है तब और कौन तुम्हारी रक्षा कर सकता है?

इसी समय जीमूतवाहन ने सामने जाकर कहा—माता! भय मत करो। मैं विद्याधर हूँ। तुम्हारे पुत्र की रक्षा के लिए यहाँ आया हूँ।

वृद्धा ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया।

जीमूतवाहन ने अब वध्यचिह्नवाले दोनों लाल वस्त्र माँगे जिसमे कि वे अपने को गरुड के आगे भेंट कर सकें। परन्तु वृद्धा ने कान बन्द करके कहा—अमङ्गल दूर हो। तुम भी शङ्खचूड के समान, अथवा उससे भी बढकर, मेरे पुत्र हो गये हो। तुम उसे बन्धुओं से त्यागे जाने पर भी, अपना शरीर दान करके, बचाना चाहते हो।

शङ्खचूड को जीमूतवाहन के शरीर-दान से अत्यन्त विस्मय हुआ। उसने ऐसे उपकारी व्यक्ति से, अपने जैसे क्षुद्र जीव

के लिए, प्राणनाश न करने की प्रार्थना की। परन्तु जीमूतवाहन ने कहा—बहुत दिनों के पश्चात् यह अवसर हाथ लगा है। परोपकार करने के लिए उत्सुक व्यक्ति के कार्य में तुम विघ्न मत डालो। सोच-विचार करना छोड़ो। वध्यचिह्न मुझे दे दो।

शङ्खचूड़ ने स्वीकार न किया। गरुड के आने का समय समीप जानकर वह, माता के साथ, भगवान् दक्षिण-गोकर्ण की अन्तिम प्रदक्षिणा करने चला गया।

निराश जीमूतवाहन वहाँ खड़े रहे। इतने में वसुभद्र ने दो लाल वस्त्र लाकर दिये। जीमूतवाहन की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उनकी अभिलाषा पूर्ण हो गई। उन्होंने समझा कि मलयवती के साथ विवाह होना सफल हो गया। फिर रानी को प्रणाम करने के लिए कहकर वसुभद्र का विदा कर दिया और स्वयं उन वस्त्रों को धारण कर वध्यशिला पर चढ़ गये। वहाँ बैठकर कहने लगे कि अहा! इस शिला का कैसा स्पर्श है! परोपकार के लिए स्पर्श की गई यह वध्यशिला मुझे ऐसा सुख दे रही है जैसा मलयचन्दन के रस आदि से भी नहीं मिलता। अब गरुड को समीप आया जानकर जीमूतवाहन ने लाल वस्त्र से शरीर ढँक लिया और प्रार्थना की कि नागों की रक्षा करने की इच्छा से मुझे शरीर का दान करने से जो पुण्य मिला है उसके प्रभाव से प्रत्येक जन्म में मेरा शरीर इसी प्रकार परोपकार के अर्पण हुआ करे।

अब गरुड ने आकर जीमूतवाहन को पकड लिया। आकाश में पुष्प-वृष्टि हुई और नाना प्रकार के बाजे बजने लगे। पुष्प वृष्टि और वाद्यों के शब्द में गरुड को विस्मय हुआ। वह तनिक सोचकर हँसा और कहने लगा कि मेरे वेग से चलने से उत्पन्न वायु ने कल्पवृक्ष को हिला दिया है जिससे पुष्प-वृष्टि हुई है। और ये प्रलयकाल के मेघ, ससार के सहार की शका से, गरज रहे हैं।

जीमूतवाहन ने समझा कि मैं भाग्य से कृतार्थ हो गया। गरुड ने उन्हे देखकर सोचा कि नागों की रक्षा करनेवाला यह श्रेष्ठ नाग है। जान पडता है कि मेरी, नागों के खाने की, अभिलाषा को यह आज दूर कर देगा। यह विचार कर, उन्हे पकडकर, मलय पर्वत के शिखर पर जी भरकर भोजन करने के लिए गरुड चला गया।

(५)

समुद्र तट से जीमूतवाहन के लौटने मे अधिक विलम्ब होने से शङ्कित होकर महाराज विश्वावसु ने सुनन्द से कहा—मैंने सुना है कि जामाता उस स्थान पर गये हैं जहाँ गरुड के कारण सदैव भय रहता है। तुम शीघ्र पता लगा लाओ कि वे घर लौट गये या नहीं।

सुनन्द ने महाराज जीमूतकेतु के पास जाकर कहा—महाराज विश्वावसु ने मुझे आपके पास, जीमूतवाहन का

समाचार पूछने के लिए, भेजा है। मैं जाकर स्वामी से क्या निवेदन करूँ ?

जीमूतकेतु—कुमार क्या वहाँ नहीं है ? तो हमारी भोजन-सामग्री के लिए कहीं दूर चला गया होगा।

मलयवती के हृदय में कुछ और ही शङ्का होने लगी। जीमूतकेतु की बाईं आँख फड़कने से उन्हें भी शङ्का हुई। उनका हृदय व्याकुल होने लगा। इतने में स्निग्ध मांस और बालों के साथ एक चूडामणि उनके चरणों पर ही आकाश से गिरी। उसे देखकर जीमूतवाहन की माता दुःखित होकर कहने लगीं—यह तो मेरे पुत्र की ही चूडामणि है।

सुनन्द—आप ऐसा समझकर व्याकुल न हों। यहाँ तो गरुड के खाये हुए नागों के सिरों की मणियाँ इस प्रकार गिरा ही करती हैं।

वृद्धा ने सुनन्द से कहा—अब तक मेरा पुत्र ससुर के घर आ गया होगा। जाओ, पता लगाकर हमें शीघ्र सूचना दो।

सुनन्द अपने स्वामी के घर लौट गया। इतने में ही शङ्खचूड रोता हुआ सामने जाता दिखाई पड़ा। समुद्र तट पर स्थित गोकर्णेश्वर को शीघ्र प्रणाम करके शङ्खचूड जब वध्य-शिला पर लौटा था तब उसने देखा था कि गरुड नखों से उस विद्याधर की छाती विदीर्ण करके उसे आकाश में ले गया था। तब शङ्खचूड रोने लगा था और उसी महानुभाव का अनुगमन

करने की इच्छा से उसकी शोणितधारा को देखता हुआ जाते-जाते जीमूतकेतु के सामने पहुँच गया था।

उसे शोकविह्वल की नाईं रोते देखकर जीमूतकेतु की स्त्री ने कहा—पता लगाइए, यह कौन है।

जीमूतकेतु ने जब शङ्खचूड के निकट जाकर उसके दुःख का कारण पूछा तब उसने कहा—मैं शङ्खचूड नाम का नाग हूँ। मुझे वासुकि ने गरुड के भोजन के लिए भेजा है, परन्तु किसी दयालु विद्याधर ने अपने प्राण देकर मेरे प्राणों की रक्षा की है।

जीमूतकेतु समझ गये कि यह दयालु जीमूतवाहन ही होगा। वे शोक से कहने लगे कि हाय मैं नष्ट हो गया। उनकी स्त्री भी 'हाय पुत्र! हाय पुत्र!' कहकर विलाप करने लगीं। मलयवती ने कहा कि हाय! मेरी शङ्का सच निकली। शोक से विह्वल तीनों मूर्च्छित हो गये।

इन्हें इतने शोक-ग्रस्त देखकर शङ्खचूड समझ गया कि ये उसी परोपकारी के माता-पिता आदि हैं। उसे अब और भी दुःख हुआ कि ऐसे परोपकारी के माता पिता का प्रत्युपकार करने के बदले मैंने इन्हें मूर्च्छित कर दिया।

शङ्खचूड अब इन्हे सचेत करने के लिए यत्न करने लगा। चेत आते ही ये लोग फिर विलाप करने लगे। जीमूतकेतु चूडामणि लेकर विलाप करने लगे। उन्होंने कहा कि हम उसके बिना कैसे जीवन धारण कर सकते हैं? मलयवती ने

वह चूडामणि लेकर अग्नि-प्रवेश की इच्छा की। माता को भी जीवन भार सा था। अग्नि-प्रवेश का निश्चय करके जीमूतकेतु यज्ञशाला मे अग्नि लेने गये।

शङ्खचूड—तात। बिना निश्चय किये ऐसा साहस न करना चाहिए। भाग्य की विचित्र माया है। बहुत सम्भव है कि उन्हें नाग न जानकर, गरुड छोड दे। सो चलिए, इस रुधिर की धारा को देखते हुए गरुड के पीछे चले।

जीमूतकेतु—वत्स। तुम्हारी वाणी सत्य हो। तब भी अग्नि को साथ लेकर ही हमारा चलना ठीक है। सो आप चलें, हम भी अग्नि लेकर शीघ्र पहुँचते हैं।

जीमूतकेतु, अपनी स्त्री और मलयवती के साथ, अग्नि लाने के लिए चले गये। शङ्खचूड रुधिर-धारा का अनुसरण करता हुआ जाने लगा।

उधर जीमूतवाहन को खाते समय गरुड को प्रतीत हुआ कि यह भक्ष्य न केवल पीडा रहित दिखाई पडता है प्रत्युत प्रसन्न भी है। इसका रक्त पिये जाने पर भी इसका धैर्य नहीं टूटता। मांस के काटने से उत्पन्न पीडा को सहते हुए भी यह प्रसन्न है। ऐसे उपकारी का वृत्तान्त जानने की गरुड को उत्सुकता हुई। उसने जीमूतवाहन को खाना छोडकर पूछा—तुम कौन हो?

जीमूतवाहन ने गरुड को खाने मे विरत देखकर कहा—नाडियों मे अभी तक रक्त निकल रहा है, मेरी देह में अभी

मांस विद्यमान हैं, आपकी तृप्ति भी अभी तक नहीं हुई। गरुड! आपने भोजन करना क्यों छोड दिया?

इस प्रश्न से गरुड और भी विस्मित होकर पूछने लगा—अहो महासत्त्व! मैंने चोंच से तुम्हारा रक्त निकाला है परन्तु तुमने तो अपने धैर्य से मेरा हृदय ही निकाल लिया है। मैं जानना चाहता हूँ कि तुम कौन हो।

जीमूतवाहन—क्षुधा को शान्त किये बिना आप मेरा वृत्तान्त न सुने। पहले मेरे मांस और रक्त से तृप्ति कर लीजिए।

इतने मे शङ्खचूड शीघ्र पास जाकर बोला—गरुड! ऐसा साहस मत करो। यह नाग नहीं है, इसे छोड दो। मुझे खाओ। तुम्हारे भोजन के लिए वासुकि ने मुझे भेजा है।

शङ्खचूड को देखकर जीमूतवाहन ने दु ख से मन में कहा कि हाय! इसने आकर मेरा मनोरथ विफल कर दिया।

गरुड ने दोनो के पास वध्यचिह्न देखकर कहा—मैं नहीं जानता कि तुम दोनो में से कौन नाग है।

शङ्खचूड—यह देखो, मेरे शरीर पर केंचुली है, दो जिह्वाएँ हैं, फन है। अतएव मैं ही नाग हूँ। ये तो विद्याधरवंश के भूषण जीमूतवाहन हैं।

'ये विद्याधर जीमूतवाहन है' सुनकर गरुड को पश्चात्ताप हुआ। उसने सब प्रकार से अपने को पापमय कीचड में फँसा समझा। महापाप के प्रायश्चित्त के लिए अग्नि में

भस्म हो जाने के अतिरिक्त उसे और कोई उपाय न सूझा। परन्तु जलने के लिए अग्नि की आवश्यकता थी। वह इधर-उधर अग्नि के लिए दृष्टि दौडाने लगा। इतने मे उसे कोई पुरुष अग्नि लेकर आता दिखाई पडा। वह उसकी प्रतीक्षा मे ठहर गया।

जीमूतकेतु आदि जब दिखाई देने लगे तब शङ्खचूड ने जीमूतवाहन से कहा—कुमार। आपके माता-पिता आ गये।

जीमूतवाहन ने शङ्खचूड से कहा—इस चादर से ढककर मुझे पकडे रहो, नहीं तो मेरी यह दशा देखकर कदाचित् माता-पिता प्राण त्याग देंगे।

इतने मे अपनी स्त्री और पुत्रवधू के साथ जीमूतकेतु रोते हुए 'हा पुत्र। हा वत्स।' कहते वहाँ आ गये।

जीमूतकेतु को कुमार का पिता जानकर गरुड लज्जित हुआ। उसने अपने को वडवानल मे दग्ध कर देना उचित समझा। इस अभिप्राय मे वह उडने लगा तो कुमार ने कहा—हे पक्षिराज। इस विचार को छोड दो। यह पाप का प्रतिकार नहीं है।

गरुड घुटने टेककर, हाथ जोडकर, कुमार के पास बैठ गया। उसने पूछा—महात्मा। आप कौन हैं ?

कुमार—क्षण भर ठहरो। मेरे माता-पिता आये हैं। इन्हे प्रणाम कर लूँ।

कुमार के पास गरुड को इस प्रकार बैठा देखकर जीमूत-केतु ने पुत्र की कुशल समझी, माता ने अपने को भाग्यवती समझा। परन्तु मलयवती को इस पर विश्वास न हुआ। जीमूतकेतु ने, पास जाकर, पुत्र से आलिङ्गन करने को कहा। कुमार उठने लगे तो मूर्च्छित हो गये। उन्हें मूर्च्छित देखकर शोकग्रस्त सब लोग अचेत हो गये। गरुड ने अपने पङ्खों से पङ्खा कर कुमार को सचेत किया। शङ्खचूड ने कुमार के माता-पिता को सावधान किया। जीमूतकेतु के कहने पर माता अब मलयवती को ढाढस बँधाने लगी परन्तु उसे शोक ने व्याप्त कर रक्खा था। माता स्वयं दुःखित होकर, पुत्र के शरीर को देखकर, गरुड से कहने लगी—क्रूर! नवयौवन की शोभा से युक्त मेरे पुत्र के शरीर की तूने कैसी दशा कर डाली?

कुमार जीमूतवाहन ने तब भी कहा—माता! मैंने ही ऐसा किया है। इसने कुछ नहीं किया। यह शरीर पहले भी ऐसा ही था। सदैव बीभत्स दिखाई देनेवाले शरीर में—त्वचा के भीतर छिपे हुए मेदा, मज्जा, रक्त-मांस और हड्डियों के ढेर में—भला शोभा कैसी?

ऐसे अत्युत्तम वचन सुनकर गरुड अपने को नरक की अग्नि में दग्ध-सा समझने लगा। वह कुमार से प्रार्थना करने लगा कि पाप-नाश के लिए उपदेश दीजिए।

कुमार—'प्रतिदिन प्राणियों की हिंसा करना छोड़ो। पहले किये हुए पापों पर पश्चात्ताप करो।" गरुड ने यह

स्वीकार कर लिया। शङ्खचूड से घर लौट जाने को कहा, पर वह नीचे मुख किये खड़ा रहा।

कुमार को अब मर्म-भेदी पीडा होने लगी। उन्हें मृत्यु समीप दिखाई देने लगी। अङ्ग शिथिल होने लगे। कुमार ने माता-पिता को अन्तिम प्रणाम किया। माता पिता विलाप करने लगे। शङ्खचूड भी कुमार के साथ मरने को उद्यत हो गया। कुमार को मरते देखकर गरुड को भी अत्यन्त शोक हुआ। वह सोचने लगा कि क्या करूँ।

इसी समय विलाप करती हुई माता ने इन्द्र से अमृत-वर्षा करने के लिए प्रार्थना की। गरुड भी अमृत-वर्षा के लिए उड गया।

जीमूतकेतु ने शङ्खचूड से कहा—अब विलम्ब किसलिए? लकडियाँ लाकर मेरे पुत्र के लिए चिता बनाओ जिसमें हम सब एक साथ ही प्राण-त्याग करें।

शङ्खचूड ने चिता बना दी। सब उस पर चढने लगे।

मलयवती ने हाथ जोडकर, ऊपर देखकर, कहा—भगवती गौरी! आपने आज्ञा दी थी कि "तेरा पति विद्याधरों का चक्रवर्ती होगा।" सो मुझ अभागिनी के लिए तुम्हारे वचन मिथ्या हो गये।

अब शीघ्र ही गौरी प्रकट हो गई। उन्होंने महाराज को ऐसा दुःसाहस करने से रोका। फिर कमण्डलु से जल

विश्वामित्र—तुमने सुना होगा कि निमिवंश के राजा विदेह देश में राज्य करते हैं।

राम लक्ष्मण—जिनके यहाँ महादेव जी का धनुष पूजा जाता है ?

विश्वामित्र—हाँ।

राम-लक्ष्मण—वहाँ एक और आश्चर्य सुना जाता है, बिना ही माता के उत्पन्न हुई एक कन्या उनके यहाँ है।

विश्वामित्र ने मुस्कराकर कहा—हाँ वह भी है। उसी यजमान ने अपने छोटे भाई कुशध्वज को, सीता और उर्मिला के साथ, सप्रेम यहाँ भेजा है। वे स्वयं इस समय यज्ञ कर रहे हैं।

विश्वामित्र के साथ इन दोनों कुमारों को देखकर राजा कुशध्वज बड़े विस्मित हुए। वे सोचने लगे कि स्वाभाविक सुलक्षणों से युक्त शरीर धारण किये ये क्षत्रियकुमार कौन है।

सीता और उर्मिला के हृदय भी इधर आकर्षित हो गये। वे कहने लगीं कि ये कुमार तो बड़े सुन्दर हैं।

इतने में विश्वामित्र और कुशध्वज आदि सब पास पहुँच गये। विश्वामित्र ने इनका यथोचित स्वागत किया और राम-लक्ष्मण का परिचय कराया। दोनों कुमारों ने आगे बढ़कर प्रणाम किया। राजा कुशध्वज ने उन्हें गले लगा लिया। उन्हें दशरथ का पुत्र जानकर राजा को और भी आनन्द

हुआ। बातचीत करते हुए वे आश्रम के निकट पहुँच गये। वहाँ वृक्षों की छाया में बैठकर वे विश्राम करने लगे।

वहाँ एक ओर से 'जय! जगत्पति राम की जय' का शब्द सुन पड़ा। सब चकित हो गये। विश्वामित्र ने कहा—उतथ्य के पुत्र गौतम की धर्मपत्नी अहल्या हैं। उसका पुत्र शतानन्द है। इन्द्र अहल्या पर आसक्त हो गया था। गौतम को स्त्री पर सन्देह हो गया। उन्होंने क्रुद्ध होकर स्त्री को शाप दे दिया कि पत्थर हो जा। उसी अहल्या का आज, उक्त शाप से राम के तेज-द्वारा, उद्धार हुआ है।

राजा कुशध्वज ने कहा कि यह सूर्यवंशी बालक ऐसा असाधारण प्रभावशाली कैसे हुआ।

सीता ने मन में कहा कि शरीर की रचना के अनुकूल ही इनका प्रभाव होगा।

राजा कुशध्वज ने लम्बी साँस लेकर कहा—यदि ज्येष्ठ भ्राता शिव के धनुर्भङ्ग की प्रतिज्ञा को बीच में न डाले तो तेजस्वी राम को मैंने सीता दे दी।

इतने में रावण का पुरोहित, सर्वमाय नाम का वृद्ध राक्षस, वहाँ आया। उसने निवेदन किया—नाना माल्यवान् के रोकने पर भी रावण ने, सीता को अपने साथ विवाहने का प्रस्ताव करने के लिए मुझे मिथिला भेजा था। वहाँ मैं यजमान राजा जनक से मिला। उनके कहने से अब आपके पास आया हूँ।



अहल्योद्धार

हुआ। बातचीत करते हुए वे आश्रम के निकट पहुँच गये। वहाँ वृक्षों की छाया में बैठकर वे विश्राम करने लगे।

वहाँ एक ओर से 'जय! जगत्पति राम की जय' का शब्द सुन पड़ा। सब चकित हो गये। विश्वामित्र ने कहा—उतथ्य के पुत्र गौतम की धर्मपत्नी अहल्या है। उसका पुत्र शतानन्द है। इन्द्र अहल्या पर आसक्त हो गया था। गौतम को स्त्री पर सन्देह हो गया। उन्होंने क्रुद्ध होकर स्त्री को शाप दे दिया कि पत्थर हो जा। उसी अहल्या का आज, उक्त शाप से राम के तेज-द्वारा, उद्धार हुआ है।

राजा कुशध्वज ने कहा कि यह सूर्यवंशी बालक ऐसा असाधारण प्रभावशाली कैसे हुआ।

सीता ने मन में कहा कि शरीर की रचना के अनुकूल ही इनका प्रभाव होगा।

राजा कुशध्वज ने लम्बी साँस लेकर कहा—यदि ज्येष्ठ भ्राता शिव के धनुर्भङ्ग की प्रतिज्ञा को बीच में न डालें तो तेजस्वी राम को मैंने सीता दे दी।

इतने में रावण का पुरोहित, सर्वमाय नाम का वृद्ध राक्षस, वहाँ आया। उसने निवेदन किया—नाना माल्यवान् के रोकने पर भी रावण ने, सीता को अपने साथ विवाहने का प्रस्ताव करने के लिए, मुझे मिथिला भेजा था। वहाँ मैं यजमान राजा जनक से मिला। उनके कहने से अब आपके पास आया हूँ।

राम लक्ष्मण और सीता तथा उर्मिला एक दूसरे को देखकर आकर्षित हो रहे थे। राक्षस का यह सन्देश सुनकर उसके प्रति इन्हें घृणा हुई। राजा और विश्वामित्र भी इस विषय में सोचने लगे।

लक्ष्मण ने भाई से कहा—रावण इससे विवाह करना चाहता है।

राम—वत्स! अन्य पुरुष भी साधारणतया निर्भय होकर कन्या के लिए प्रार्थना करते हैं। फिर जगत् के विजेता रावण का क्या कहना?

लक्ष्मण—यह आपका सौजन्य है, तभी तो स्वभाव से वैरी राक्षस का आप इतना मान करते हैं। इसी राक्षस ने तीनों वेदों का नाश करके हमारे क्षात्र तेज को क्षीण कर दिया है। सुना है कि इसी ने, दिग्विजय के समय, इक्ष्वाकु-वंशी राजा अनरण्य को मारा था।

राम—शत्रु होने के कारण वह वध्य है सही, परन्तु उस महावीर, महातपस्वी, असाधारण पुरुष को साधारण पुरुष समझना तुम्हें उचित नहीं।

इस प्रकार सब लोग अपने सोच-विचार में थे कि राक्षस ने कहा—आप सोचते क्या हैं? आपकी कन्या जगद्विजयी रावण के पास सुख से रहेगी।

इतने में एक ओर से कोलाहल हुआ। विदित हुआ कि यज्ञ में जो ऋषिगण पधारे हैं वे भयभीत होकर चिल्ला रहे हैं।

सब लोग उठकर वहाँ जाने लगे तो लक्ष्मण ने देखकर पूछा—
पीपल शरीरवाली, दर्प में उद्धत होकर, यह कौन दौड़ रही है ?

विश्वामित्र—यह सुकेतु राक्षस की कन्या, सुन्द नाम के
असुर की स्त्री और मारीच की माता ताडका है।

विश्वामित्र ने राम को इसे मारने का आदेश दिया।
राम ने उत्तर दिया—गुरु जी ! यह तो स्त्री है।

यह उत्तर सुनकर कुशध्वज ने कहा—साधु ! राम सच
मुच इक्ष्वाकुवंशी हैं।

अब राक्षस ने जान लिया कि यह दशरथ का पुत्र है जो
ताड सी ऊँची ताडका का उछलना देखकर अविचलित खड़ा
; और जो उसके मारने के लिए नियुक्त किया गया है पर
उसके स्त्री होने के कारण दुविधा में है।

ताडका का शीघ्र वध करने के लिए विश्वामित्र ने राम से
कहा। वह कई ब्राह्मणों को मार चुकी थी। राम ने मन के
विरुद्ध भी गुरु की आज्ञा का पालन किया। उन्होंने एक ही
बाण से छाती विदीर्ण कर ताडका को मार गिराया। उनकी
वीरता देख सभी विस्मित हुए। उसकी मनुष्य द्वारा मृत्यु पर
वृद्ध राक्षस दुःखित हुआ।

सर्वमाय नामक राक्षस ने अब विश्वामित्र से अपने प्रश्न
का उत्तर माँगा।

विश्वामित्र—कुशध्वज तो जनक के छोटे भाई हैं। जनक
ही कुलज्येष्ठ हैं और वे ही इस कन्या के पिता हैं।

राक्षस—जनक ने कहा है कि विवाह की बात कुशध्वज और आप जानें।

कल्याणकारी दिव्यास्त्र देने का यही अवसर है, मुहूर्त भी अच्छा है, यह सोचकर विश्वामित्र कहने लगे—मित्र कुशध्वज! कृशाश्व गुरु की सेवा में प्राप्त रहस्यमय जृम्भकास्त्रों का प्रयोग और उपसंहार तथा दिव्यास्त्रों की मन्त्रविद्या की शक्ति राम को प्रत्यक्ष कराता हूँ।

राजा ने इसका अनुमोदन किया। आकाश से भी पुष्प-वृष्टि हुई और बाजे बजे। यह देखकर राक्षस कुढने लगा।

इसी समय सहसा दिव्यास्त्रों से दिशाएँ तप्त काञ्चन के समान हो गईं, रक्त वर्ण के कारण दिन सन्ध्या से मिला हुआ-सा दीखने लगा, जलते हुए धूमकेतुओं और दिव्यास्त्रों से आकाश व्याप्त हो गया और निरन्तर बिजली के चमकने से विचित्र-वर्ण का-सा हो गया।

विश्वामित्र की आज्ञा से राम ने इन दिव्यास्त्रों को नमस्कार कर कहा—भगवन्! मेरा निवेदन है कि यह दिव्यास्त्रों का समूह लक्ष्मण-सहित मेरे अधीन हो।

विश्वामित्र ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। दिव्यास्त्रों ने भी स्वीकृति-सूचक नाद किया।

अब राम ने दिव्यास्त्रों को स्मरण कर प्रकट होने की प्रार्थना की और फिर विसर्जन कर दिया।

इस अद्भुत घटना को देखकर राजा कुशध्वज मौन न रह सके। उन्होंने विश्वामित्र से कहा—आपसे अनुगृहीत और राम भद्र से शोभित राजा दशरथ से मैं ईर्ष्या करता हूँ। यदि हमें जामाता-रूप में राम न मिले तो आपकी कृपा हमारे किस काम आवेगी ?

विश्वामित्र—क्या अब भी आपको सन्देह है ? अच्छा, ध्यान कीजिए, जिसमें शिव का धनुष प्रकट हो जाय।

राक्षस सर्वमाय ने इनका यह विचार देखकर कहा—महाराज कुशध्वज। आप कब से विचार कर रहे हैं ?

कुशध्वज—हमने तो कह दिया कि भाई जानें।

अब कुशध्वज के स्मरण करने पर सहस्रों वज्रों के समान शिव का धनुष प्रकट हो गया। राम ने भुजाओं से अनायास ही खींचकर उसे तोड डाला। उसके टूटने की ध्वनि देर तक आकाश में गूँजती रही।

राम के प्रभाव से राक्षस भयभीत हो गया। कुशध्वज ने राम को चूमकर हृदय से लगा लिया। फिर विश्वामित्र से कहा—भगवन्। राम ऐसा पति मिल जाने से सीता के लिए आपका आशीर्वाद पूर्ण हुआ। इसी अवसर पर मैं लक्ष्मण को उर्मिला देता हूँ।

विश्वामित्र—यह बहुत ठीक हुआ। परन्तु अभी आप और भी कुछ करना है।

कुशध्वज—आज्ञा कीजिए।



इस अद्भुत घटना को देखकर राजा कुशध्वज मौन न रह सके। उन्होंने विश्वामित्र से कहा—आपसे अनुगृहीत और राम भद्र से शोभित राजा दशरथ से मैं ईर्ष्या करता हूँ। यदि हमें जामाता-रूप में राम न मिले तो आपकी कृपा हमारे किस काम आवेगी?

विश्वामित्र—क्या अब भी आपको सन्देह है? अच्छा, ध्यान कीजिए, जिसमें शिव का धनुष प्रकट हो जाय।

राक्षस सर्वमाय ने इनका यह विचार देखकर कहा—महाराज कुशध्वज। आप कब से विचार कर रहे हैं?

कुशध्वज—हमने तो कह दिया कि भाई जानें।

अब कुशध्वज के स्मरण करने पर सहस्रों वज्रों के समान शिव का धनुष प्रकट हो गया। राम ने भुजाओं से अनायास ही खींचकर उसे तोड डाला। उसके टूटने की ध्वनि देर तक आकाश में गूँजती रही।

राम के प्रभाव से राक्षस भयभीत हो गया। कुशध्वज ने राम को चूमकर हृदय से लगा लिया। फिर विश्वामित्र से कहा—भगवन्। राम ऐसा पति मिल जाने से सीता के लिए आपका आशीर्वाद पूर्ण हुआ। इसी अवसर पर मैं लक्ष्मण को उर्मिला देता हूँ।

विश्वामित्र—यह बहुत ठीक हुआ। परन्तु अभी आपको और भी कुछ करना है।

कुशध्वज—आज्ञा कीजिए।

विश्वामित्र—आपकी दो कन्याएँ श्रुतकीर्ति और माण्डवी हैं। उन्हे हम भरत और शत्रुघ्न के लिए मांगते हैं।

राजा ने यह भी स्वीकार कर लिया। शतानन्द और सीरध्वज विश्वामित्र के प्रतिकूल कुछ कह नहीं सकते थे।

विश्वामित्र ने अब शुन शेप को बुलाकर आज्ञा दी—वत्स! अयोध्या जाकर भगवान् वसिष्ठ से कहो कि दशरथ के चार पुत्र और निमिकुल की चार कन्याएँ हैं। हमने दोनों वशों के प्रतिनिधि वनकर लडके देकर लडकियाँ ले लीं। अत सब ऋषियो को निमन्त्रण देकर दशरथ के साथ जनकपुरी पधारिए। यज्ञ की समाप्ति पर कुमारो का विवाह होगा।

यह सब देखकर राक्षस बहुत कुढा। उसने एक बार फिर रावण की प्रशसा की परन्तु सब व्यर्थ रहा।

इतने में ही राक्षस सुबाहु और मारीच आकर यज्ञ मे विघ्न करने लगे। विश्वामित्र की आज्ञा से राम-लक्ष्मण ने धनुष उठा लिया। सुबाहु और मारीच को देखकर राक्षस प्रसन्न होकर बोला—यह ठीक हुआ। अब भाग्य वदलेगा। उसे देखकर शेष कार्य के लिए माल्यवान् को सूचना दूँगा।

उधर विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण, धनुष लिये, उन राक्षसो के पीछे चले गये।

(२)

सर्वमाय से सिद्धाश्रम का वृत्तान्त सुनकर रावण का नाना माल्यवान् चिन्तित हुआ। ताडका के पुत्र मारीच को तृणवत

फेंक देने से और ताडका तथा सुबाहु के वध से माल्यवान् का हृदय कम्पित हो उठा'। क्षण भर में मारीच के अनेक अनुचरों का नाश हो जाने से उसे आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि ब्रह्मा ने देवताओं के वीर्योत्कर्ष से जो धनुष बनाया था उस शिव-धनुष के राम ने दो टुकड़े कर दिये। उसी राम ने पुन कृशाश्व के शिष्य महर्षि विश्वामित्र से, अपरिमित विजय के सहायक, दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लिये हैं। उसने देवताओं को हमारी ओर से निर्भय-सा कर दिया है। देवताओं ने ही तो दिव्यास्त्रग्रहण और धनुर्भङ्ग के समय मङ्गल-गान किया था। ठीक है, प्रताप के क्षीण होने पर सबमें विकार आने लगता है।

माल्यवान् इस प्रकार चिन्ता कर रहा था कि शूर्पणखा आ गई। उसने कहा—नानाजी, सीता का विवाह राम के साथ हो गया। महर्षि अगस्त्य ने प्रेमोपहार में राम को माहेन्द्र धनुष भेजा है।

माल्यवान् को इस कारण और भी चिन्ता हुई कि सभी श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्र ब्रह्मर्षि लोग राम को दे रहे हैं। वह कहने लगा—क्षत्रियों का अस्त्र और ब्राह्मणों का अनुग्रह अमोघ होता है। ब्रह्मतेजयुक्त क्षत्रियतेज दुष्प्राप्य है।

शूर्पणखा—निरे मनुष्य से इतनी चिन्ता किस लिए?

माल्यवान्—पुत्री! ऐसा मत कहो। जन्म-काल से ही राम का रूप जगत् में अद्भुत है। मनुष्य होने से क्या, जब

कि देवता उसका चरित्र-गान करते हैं। वर-प्रदान के समय ब्रह्मा ने हमे मनुष्य से भय बताया है।

शूर्पणखा—इसमे क्या सन्देह जब कि रावण की भी आँखें कुछ मलिन हो गई हैं और वह नेत्रों की चञ्चलता त्यागकर सिर नीचा किये हुए है। इससे मैं जानती हूँ कि उसके हृदय की तीव्र वेदना सहज में न हटेगी।

माल्यवान् इस प्रकार चिन्ताग्रस्त था कि परशुराम के पास भेजा हुआ अनुचर पत्र लेकर आ गया। पत्र में मुनि ने लिखा था—"तुमको विदित हो कि मैंने दण्डकारण्य के तपस्वियो को अभयदान दिया है। वहाँ विराध, कबन्ध आदि नियम-विरुद्ध विचरते हैं। सो उन्हे रोककर मेरी और शिव की प्रीति प्राप्त करो। ब्राह्मणो का अपराध न करने में तुम्हारा ही भला होगा और मैं तुम्हारा मित्र रहूँगा, अन्यथा क्रोध करूँगा।"

पत्र सुनकर शूर्पणखा ने कहा—ये वाक्य कोमल तो थोडे किन्तु गम्भीर अधिक हैं।

माल्यवान्—हाँ, जामदग्न्य है न। कुल, तप, विद्या और पराक्रम से शान्ति बढी हुई है। सर्वत्याग से नि स्पृह है। अपनी इच्छा न होने पर भी किसी प्रकार, शिव की प्रीति से, हमें उचित कार्य के लिए उपदेश करता है और अनुचित कार्य में कडा पडता है। (कुछ सोचकर कहने लगा) शम्भु के धनुष को तोडनेवाला राम यदि शिव के शिष्य को मिल

जाय तो वह कभी क्षमा न करे। युद्ध में राम और परशुराम दोनों का वध हो जाय अथवा दोनों मे से एक की विजय भी हो तो भी हमारा भला हो। अत परशुराम को ही उत्तेजित करना चाहिए, क्योंकि हमे यथार्थ में उसकी पराजय का विश्वास नहीं होता। चलो, मिथिला भेजने के लिए परशुराम को उत्तेजित करें।

अब माल्यवान् और शूर्पणखा ने महेन्द्र द्वीप में जाकर परशुराम को उत्तेजित किया। परशुराम जनकपुरी पहुँचे। दास दासियों ने राम को सूचना दी कि आपने गुरु शिव के धनुर्भङ्ग से क्रोधित परशुराम आपको खोज रहे हैं।

यह सूचना पाकर राम प्रसन्न हुए। कहने लगे कि त्रिपुरारि के शिष्य, वेदाभ्यास से शुद्धचरित, भृगुवंश के स्वामी, महाभाग्यशाली, परशुराम के दर्शन करने चाहिएँ। वे भी मुझे देखने को इच्छुक हैं। परन्तु नव-विवाहिता सीता ने भय के कारण, उच्च कुल के योग्य लज्जा को त्यागकर, राम को रोकना चाहा। सखियों ने भी मना किया।

राम—काम में विलम्ब करने से विरसता होती है।

सीता की सखियाँ—सुना है कि परशुराम ने बारम्बार पृथिवी को क्षत्रियों से विहीन करके अपना मनोरथ पूर्ण किया है।

इन बातों मे राम कब त्रस्त होने लगे? उन्होंने कहा—क्या एक दोष से उस महान् ज्ञाननिधि का माहात्म्य न्यून हो

सकता है जिसने पृथ्वी पर क्षत्रिय-वश के राजाओं का इक्कीस बार सर्वनाश किया, बाहुबल-द्वारा कार्त्तिकेय अर्जुन को विजय कर ख्याति और प्रशसा प्राप्त की, अश्वमेध में गुरु कश्यप को द्वीपों-सहित पृथिवी दान कर दी और जो अब ऐसे स्थान पर तपस्या करता है जो समुद्र को परशु से हटा-कर प्राप्त किया गया है ?

सीता और उनकी सखियो को राम आश्वासन दे रहे थे कि परशुराम 'दशरथ का पुत्र राम कहाँ है ?' कहते हुए अन्त पुर में आते दिखाई पडे।

राम ने उन्हे देखकर कहा—अहा! ये त्रिभुवन के अद्वितीय वीर भार्गव मुनि दुष्प्राप्य तेजराशि के समान हैं, ये प्रताप और तपस्या से प्रकाशमान शरीर धारण किये हुए हैं। प्रचण्ड वीररस की तो ये मूर्ति ही हैं।

इतने मे परशुराम पास ही पहुँच गये। उनके कन्धे पर चमकीला परशु तथा तरकस था। वे जटा, धनुप, कौपीन और मृगछाला धारण किये हुए थे। उनके रुद्राक्ष से लिपटे हाथ में बाण चमक रहा था। उनका यह वेष भय और शान्ति से मिश्रित शोभा का विस्तार कर रहा था।

राम ने सीता को वहाँ से हटने और घूँघट काढने को कहा।

मुनि को पास आते देखकर सीता डर गई। राम बोले—ये मुनि और वीर हैं, इस कारण मेरे प्रिय हैं। डरो मत।

भीरु। तुम क्षत्रियपुत्री हो। जगत् मे विस्तृत, कीर्तिवाले और गर्व से खुजाती हुई भुजाओंवाले का सामना करने के लिए मै समर्थ हूँ। मैं राघव हूँ, क्षत्रिय हूँ।

उधर परशुराम ने निकट आते ही क्रोधित होकर कहा—ओह। इस दुष्ट क्षत्रियबालक की मूढता तो देखो। धनुष को तोडते हुए यदि इसे प्राणियो के करुणासागर शान्तात्मा भगवान् शिव से भय नहीं हुआ तो इसने मदमत्त तारकासुर के वध से विश्व को आनन्दित करनेवाले उनके पुत्र स्कन्द को अथवा स्कन्द के समान प्रिय शिष्य मुझको क्यो नहा जाना? ओह। यह मेरी ही शान्ति का कटु परिणाम है कि क्षत्रियो को फिर राज्य मिला है। उन्होंने अब पुन धनुष ग्रहण कर लिये। भुजबल से उन्मत्त क्षत्रियो के उद्धत चरित मैंने पुन सुने हैं।

इतना कहकर परशुराम सेवकों से राम को पूछने लगे। राम सम्मुख खडे हो गये और बोले—भगवन्। मै राम हूँ। यहाँ आइए।

परशुराम—धन्य। राजपुत्र धन्य। तू सचमुच इक्ष्वाकुवंशी है। मारने के लिए मैं तुझे ढूँढ रहा था। तू सच्चा क्षत्रिय है जो सगर्व स्वय मेरे सामने आ गया।

राम की सुन्दरता देखकर परशुराम का हृदय कोमल होने लगा। किन्तु उन्होने यही निश्चय किया कि यह वध्य है। फिर राम से बोले—अच्छा, क्षण भर ठहर। अभी इस परशु से तेरा अन्त करता हूँ।

राम ने धैर्य से कहा—क्या यह वही परशु है जिसे भगवान् शिव ने गणों समेत कार्त्तिकेय को जीतने पर, आपको उपहार मे दिया था ?

परशुराम मन में सोचने लगे—अहो ! यहाँ तो बात ही और है। महिमा और सौजन्य निष्कारण ही है। उत्साह, क्रोध, गम्भीरता और पौरुष साथ ही साथ हैं। फिर प्रकट कहा—हाँ, राम ! यही बात है। यही गुरु जी का प्रिय परशु है।

सीता की सखियाँ—कुछ तो शान्त हुए।

राम—भगवन् ! इसी मे आपके पराक्रम की चर्चा आकाश-पाताल में व्याप्त है और आपको परशुराम की पदवी मिली है।

यह सुनकर सीता की सखियो ने आपस में कहा—राजकुमार तो गुरुजनो से मनोहर मन्त्रणा करने में चतुर हैं।

परशुराम पर भी प्रभाव पड़े बिना न रहा। उन्होने कहा—हे राम ! सद्भाव के अनुकूल नयनों की प्रियता को धारण करता हुआ तू अचिन्त्य गुणों से रमणीय है। तू सब प्रकार मेरे मन को हर रहा है। सच कहता हूँ, तेरा आलिङ्गन करने की इच्छा होती है।

यह सुनकर सीता की सखियाँ प्रसन्न होकर सीता से बोलीं—राजकुमारी ! राम के भाग्य को देखो। तुम सदा लज्जा के कारण पराङ्मुख होकर अपने को ठगती हो।

सीता आँसू भरकर, दीर्घ साँस लेकर, चुप रहीं।

राम—भगवन्। आलिङ्गन तो मेरे दमन-कार्य के विपरीत होगा।

सीता—धीरता और स्निग्धता-सहित इनकी विनय उदारता से शोभित है।

अब तो परशुराम पर तीव्र प्रभाव पड़ा। वे सोचने लगे कि सौजन्य से इस राजकुमार का अन्त करण पवित्र हो रहा है। सत्यप्रियता-युक्त विनय अज्ञानियों को दुर्ज्ञेय है, निपुण बुद्धिवालों को महागर्व की ग्रन्थि है। पता नहीं चलता, यह अलौकिक चरित्रवाला वीर बालक कौन है। यह असीम महत्ता से उत्कृष्ट है। इसका शरीर लोकों को अभयदान की पुण्यराशि के योग्य है। इसका शरीर लक्ष्मी, तेज, धर्म, मान, विजय और पराक्रम आदि सात्त्विक गुणों से उज्ज्वल हो रहा है। अथवा लोकों की रक्षा के लिए धनुर्वेद ने शरीर धारण किया है, वेद की रक्षा के लिए क्षत्रिय धर्म युक्त शरीर प्राप्त किया है। शक्तियों का समुदाय अथवा गुणों का समूह प्रकट होकर उपस्थित है। इस प्रकार अधिक समय तक सोचकर परशुराम ने कहा—राजकुमारी को भीतर ले जाओ।

इतने में धनुष लिये सीरध्वज जनक और शतानन्द वहाँ आते दिखाई पड़े। इन्हें देखकर सीता की सखियों को धीरज बँधा। सङ्ग्रामलक्ष्मी से, राम की विजय के लिए,

हाथ जोड़कर प्रार्थना करके,सखियों के साथ सीता भीतर चली गई ।

परशुराम—है तो यह सदाचारी परन्तु तब भी क्षत्रिय है। इस कारण क्रोध आता है।

राम—आप इतनी करुणा क्यों दिखाते हैं ?

परशुराम—कुछ नहीं। तुमसे भेंट होने से चित्त में सुख अधिक विस्तृत हो रहा है। तुम्हे देखने से नेत्रों को आनन्द होता है। नया कङ्कण पहने हुए तुम मेरे चित्त को प्रिय हो। पर मेरे गुरु की अवज्ञा करने से तुम वध्य हो। सो मुझे पहले से ही दुःख हो रहा है।

राम—मुझ पर आपकी बड़ी दया जान पड़ती है।

परशुराम—क्या तू बच गया ? ठहर, तुझ अमृतपूर्ण मेघ के समान स्निग्ध शरीरवाले के कण्ठ पर मेरा परशु गिरता है।

राम ने फिर कहा—सचमुच आपको मुझ पर दया आ रही है।

परशुराम—ओह ! मुझी पर भौंहें चढ़ा रहा है। अरे क्षत्रिय युवक ! तू बच्चा है। नई नन्हीं बहू है। इस कारण मुझे अपूर्व दुःख होता है। वैसे यह तो तूने सुना होगा कि मैंने अपनी माता का सिर काट डाला था। और मूढ़ ! क्षत्रियकुलों पर क्रोध के कारण मैंने उत्पन्न होनेवाले बालकों को भी टुकड़े-टुकड़े कर दिया था, सब राजवंशों का इक्कीस

बार नाश किया था। उनके रक्त से सरोवर भर गये थे। उनमें स्नान और पितृतर्पण के महासुख से मैंने क्रोधाग्नि को शान्त किया था। भला मेरे स्वभाव को कौन नहीं जानता ?

राम—नृशंसता तो पुरुष का दोष है, उसकी श्लाघा कैसी ?

परशुराम रुष्ट होकर बोले—अरे क्षत्रियबालक। तू बड़ा धृष्ट है। धनुष खींच और प्रहार कर। मैं तो पहले ही प्रहार करना चाहता हूँ। चमकीले परशु से मेरे प्रहार करने पर तुरन्त ही तेरा रुण्ड रह जायगा।

इसी समय जनक और शतानन्द पास आ पहुँचे। वे परशुराम से बातचीत करने लगे। उन्होंने राम को कङ्कण खोलने के लिए अन्त पुर में जाने को कहा। परशुराम से आज्ञा लेकर रामचन्द्र अन्त पुर में गये।

जनक और शतानन्द परशुराम को वशिष्ठ और विश्वामित्र के विश्राम-स्थान में ले गये।

(३)

वशिष्ठ और विश्वामित्र परशुराम को समझाने लगे। उन्होंने कहा—हम उस वीर के पुरोहित हैं जो यज्ञ आदि के शत्रुओं का दमन करने में इन्द्र का अति प्रिय मित्र है तथा जिससे पृथ्वी वैसे ही उज्ज्वल है जैसे इन्द्र के वज्र में आकाश। अधिक क्या कहें, यह सूर्यवंशी वृद्ध राजा पुत्र-प्रेम में

तुमसे अभय माँगता है। इन निरर्थक झगडो से तुम्हें क्या मतलब ?

परशुराम—यदि राम इतना पराक्रमी न होता तो मैं क्षमा कर देता। आप ही देखें, बालक होकर भी राम अद्भुत कर्मों में प्रसिद्ध हो गया है। फिर गुरु के धनुर्भङ्ग रूप कठिन तिरस्कार को सहकर भी भार्गव कैसे मौन बैठा रहे ? अकारण अल्पमात्र भी निन्दा पाने पर, चारो ओर निरन्तर यश एकत्र करने में लगे हुए, उत्तम पुरुषों की मलिन जनश्रुति विस्तार को प्राप्त हुई किसी प्रकार भी नहीं हटती।

वशिष्ठ—वत्स। जीवन-पर्यन्त इस अस्त्रधारण करने की प्रवृत्ति से क्या लाभ ? जामदग्न्य। तुम श्रोत्रिय हो। पवित्र पथ का अनुगमन करो। तुम वनवासी हो। मित्रता, दुख मे करुणा, सुख में प्रसन्नता और पापियों पर उपेक्षा, इन चारो मनोहर गुणो का अभ्यास करो। इस परशु का त्याग कर दो। देखो, यह ऋषियो की सभा, वृद्ध राजा युधाजित्, मन्त्रियों-सहित राजा दशरथ, वृद्ध लोमपाद और वेदज्ञ विदेह-राज सभी तुमसे अभयदान की याचना करते हैं।

परशुराम—शत्रु का नाश किये विना गुरु महादेव को मैं कैसे मुँह दिखाऊँगा ?

विश्वामित्र—यदि गुरु की इतनी चिन्ता है तो मेरा भी कुछ ध्यान करो। पहले भृगु, वशिष्ठ और अङ्गिरा ये तीन

ऋषि हुए थे। तुम भृगुवंशी हो, वशिष्ठ अङ्गिरा के वंश में उत्पन्न हैं। इस प्रकार तुम दोनों परस्पर सम्बन्धी हो।

परन्तु परशुराम की बुद्धि में कुछ न आता था। वे कहने लगे—पूज्य जनों के वचन न मानने के अपराध का मैं प्रायश्चित्त कर लूँगा, परन्तु शस्त्रग्रहण के महाव्रत को दूषित न करूँगा, स्वभाव में ही शस्त्रग्रहण मुझे मुक्ति से अधिक प्रिय है। आप मेरी इस कर्कश भुजा को देखें जो प्रत्यञ्चा की रगड़ से चिह्नित है।

वशिष्ठ ने मन ही मन कहा कि यद्यपि यह गुणों में महान् है पर है अति प्रचण्ड। दर्प ही दिखा रहा है।

विश्वामित्र ने पुन समझाते हुए कहा—वत्स! सुनो, अकेले कार्त्तवीर्य के गाय हर लेने के अपराध से कुपित होकर तुमने पहले इक्कीस बार क्षत्रियों का नाश किया था। तब तुम्हारे गुरुजनों तथा च्यवन आदि ऋषियों ने तुम्हें शान्त किया था। इतना क्रोध मत करो।

परशुराम—पितृवध से प्रयुक्त हुआ मैं क्षत्रियों के संहार से हट गया था। च्यवन आदि के वाक्यों से मैंने क्रोधाग्नि और परशु को रोक लिया था परन्तु शिव-धनुष तोड़कर राम ने मुझे अब पुन बलपूर्वक उत्तेजित किया है। चपल राम का सिर काटकर मैं पुन वन को चला जाऊँगा। दशरथ और जनक स्वस्थ रहें। पुन ऐसा अत्याचार न हो।

ये वचन सुनकर शतानन्द को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—किसकी शक्ति है कि मेरे अतिप्रिय राजर्षि यजमान विदेहराज की छाया को भी छू सके? और फिर जामाता को कौन छुएगा? यदि मेरा यजमान किसी से अपमानित हो तो हमारे आङ्गिरस कुल को धिक्कार है।

विश्वामित्र—धन्य गौतम! धन्य! तुम जैसे पुरोहित से राजा जनक कृतकृत्य हैं।

परशुराम—गौतम! अनेक क्षत्रियो के तुम्हारे जैसे पुरोहित ब्रह्मतेज से कूदते थे। किन्तु मेरे अलौकिक तेज के सामने उनका साधारण बल शान्त हो गया।

शतानन्द को अब असीम क्रोध चढ आया। उन्होंने कहा—अरे बैल! निरपराध क्षत्रियो के नाशक, महापापी, अशिष्ट, विकृत चेष्टावाले, बीभत्सकर्मा, पाखण्डी, शस्त्रोपजीवी, धर्मत्यागी! मेरे सामने भी तू गर्व करता है? तू अवश्य नीच ब्राह्मण है।

परशुराम—रे दुष्ट स्वस्तिवाचनिक, क्षुद्र राजा के पुरोहित, अरे अहल्या के पुत्र! तेरे कहने से मैं शस्त्रोपजीवी हूँ!

अब शतानन्द ने इस भृगुवश के दूषण-रूप परशुराम को शाप देना चाहा। परन्तु वशिष्ठ ने कठिनता से उन्हें शान्त कर बाहर भेजा।

परशुराम तब भी बोलते रहे। कहने लगे—क्षत्रिय के आश्रित बालक की गर्जना देखो। इससे क्या? अरे दशरथ

और जनक की दया पर जीनेवाले ब्राह्मण ! तेरे कुल में जिसे तप या शस्त्र का अभिमान हो वह मेरे भीषण तेज को अपने दर्प में नीचा दिखावे। मैं पृथिवी को राम, दशरथ और सीरध्वज से रहित करके शान्त होऊँगा।

इस समय जनक ने आकर परशुराम की भर्त्सना करते हुए कहा—भार्गव ! तुम अधिक दर्प दिखा रहे हो ! तुम शत्रु-नाश कर चुके हो। अब वृद्धावस्था में यज्ञ आदि कार्य करते हुए परमब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करो। मेरा स्वाभाविक क्षात्र तेज यद्यपि शान्त हो गया है तथापि वह पुन प्रदीप्त होकर मुझे धनुष धारण करने को विवश करता है।

परशुराम—आप वेदज्ञ, वृद्ध और धार्मिक हैं, फिर वेदान्त के मर्मज्ञ और याज्ञवल्क्य के शिष्य भी हैं। इस कारण यदि मने विनय पूर्वक आपकी सेवा की है तो क्रोध के कारण भय का विचार किये बिना, आप क्यों कठोर वचन बोलते हैं ?

जनक—अपमान करते जा रहे हो और बताते विनय हो। मुझे धनुष उठाना ही पडेगा। और कोई उपाय नहीं।

परशुराम ने क्रोध और हँसी के साथ कहा—क्या कहा ? धनुष ! धनुष ! यह तो आश्चर्य है ! शत्रुओं के सिर काटने में तीक्ष्ण हुआ मेरा भी यह परशु तैयार है।

अब तो जनक धनुष पकडने को विवश हो गये। परन्तु इसी समय वहाँ दशरथ आ पहुँचे। उन्होंने ब्राह्मण पर अस्त्र चलाने से जनक को रोका।

जनक—महाराज दशरथ। अपने तिरस्कार की मुझे चिन्ता नहीं है। ब्राह्मण के कटु भाषण पर मुझे दुःख नहीं है। परन्तु यह पापात्मा ब्रह्मचारी, राम के अमङ्गल के लिए, बढ-बढकर बातें मार रहा है। इसे कैसे क्षमा किया जाय ?

परशुराम—आ दुरात्मा, नीच क्षत्रिय! मुझे पापात्मा कहकर तिरस्कृत करता है। ठहर। परशु से तेरे खण्ड-खण्ड करता हूँ।

महाराज दशरथ ने अब जनक और परशुराम के बीच आकर कहा—भार्गव, सुनो। ये राजा हमसे भी श्रेष्ठ हैं। इनको तुमने जो कटु वाक्य कहे हैं उनसे हमें बड़ा दुःख हुआ है। हम तुम्हें क्षमा न करेंगे।

परशुराम—आप तो स्वामी की नाईं मेरी ताडना करते हैं। स्मरण रखिए, मैं स्वभाव से सदा स्वतन्त्र रहा हूँ और आप क्षत्रिय हैं।

दशरथ—इसी कारण तो हम तुम्हें क्षमा न करेंगे। उद्दण्ड पुरुषों के दमन करने का क्षत्रियों को अधिकार है। तुम उद्दण्ड हो, हम तुम्हें सुधारनेवाले क्षत्रिय हैं। शीघ्र शान्त हो जाओ, अन्यथा दण्डित होगे। कहाँ तो ब्राह्मण का शान्त स्वभाव और कहाँ क्षत्रियधर्म के ये अस्त्र।

परशुराम ने हँसकर कहा—चिरकाल के पश्चात् परशु-राम को सुधारनेवाला स्वामी मिला है। मुझे सुधारनेवाले तो

केवल शिव ही हैं। सब क्षत्रियों के संहार करनेवाले को क्षत्रिय कैसे सुधार सकता है।

इतने में राम भी वहाँ आ गये। अब तो युद्ध अनिवार्य था। परशुराम ने राम को ललकारा और कहा—राजकुमार! आओ, परशुराम को जीतो। फिर हँसकर कहा—जीत न सकोगे। रेणुका का पुत्र तुम्हारा काल है।

(४)

राम-द्वारा परशुराम को पराजित हुए देखकर देवता मंगलगान करने लगे। यह देखकर शूर्पणखा और माल्यवान् व्याकुल हो गये। माल्यवान् ने कहा—बेटी! तुमने देवताओं की एकता देखी, जो इन्द्र आदि स्वयं ही बन्दीजन बन रहे हैं। अब उसने एक और युक्ति सोची। उसकी पूर्ति के लिए उसने शूर्पणखा से कहा—"राजा दशरथ ने भरत की माता कैकेयी को पहले दो वर देने का वचन दिया है। मन्थरा नाम की उसकी दासी है। वह दशरथ का कुशल क्षेम पूछने के लिए अयोध्या से मिथिला को गई है। तुम्हें उसके शरीर में प्रवेश कर इस प्रकार कहना चाहिए।"

अब माल्यवान् ने उसके कान में कुछ कह दिया।

शूर्पणखा—राम ऐसा करना स्वीकार कर लेगा?

माल्यवान्—इक्ष्वाकुवंशीय सद्वृत्त को वह नहीं त्याग सकता। विशेषकर ऐसा विजयी कब त्यागने लगा?

शूर्पणखा—इस युक्ति का क्या लाभ होगा?

माल्यवान्—फिर अधिक दूर पर, राक्षसों के समीप, लाकर हम उसे विन्ध्याचल की अज्ञात कन्दराओं में विचरते हुए सहज ही पीडित कर देंगे। तब राजशक्ति से रहित राम को छलकर ठग लेना सहज होगा। रावण ने सीता को अपनी स्त्री बनाने का प्रण किया है। यह कार्य भी अनायास सफल हो जायगा और प्रयोजन भी सिद्ध होगा। सीता के हरने का एक और भी कारण है। शत्रुओं के स्त्री छीन लेने पर लज्जित राम या तो मर जायगा अथवा प्रतिष्ठा-हीन होने से मृतप्राय हो जायगा या सन्धि के लिए प्रार्थना करेगा। किन्तु अपमान से प्रदीप्त हुए राम ने यदि आक्रमण कर दिया तो, समुद्र के वेग के समान, उसे कोई रोक न सकेगा। कदाचित् वहाँ पहुँचने से पहले रावण का मित्र बालि उसे मार सके तो मार डाले। परन्तु पुत्री! इस विषय में अभी बहुत सोचना है।

शूर्पणखा—क्या सोचना है?

माल्यवान्—विभीषण रावण का स्वभाव से शत्रु है, परन्तु प्रजा को प्रिय है। खर-दूषण, कुलाचार के अनुसार, रावण की सेवा तो करते हैं किन्तु राजा से वैसे ही धन खींचते हैं जैसे बछडा गाय से दूध। सो यह राजकुल तो फूट से जर्जर हो रहा है। राम के आक्रमण से राक्षसों का नाश हो जायगा। पहले विभीषण का प्रतीकार करना चाहिए। उसे प्रकट रूप से दण्ड देना ठीक नहीं। प्रजा बिगड जायगी।

इसे या तो कारागार में डाल देना चाहिए अथवा देश से निकाल देना चाहिए। परन्तु गुप्त दण्ड को भी चतुर पुरुष समझ जायँगे और राम के आक्रमण करने पर इसका परिणाम बुरा होगा। कारावास में डालने से उसके मित्र खर आदि रुष्ट हो जायँगे। सो इसे निकालने से पहले खर आदि की चिन्ता करनी चाहिए।

इस प्रकार चिन्ता करते हुए माल्यवान् ने यह भी सोचा कि यदि विभीषण हमारे मन में विकार देख लेगा तो अपने परम मित्र सुग्रीव के पास, ऋष्यमूक पर्वत पर, चला जायगा। तब हमें भी उसकी उपेक्षा करनी चाहिए और इस प्रकार भाई से हमें भय की शका न माननी चाहिए। तब वह अपने अभ्युत्थान के लिए वालि से मिलकर यत्न करेगा न कि राम से। अथवा राम का आश्रय लेगा और वालि को न मानेगा।

शूर्पणखा—यदि परशुराम का विजेता राम वालि को भी मार डाले तो विभीषण और राम का सयोग अनर्थकारी हो जायगा।

यह सुनकर माल्यवान् बोला—तब तो राक्षस-कुल का सर्वनाश हो जायगा। केवल एक विभीषण बचेगा जिसे धर्मात्मा रामचन्द्र राज्य दे देंगे।

माल्यवान् की आँखों के सामने रावण आदि के नाश का चित्र-सा खिच गया। परन्तु अन्य उपाय न सूझता था। उसने शूर्पणखा को अपना काम करने के लिए भेज दिया।

उधर राम और परशुराम के युद्ध से जनक, वशिष्ठ आदि को राम से बड़ी आशाएँ थीं। वे महाराज दशरथ की प्रशंसा करते थे जिनके ऐसा पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ।

कुछ समय के पश्चात् राम और परशुराम लौटते दिखाई पड़े। राम का लोहा मानकर परशुराम शान्त हो गये थे। युद्ध की धृष्टता के लिए रामचन्द्र के क्षमा माँगने पर परशुराम ने कहा—वत्स! तुमने तो मेरा उपकार ही किया है, अपकार नहीं। जिस अहङ्कार ने ब्राह्मण-जाति की वश मर्यादा, शास्त्र, चरित्र और ज्ञान-राशि को मुझसे हर लिया था, उस अनेक दोषों की खान अहङ्कार को तुमने अकेले शान्त कर दिया। तुमने मेरा हानिकारक गर्व नष्ट करके सर्वथा उचित किया।

परशुराम ने दशरथ, जनक आदि के सामने आकर कहा—यह राम सुकुमारता के कारण शान्त, किन्तु प्रचण्ड पराक्रमी है। राम की विजयिनी शक्ति को मैंने भी स्वीकार कर लिया।

राम ने सबको प्रणाम किया और सबने उन्हे आलिङ्गन किया। परशुराम ने भी वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि को प्रणाम किया और अपनी धृष्टता के लिए क्षमा माँगी। उन्होंने राजाओ की भी प्रशसा करके पहले किये गये अपमान का प्रतीकार किया।

अब वशिष्ठ और विश्वामित्र आज्ञा लेकर, अपने आश्रम को चले गये। चलते समय परशुराम ने राम को, अपना

धनुष देकर, दण्डक-वन के तपस्वियों की रक्षा का भार सौंपा।

राम ने सोचा कि किसी प्रकार दण्डक वन जाकर, राक्षसों से पीडित, तपस्वियों की रक्षा करनी चाहिए। किन्तु वहाँ जाने की आज्ञा न मिलने की सम्भावना से वे निराश हो गये।

इसी समय लक्ष्मण, शूर्पणखा को मन्थरा के वेष में साथ लेकर, राम के पास आये। मन्थरा (शूर्पणखा) राम को देखते ही उन पर आसक्त हो गई।

राम ने उसे देखकर मँझली माता कैकेयी की कुशल पूछी। मन्थरा (शूर्पणखा) ने कहा—वे सकुशल हैं। तुम्हें आलिङ्गन करके वे आज्ञा देती हैं कि पहले महाराज ने उन्हें दो वर देने का वचन दिया था। उसी के विषय में, तुम्हारे पिता के नाम, उनका पत्र है।

लक्ष्मण ने पत्र लेकर पढा। उसमें लिखा था—एक वर से भरत राजा हों और दूसरे वर से चौदह वर्ष के लिए केवल सीता और लक्ष्मण के साथ राम दण्डक वन को शीघ्र जायँ।

पत्र पढने से लक्ष्मण को क्रोध हो आया। वे कैकेयी को दुर्वचन कहने लगे। किन्तु राम प्रसन्न थे। वे कहने लगे—वहाँ जाने के लिए तो मेरी पहले से ही इच्छा थी। लक्ष्मण साथ चलेंगे तो मुझे स्वजनों का वियोग न खलेगा।

यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा—मेरा सौभाग्य है कि आपने मुझे साथ रखना स्वीकार कर लिया है।

राम ने अब मन्थरा से कह दिया--हम वन जाने को उद्यत हैं।

मन्थरा (शूर्पणखा) और क्या चाहती थी ? वह तुरन्त लौट गई।

इतने में मामा युधाजित् के साथ भरत दशरथ के पास गये। युधाजित् ने प्रजा के इच्छानुसार, राम का राज्याभिषेक करने के लिए मन्त्रणा दी। दशरथ तो पहले ही इस कार्य के लिए उत्सुक थे। उन्होंने राज्याभिषेक के साथ परशुराम के जीतने का महोत्सव मनाने की भी इच्छा की।

इधर राम और लक्ष्मण वन जाने की इच्छा से, पिता से आशीर्वाद लेने, वहाँ पहुँचे। राम ने, माता कैकेयी की ओर से, पिता से वही दो वर माँगे। इससे दशरथ और जनक मूर्च्छित हो गये।

सीता को लाने के लिए राम ने लक्ष्मण को भेजा।

यह दृश्य देख भरत व्याकुल होकर मामा से कहने लगे--मामा! यह तुम्हारे कुल के योग्य है।

युधाजित् को इस कुचक्र का कुछ पता न था। वे भी राम को वन जाने से रोकने लगे परन्तु राम ने न माना।

इतने में लक्ष्मण सीता को लेकर आ गये। राम, सीता और लक्ष्मण, गुरुजनों की प्रदक्षिणा करके, वन के लिए चल पड़े। इन्हें जाते देखकर युधाजित् शीघ्र उठकर साथ हो लिये। भरत भी चल पड़े।

युधाजित्—राम ! देखो, वन में तुम्हारी चरण सेवा के लिए भरत जा रहे हैं।

राम—उन्हें तो पिता ने प्रजा की रक्षा करने की आज्ञा दी है।

भरत—वह कार्य लक्ष्मण या शत्रुघ्न कर लेंगे।

राम—मेरे जीते-जी तुम या और कोई भाई पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन न करने पावेगा।

निराश भरत मूर्च्छित होकर गिर पड़े। सचेत होने पर, युधाजित् के कहने से, उन्होंने राम से खड़ाऊँ ले लीं और राम के लौटने तक नन्दिग्राम में रहने का विचार किया। राम और सीता की प्रदक्षिणा करके भरत लौट पड़े।

राम के वनवास की सूचना पाकर प्रजा को अति शोक हुआ। अनेक पुरुष राम के पीछे-पीछे वन को चले। युधाजित् भी राम के साथ ही जा रहे थे। राम ने उन्हें समझा-बुझाकर कठिनता से लौटाया। प्रजा को लौटाने की अभिलाषा से रोते हुए युधाजित् लौट आये।

राम, सीता और लक्ष्मण तीनों जब शृङ्गवेरपुर रहते थे, तब वहाँ के राजा निषादपति गुह ने विराध राक्षस के अत्याचारों का वर्णन सुनाया था। अत पहले उसे मारने के लिए, मन्दाकिनी के तटवर्ती पवित्र चित्रकूट पर पहुँचकर वे मुनियों के दर्शन करने की इच्छा से चल पड़े। वहाँ राक्षसों को मारकर, दण्डकवन पहुँचकर, उन्हें गृध्रराज के पास जनस्थान जाने की इच्छा थी।

(५)

एक दिन जटायु अपने ज्येष्ठ भ्राता सम्पाति से मिलने मलयपर्वत पर गया। दोनों में सप्रेम वार्त्तालाप होने लगा। सम्पाति ने पूछा—राम का पितृशोक कम हुआ या नहीं ?

जटायु—राम स्वभाव से धैर्यवान् हैं, विद्या और तप में श्रेष्ठ हैं। अब उनका पितृशोक कम हो गया है। अगस्त्य मुनि के कहने से वे इस समय पञ्चवटी में रहते हैं। वहाँ अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए एक बार शूर्पणखा आई थी।

यह सुनकर सम्पाति को आश्चर्य हुआ। वह कहने लगा—वह बडी निर्लज्ज है। तब क्या हुआ ?

जटायु—लक्ष्मण ने उसके नाक, कान और होंठ काट डाले। इससे खर-दूषण आदि चौदह हजार राक्षसों ने राम पर आक्रमण किया। रामचन्द्र ने सबको मार डाला।

सम्पाति—तब तो प्रचण्ड वैर का आरम्भ हो गया। वत्स! अब सीता, राम और लक्ष्मण को क्षण भर भी न छोडना। सगी बहन शूर्पणखा के अपमान का बदला लेने का यत्न रावण अवश्य करेगा।

इस प्रकार राम आदि की रक्षा के लिए आज्ञा लेकर जटायु वापस लौटा। मार्ग में, जनस्थान में, प्रस्रवण पर्वत पर पञ्चवटी दीख पडी। वहाँ जटायु ने देखा कि राम को एक विचित्र मृग दूर ले गया है। लक्ष्मण उन्हीं को

ोज रहे थे। तब एक तपस्वी ने कुटी में प्रवेश किया। टायु तुरन्त समझ गया कि यह नीच रावण ही है।

इतने मे रावण सहस्र गदहोंवाले रथ पर सीता को बैठा-र कहीं ले जाने लगा। यह देखकर जटायु से चुप न हा गया। वह रावण को पुकारकर बोला—धिक्कार है! द-रक्षक कुल मे जन्म लेने पर भी ऐसा कार्य कर रहे हो। ुमने त्रिलोकी के विजय का यश मिट्टी में मिला दिया।

जटायु ने यथाशक्ति सीता की रक्षा करनी चाही किन्तु सका सब प्रयत्न निष्फल रहा। रावण ने तलवार से पङ्ख ाटकर उसे असमर्थ कर दिया। अब वह सीता को लेकर ाग गया।

जब राम और लक्ष्मण कुटी में लौटे तब सीता को न देख-र अत्यन्त दुखित हुए। घायल गृध्रराज अभी सिसक हा था। उसने इन्हें बताया कि सीता को रावण हर ले गया । इतना कहते-कहते उसका प्राणान्त हो गया। राम क्ष्मण ने यथाविधि उसका दाह-कर्म किया।

इस अपमान के प्रतीकार का निश्चय कर दोनों भाई आगे ढे। मार्ग में एक स्थान पर भयानक वन दिखाई पड़ा। क्ष्मण ने सोचा कि यहाँ, जनस्थान के पश्चिम में, दण्डक वन का वह भाग है जहाँ कवन्ध नामक राक्षस रहता है। राम े उस कन्दरा के मण्डक को देखना चाहा।

इतने में एक शब्द हुआ। किसी अबला को दुरात्मा कबन्ध खींचे लिये जा रहा था। वह सहायता के लिए पुकार रही थी। राम ने वहाँ लक्ष्मण को भेजा। कुछ समय के पश्चात् लक्ष्मण अपने साथ एक शबरी को लेकर राम के सामने उपस्थित हुए।

शबरी ने राम से निवेदन किया कि जब आपने खर-दूषण को मारा था तभी से विभीषण, किसी कारण बन्धुओं को त्यागकर, ऋष्यमूक पर्वत पर मित्र सुग्रीव के यहाँ है। उसने यह पत्र दिया है। विभीषण ने पत्र में लिखा था कि हम विशिष्ट भाग्यवालों की दो प्रकार की गति है "या तो धर्म का आचरण करें अथवा धर्म के रक्षक आपका आश्रय ग्रहण करें।' राम ने विभीषण को अपना परम मित्र तथा लङ्केश्वर बनाने की प्रतिज्ञा की। शबरी प्रसन्न हो गई।

लक्ष्मण ने शबरी से पूछा—सीता के विषय मे विभीषण कुछ जानते है ?

शबरी—दुरात्मा राक्षस जब सीता को लिये जा रहा था तब उनका, अनसूया नाम मे अङ्कित, दुपट्टा गिर पड़ा था। उसे उन्होंने उठा लिया था।

लक्ष्मण—देवी! उसे किसने, किस कारण, उठाया ?

शबरी—ऋष्यमूक पर्वत पर—रामचन्द्र के गुण-पक्षपात से—सुग्रीव, विभीषण और हनुमान् आदि ने उठाया था।

अब इन महानुभावों से मिलने की राम की इच्छा हुई। सो वे शबरी के साथ चल पड़े।

मार्ग में राम का ध्यान एक जलती हुई चिता की ओर गया। उन्होंने शबरी से पूछा—दक्षिण की ओर कैसी अग्नि जल रही है ?

शबरी—लक्ष्मण ने याजनबाहु की चिता बनाई है।

राम ने इस कार्य पर लक्ष्मण को धन्यवाद दिया ही था कि एक दिव्य पुरुष इनके सामने आ खड़ा हुआ। उसने निवेदन किया कि मैं लक्ष्मी का दनु नाम का पुत्र हूँ, शाप से राक्षस हो गया था और इन्द्र के वज्र की चोट से कबन्ध हो गया था। अब आपके सङ्ग से शाप से मुक्त हुआ हूँ। माल्यवान् के कहने से मैं आपको मारने के लिए आया था। अब आपके तेज से मुझे अपना स्वाभाविक तेज पुनः प्राप्त हो गया है। आपने मेरा अत्यन्त उपकार किया है इस कारण आपको बताता हूँ कि माल्यवान् ने बालि को, रावण की मित्रता का स्मरण कराकर आपके मारने के लिए नियुक्त किया है।

उसके दर्शन से राम अनुगृहीत हुए। उसे विदा कर वे आगे बढ़े। मार्ग में लक्ष्मण ने शबरी से बालि और रावण की मित्रता का कारण पूछा।

शबरी—कैलास पर्वत को जीतने से गर्वित रावण बालि के साथ युद्ध करने गया था। सो बालि ने उसे बाहुमूल में दबा लिया। फिर सातों समुद्रों में सन्ध्या-कर्म आदि समाप्त

कर उसे छोड़ दिया। तब सिर झुकाये हुए रावण को वालि ने मित्र बना लिया।

कुछ दूर आगे चलने पर एक श्वेत टीला दिखाई पड़ा। शबरी ने बताया कि यह दुन्दुभि दैत्य की अस्थियों का समूह है। राम ने पैर के अँगूठे से इस टीले को दूर फेंक दिया, क्योंकि इससे मार्ग अवरुद्ध था। अब आगे सुन्दर नीली विस्तृत अरण्य-भूमि दिखाई पड़ी। शबरी ने बताया कि यह ऋष्यमूक और पम्पा सरोवर के पास की भूमि है। आगे मतङ्ग मुनि का आश्रम है।

इन्हें मारने के अभिप्राय से वालि भी इस समय वहाँ आ पहुँचा। वह सोने का कण्ठा और इन्द्रदेव से प्राप्त सुवर्ण-कमलों की माला पहने था। उसका लाल शरीर सन्ध्या के समय बिजली से युक्त महामेघ के समान शोभित हो रहा था। अपना अङ्ग सिकोड़कर जब वह उछलता था तब गेरू के पर्वत के समान ज्ञात होता था।

वालि आ तो गया था परन्तु यह सोच रहा था कि अनुरोध के कारण मनुष्य नरक में भी गिर जाता है। माल्यवान् ने, रावण के साथ मैत्री का स्मरण कराकर, राम के वध के लिए मुझे नियुक्त किया है। अहो! कितना हठ करता था! सवेरे से मुझे घेरे था। किष्किन्धा पहुँचाकर तब लौटा है।

वालि ने दूत-द्वारा जान लिया था कि विभीषण ने, सुग्रीव से बिना कहे ही, शबरी को रामचन्द्र के पास भेजा है और रामचन्द्र ने उसे लङ्का का राज्य देने का वचन दिया है।

बालि ने राम लक्ष्मण को वहाँ खड़ देखा। राम की मोहनी मूर्त्ति ने उसके हृदय में घर कर लिया। उसने समझा कि मेरा हृदय पवित्र हो गया। परन्तु अब यदि वह युद्ध न करता तो अपयश का भागी होता, प्रतिज्ञा का खण्डन होता। सो उसने युद्ध करने का ही निश्चय किया। बालि ने राम को युद्ध के लिए ललकारा। दोनों मैदान में चले गये। जब राम ने धनुष खींचा तब बालि ने घोर गर्जना की। परन्तु रामचन्द्र ने उसे एक ही बाण से मार गिराया।

विभीषण और सुग्रीव भी वहाँ आ पहुँचे। आसपास खड़े सब सेवक शोक करने लगे। आँखों में आँसू भरे हुए सुग्रीव भी बालि को देखने लगा। भाई को गले लगाने के बहाने बालि ने सुग्रीव के गले में " कमलमाला " डाल दी।

सुग्रीव और विभीषण ने शबरी से बालि के वध का कारण पूछा। शबरी ने माल्यवान् का सब वृत्तान्त उनके कान में कह दिया। सुग्रीव की आँखें भर आईं। बालि ने सुग्रीव को राम के हाथ सौंप दिया। उसने राम और सुग्रीव में परस्पर मैत्री की प्रतिज्ञा अपने सामने करवा दी। उसने समझ लिया कि रावण का भी अन्त-समय समीप ही है। अब बालि के प्राण निकलनेवाले थे। उसके कहने पर सब उसे झरने के किनारे ले गये।

(६)

वालि का वध सुनकर माल्यवान् अति चिन्तित हुआ। उसने सोचा कि रावण की दुर्नीति का पौधा अब कलियों में लद गया है। सीता को माँगना इस पौधे का बीज है, शूर्पणखा की यात्रा अङ्कुर है, मारीच की माया पल्लव है और सीता का हरण शाखाएँ हैं। उन शाखाओं का स्फुटन वालि का वध तथा विभीषण और सुग्रीव की राम के साथ मैत्री है। अल्प समय में ही इसका फल प्रत्यक्ष होगा। ओह। भाग्य हमारे प्रतिकूल है। जब इस क्षत्रिय युवक ने चक्रवर्ती वालि को मार डाला तब इसके लिए क्या कठिन है? सुना है, सीता की खोज के लिए चतुर दूत भेजे गये हैं।

इसी समय एक ओर से शब्द आया कि लङ्का जल रही है। चारों ओर से अग्निशिखाएँ निकल रही हैं।

इतने में त्रिजटा व्याकुल होकर छाती पीटती वहाँ आई। वह रक्षा के लिए पुकारती हुई गिर पड़ी। माल्यवान् ने विपत्ति का कारण पूछा तो त्रिजटा ने उठकर कहा—नानाजी। क्या कहूँ? एक वानर ने सारी नगरी जला डाली, बाणों की नाईं राक्षसों को खींच खींचकर फेंक दिया है। अक्षकुमार से सामना होने पर उसे भी अग्नि में फेंककर वह भाग गया।

यह वृत्तान्त सुनकर माल्यवान् को ध्यान आया कि उसके गुप्तचर ने राम के इस दूत का नाम हनुमान् बताया था। रुई के समान लङ्का के जल जाने से उसे रावण के प्रताप का

हास प्रतीत होने लगा। अब उसने त्रिजटा से पूछा—तो वह वानर सीता से मिला था ?

त्रिजटा—पहले एक नन्हा सा वानर सीता से मन्त्रणा कर रहा था। सीता ने उसे चूडामणि उतारकर दी थी।

माल्यवान् को अब चिन्ता हुई। वह कहने लगा—जब इस नन्हे-से वानर ने ऐसा कार्य कर दिखाया है तब सुग्रीव के राज्य में तो ऐसे करोड़ों वानर हैं।

त्रिजटा—वह सुकुमारी सीता हम राक्षसों से भी बढ़कर राक्षसी कैसे हो गई ?

माल्यवान्—यह और कुछ नहीं, केवल पतिव्रता का प्रताप है। अथवा तुमने उसे राक्षसी कहा है, सो दुष्कर्मों का परिणाम स्वयं पापियों को जला देता है। खैर भय मत करो। अगम्य पर्वत पर लङ्का नगरी बसी है। उसके चारों ओर प्राकार तथा अगाध समुद्र है।

परन्तु अब स्वयं माल्यवान् को चिन्ता व्यथित करने लगी। उसे राम की विजय प्रत्यक्ष दिखने लगी। उसने त्रिजटा से कहा—विशुद्धात्मा रावण, प्रबल भविष्य के अतिरिक्त, और कहीं न तो नीति के मार्ग से गिरा और न बुद्धि के मार्ग से। अब दैव ही इसके प्रतिकूल दिखता है।

रावण का ध्यान आने पर माल्यवान् पूछने लगा—त्रिजटा! रावण इस समय क्या कर रहा है ?

त्रिजटा—वे सर्वतोभद्र अटारी पर बैठकर अशोक-वाटिका में बैठी, राक्षस-वंश के लिए काल-स्वरूप, सीता को देख रहे हैं। इधर आते समय मैंने सुना था कि महारानी जी नगर की दुर्दशा सुनकर, उदास हो, उन्हें समझाने जा रही हैं।

यह सुनकर गुप्त मन्त्रणा के लिए त्रिजटा के साथ माल्यवान् भी चला गया।

उधर सर्वतोभद्र अट्टालिका पर बैठा रावण सीता को देख रहा था कि मन्दोदरी पहुँची। उसने रावण से शत्रु की चढाई के विषय में पूछा कि क्या उपाय सोचा है।

रावण ने मुस्कुराकर कहा—कैसा शत्रु और कैसी चढाई?

मन्दोदरी—सुना है, वानरों की सेना-सहित सुग्रीव को आगे किये हुए राम-लक्ष्मण

रावण—अरे! वह तपस्वी और उसका छोटा भाई! वे क्या कर सकेंगे?

मन्दोदरी—उनकी दलबन्दी से भय होता है। मैंने यह भी सुना है कि तट पर सेना ठहराकर राम ने समुद्र को पुकारा परन्तु वह बाहर नहीं निकला। तब उस तपस्वी ने समुद्र में एक बाण चलाया जिससे सारा जल चक्कर खाता हुआ, उष्णता उत्पन्न हो जाने के कारण, सूखने लगा। असंख्य जल-जीव व्याकुल हो गये और महान् कोलाहल हुआ।

रावण ने अवज्ञा के साथ पूछा—तब फिर?



समुद्र पीड़ा

मन्दोदरी—महाराज ! तब बाण से विह्वल समुद्र ने शीघ्र बाहर निकलकर प्रार्थना की और मार्ग बता दिया। साहसी समुद्र ने राम को सहायता देने का वचन दिया है।

रावण ने हँसकर कहा—हाँ, सुन रहे हैं।

मन्दोदरी—सहस्रों वानरों द्वारा पर्वत मँगवाकर सेतु बाँधा गया है।

रावण—महारानी ! तुम्हें किसी ने धोखा दिया है। समुद्र की गम्भीरता किसी को नहीं मालूम। जम्बूद्वीप पर अथवा अन्य द्वीपों पर जितने पर्वत हैं उन सबसे समुद्र का एक कोना भी न भरेगा। तुमने उसे साहसी कहा है तो क्या मेरे साहस को भूल गई हो?

इसी समय एक ओर कोलाहल हुआ। मन्दोदरी भय-भीत होकर रक्षा के लिए पुकारने लगी। इतने में सेनापति प्रहस्त ने आकर सूचना दी—नगरी चारों ओर से घेर ली गई है। फाटक बन्द कर दिये गये हैं। चारों ओर राज-भक्त राक्षस रक्षा कर रहे हैं।

रावण ने अब भी उपेक्षा के साथ पूछा—क्या?

प्रहस्त—लघुभ्राता के सङ्ग एक मनुष्य ने नगरी घेर ली है। भोज्य सामग्री नहीं मिलती। नर-नारी व्याकुल हैं।

इतने में ही एक दासी ने आकर सूचना दी—राम का दूत बाहर खड़ा है।

दूत (अङ्गद) ने रावण के सामने आकर कहा—अहङ्कारी राक्षसरूप वन के लिए दावानलरूप राम की आज्ञा से मैं तुम्हें उपदेश देने आया हूँ। सीता को मुक्त कर दो, बन्धु-बान्धवों सहित लक्ष्मण की सेवा करो, अन्यथा वे बाणों से तुम्हें मार डालेंगे।

यह सुनकर रावण को क्रोध आ गया। उसने अङ्गद का रूप बिगाड़ने के लिए आज्ञा दी। प्रहस्त ने कहा भी कि यह दूत है, इस पर क्रोध करना अनुचित है। परन्तु रावण ने कुछ न सुना।

सन्देश का उत्तर जानकर अङ्गद चले गये।

अङ्गद के चले जाने पर प्रहस्त ने रावण से अपने लिए आज्ञा माँगी। उसने आज्ञा दी—लङ्का के सब फाटक खोल दिये जायँ। शत्रु का मर्दन करनेवाले राक्षसों की लोकप्रसिद्ध सेना बाहर जाकर युद्ध करे। भीषण अस्त्रों का निपुणता से प्रयोग किया जाय। वानरों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले जायँ।

यह आज्ञा लेकर प्रहस्त गया ही था कि एक ओर से फिर कोलाहल हुआ। विदित हुआ कि वानर, भयङ्कर रूप धारण करके, राक्षसों का संहार कर रहे हैं, नगरी के फाटक खुलवाने के लिए पत्थर बरसा रहे हैं।

रावण का ध्यान इस समय आकाश की ओर खिंच गया। उसने देखा कि देवता राम का पक्ष लेकर, अपने आपको भूलकर, आकाश में भी उसके द्वेषी होकर कूद रहे हैं। रावण ने अब मन्दोदरी को भीतर भेजकर युद्ध के लिए स्वयं प्रस्थान किया।

उधर युद्ध देखने के लिए मातलि सहित इन्द्र आ गये। कुछ समय के अनन्तर गन्धर्वराज चित्ररथ भी आ पहुँचे। उनको युद्ध देखने की इच्छा तो थी ही परन्तु साथ ही उन्हे अलकाधिपति कुबेर को युद्ध वृत्तान्त जानने की आज्ञा भी थी। यद्यपि कुबेर और रावण दोनो भाई थे तथापि इन दोनों मे जन्म से ही शत्रुता थी। रावण द्वारा कुबेर की निधि और पुष्पक आदि अपहृत होने की घटना प्रसिद्ध है। इस समय इन्द्र ने वानरों की सेना को अस्त-व्यस्त होते देखकर कहा कि रावण ने अपना अस्त्र चला दिया। देखो, कितना कोलाहल मचा हुआ है।

चित्ररथ की दृष्टि रथ पर विराजमान रावण पर पड़ी। वह युद्ध की प्रतिज्ञा करके रथ पर बैठा था। बारम्बार 'जय जय' की ध्वनि से कान बहरे हो रहे थे।

दोनो पक्ष की युद्ध सामग्री असाधारण देखकर इन्द्र ने राम के पास अपना युद्ध रथ भेज दिया। और वे स्वय चित्र-रथ के रथ पर बैठकर युद्ध देखने लगे।

अब दोनो ओर से भयङ्कर युद्ध होने लगा। अस्त्र-शस्त्रो से वीर हताहत होने लगे। रक्त से लथपथ होने पर सैनिकों के लिए खड़े रहना कठिन हो गया। सिर और धड़ कट जाने पर वीरो की विशाल भुजाएँ ही मार-काट कर रही थीं। मृतों और आहतो के कारण रणभूमि मे पर्वत का-सा ढेर लग गया।

इस समय रावण का युद्ध में उतरना अपूर्व था। वह सौ छोटे भाइयों से घिरा हुआ था। बाईं ओर इन्द्र-विजयी मेघनाद था, दाहिनी ओर निद्रा से जगाया गया कुम्भकर्ण था। पीछे रावण की माता के बन्धुवर्ग तथा अन्य लोग थे।

रावण को इस प्रकार चढ़ाई के लिए उद्यत देखकर भी राम निर्भय थे। युद्ध आरम्भ होने पर शीघ्रता से बाण चलाये जाने लगे। राम की सेवा में श्रेष्ठ सेनापति भी खड़े थे। रथ के आगे सुग्रीव और पीछे अङ्गद थे। जाम्बवान् और विभीषण भी उनके पास थे। हनुमान् लक्ष्मण के साथ थे। इस प्रकार सब वानर अपनी स्वामि भक्ति और धीरता दिखा रहे थे। इस मनुष्य-लोक में स्नेह ही सब इन्द्रियों का वशीकरण चूर्ण है।

लक्ष्मण और मेघनाद युद्ध कर रहे थे, उधर राम और रावण एक दूसरे पर बाणों की वर्षा कर रहे थे। परन्तु तब भी वे (राम और रावण) अपने भाई और पुत्र की ओर देख लेते थे।

लक्ष्मण के वज्र-सदृश बाणों से सैकड़ों सैनिक खेत रहे। रावण अपने कतिपय पुत्रों को मरा देखकर अनिष्ट की आशङ्का से युद्ध त्यागकर मेघनाद के पास जा पहुँचा। परन्तु रावण अधिक समय तक युद्धभूमि में नहीं ठहर सका। वह सवेग संग्राम से एक ओर निकल भागा। युद्धाभिलाषी कुम्भकर्ण राम के बाणों से घायल हो गया। उसका पुत्र कुम्भ, पिता की यह दशा देखकर, काँपने लगा। पर्वत के समान कुम्भ

को, राम की ओर मूर्तिमान् गर्व के सदृश, बढते देख सुग्रीव ने तुरन्त भुजाओं में दबाकर पीस डाला। पुत्र की यह दशा देखकर कुम्भकर्ण सुग्रीव पर झपटा। चतुर सुग्रीव ने तुरन्त बचकर, शूर्पणखा की नाक कटने की लज्जा का प्रतिकार हुए बिना ही, उसकी भी नाक काट डाली।

रावण युद्ध में पुन आ गया। लक्ष्मण ने रावण और मेघनाद पर एक अद्भुत अस्त्र फेंका जिससे दोनों क्रोधान्ध हो गये। मेघनाद ने मन्त्रों के प्रभाव से दुर्भेद्य एक नागास्त्र चलाया। उसे लक्ष्मण काटने भी न पाये थे कि क्रोधान्ध रावण ने लक्ष्मण को शतघ्नी मारकर अचेत सा कर दिया।

इस समय का युद्ध अद्भुत था। विभीषण से भाई की मूर्च्छा का वृत्तान्त जानकर राम करुणा और वीरता से एक साथ ही प्रभावित हो गये। वे लक्ष्मण के देखने को उत्सुक थे, किन्तु फिर भी, चारों ओर राक्षसी सेना से घिरे होने के कारण उसका सामना कर रहे थे। राम ने क्षण भर में कुम्भकर्ण को यमालय भेज दिया। कुछ अवसर पाकर वे लक्ष्मण को देखने लगे। पुत्र की मृत्यु से रावण दु खित हो रहा था। इसी समय वीर हनुमान् ओषधियोंवाले द्रोण पर्वत को ही उठा लाये। ओषधि की गन्ध से युक्त पर्वत की, वायु से लक्ष्मण तुरन्त सचेत हो गये।

इस समय रावण, प्रलयकाल म समुद्र के जल की नाईं, राक्षस-सेना समेत विपक्ष की ओर बढा। अब धर्मयुद्ध होने

लगा। बहुतेरे प्रधान राक्षस मारे गये। मुख्य राक्षसों में केवल रावण और मेघनाद बच रहे। इनके साथ की क्षुद्र राक्षस-सेना को राम लक्ष्मण कुछ नहीं गिनते थे।

इस समय ओषधि के प्रभाव से लक्ष्मण का तेज पहले जैसा ही हो गया था। फिर घमासान युद्ध होने लगा। राम-रावण तथा लक्ष्मण-मेघनाद परस्पर भिड गये। अनेक अस्त्र शस्त्र चलने लगे। वीरों का सिंहनाद होने लगा। आकाश बाणों से व्याप्त हो गया। शत्रुओं के शरीरों से पृथिवी ढक गई। राम लक्ष्मण तब भी राक्षसों के सिर काटते जाते थे। अब राम और लक्ष्मण ने, ऋषियों के कथनानुसार, रावण और मेघनाद के वध के लिए ब्रह्मास्त्र चलाया। बस, उनके सिर कटकर नीचे गिर पडे। इसके पश्चात् ही उनके धड और अन्त पुर की स्त्रियाँ एक साथ गिर गईं।

इस शुभ अवसर पर आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। उत्सव मनाने के लिए महर्षि लोग इन्द्र को बुलाने लगे। चित्ररथ को कुबेर के पास भेजकर इन्द्र ने भूलोक का मार्ग लिया।

(७)

रावण की मृत्यु के अनन्तर लङ्कापुरी की देवी लङ्कादेवी, अपने स्वामी रावण के लिए विलाप करने लगी। उसे रावण-कुल में से कोई भी अपना दिखाई न पडता था। इस कारण उसे तीव्र शोक था। लङ्कादेवी की बडी बहन अलका-देवी ने उसे कुछ आश्वासन दिया परन्तु लङ्कादेवी ने कहा—

मुझे धीरज कैसे हो ? केवल स्त्रियाँ बच रही हैं। कुलाश्रय एक विभीषण ही बचा है। वह भी शत्रुपक्ष में है।

अलका—बहन, ऐसा मत कहो। वह हमारा वैरी नहीं है। जिसका वैरी था वह गया। वह शत्रुता भी गई। अब त्रिलोकी के हितैषी राम स्वभाव से हमारे हितकारी हैं।

लङ्का ने लम्बी साँस लेकर कहा—यदि ऐसा है तो उन्होंने रावण को क्यों मारा ?

अलका—रावण उनकी स्त्री को हर लाया था। यह उसी पाप का फल है।

लङ्का—तो अब तुम कहाँ जाती हो ?

अलका—रावण के सौतेले भाई कुवेर ने यह समाचार सुनकर मुझसे कहा है कि जाकर राक्षसों को समझा-बुझा आओ। विभीषण का राज्याभिषेक भी देख आओ। उन्होंने आज्ञा दी है कि पुष्पक विमान, जिसे रावण ने हर लिया था, रामचन्द्र की सेवा में रहे।

यह सुनकर लङ्का विस्मित होकर बोली—क्या कुवेर भी राम के पक्षपाती हैं ?

अलका—इसमें क्या आश्चर्य ? साधुजनों की रक्षा के लिए भगवान् अवतार लेते हैं। रावण तो शाप के वश में था। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। उसका भी दोष न था।

इस समय एक ओर से शब्द हुआ। विदित हुआ कि सीता को अग्निपरीक्षा में शुद्ध जानकर, राम ने स्वीकार कर

लिया है। तदुपरान्त बाजों की ध्वनि हुई। ध्यानपूर्वक सुनने से इन्हें ज्ञात हुआ कि अप्सराएँ तथा देवता, ऋषि आदि—जो सीता की शुद्धि के अनुमोदन के लिए आये थे—राम की आज्ञा से विभीषण को राजतिलक देकर अब अपने स्थानों को लौट रहे हैं। पुष्पक विमान को आगे किये विभीषण, रामचन्द्र के पास जा रहा है। यह सुनकर लङ्का और अलका भी राम को देखने के लिए गई।

रामचन्द्र, लक्ष्मण सीता, सुग्रीव आदि सब खड़े थे। विभीषण पुष्पक विमान लेकर वहाँ पहुँचे और निवेदन किया—आपकी आज्ञा से सब बन्दी मुक्त कर दिये गये। यह सदा इच्छानुकूल चलनेवाला पुष्पक विमान है।

पुष्पक विमान को देखकर राम प्रसन्न हुए और मित्र सुग्रीव से पूछने लगे कि अब क्या करना चाहिए।

सुग्रीव—हनुमान् जब द्रोण पर्वत को लेकर आ रहे थे तब उनसे भरत ने अनिष्ट वृत्तान्त सुना था। वे अभी व्याकुल हो रहे होंगे। सो भरत के पास हनुमान् को सूचना के लिए भेजना चाहिए। आप पुष्पक विमान को अलङ्कृत करें।

राम, सीता और लक्ष्मण—सुग्रीव, विभीषण आदि के साथ—विमान पर बैठ गये। चौदह वर्ष के वनवास की अवधि समाप्त होने में केवल एक दिन शेष था। विमान पर बैठकर सब अयोध्या की ओर चले। मार्ग में समुद्र, सेतु, दण्डकारण्य, विन्ध्याचल आदि के दृश्य देखते हुए विश्वामित्र

के आश्रम पर पहुँचे। जहाँ गुरु पैदल चलते हैं वहाँ विमान पर चढ़कर चलना राम ने अनुचित समझा। परन्तु विश्वामित्र ने, नीचे बैठे-बैठे ही उनका आन्तरिक भाव जानकर, आज्ञा दी—सीधे चले चलो। वशिष्ठ आदि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं भी दो घण्टे में वहाँ आता हूँ।

विमान फिर चलने लगा।

उधर हनुमान् से राम के आने की सूचना पाकर भरत-शत्रुघ्न, स्वागत के लिए, सेना-समेत आ गये। विमान जब अयोध्या पहुँचा तब आनन्द का समुद्र उमड आया। चिर काल से बिछुडे हुए भाई-बन्धु पुन मिले।

भरत ने राम से निवेदन किया—आपके राज्याभिषेक का प्रबन्ध करके महाराज वशिष्ठ प्रतीक्षा कर रहे हैं। उधर पधारिए।

राम, सीता और लक्ष्मण आदि अब अयोध्या के राज-मन्दिर के लिए चले। वहाँ वशिष्ठ, अरुन्धती, कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी आदि इनकी राह देख रही था। सब प्रसन्न थीं।

कैकेयी को उदास बैठी देखकर अरुन्धती ने पूछा—बहू! तुम क्यों उदास हो?

कैकेयी—माता! मुझ पापिनी के दुर्भाग्य से सर्वत्र यही प्रसिद्ध है कि "मँझली माता कैकेयी ने, मन्थरा से सन्देश भिजवाकर, कुमारों का वनवास दिलाया था। तो अब मैं इन्हें कैसे मुँह दिखाऊँ?

अरुन्धती—वह ! अपकीर्ति की चिन्ता मत करो। इसका भेद तुम्हारे गुरुजनों ने दिव्य दृष्टि से जान लिया है। माल्यवान् के कहने से शूर्पणखा ने मन्थरा का रूप धारण कर यह सब किया था।

इस समय राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता और विभीषण आदि सब वहाँ पहुँच गये। प्रेम का समुद्र उमड उठा। शिष्यों के साथ विश्वामित्र भी इसी समय आ गये।

रामचन्द्र का राज्याभिषेक यथाविधि कर दिया गया। आकाश मे मङ्गल-गान और पुष्पवृष्टि हुई।

विश्वामित्र ने राम से कहा—सुग्रीव और विभीषण को विदा कर दो। पुष्पक विमान भी कुबेर को लौटा दो। जब आवश्यकता हो, मँगा लेना।

सुग्रीव और विभीषण अपने-अपने देशों को लौट गये। पुष्पक विमान कुबेर को लौटा दिया गया। रामचन्द्र राज-कार्य का निरीक्षण करने लगे।

---

(७) कुन्दमाला

(१)

एक दिन सीता को रथ में बैठाकर लक्ष्मण गङ्गा-दर्शन के लिए ले गये। सुमन्त रथ हाँक रहा था। गङ्गा-तट पर घने वृक्षों और लताओं से पूर्ण वन के समीप पहुँचने पर रथ रुक गया। सीता और लक्ष्मण नीचे उतर पड़े। घोड़ों को विश्राम देने के लिए सुमन्त्र रथ को एक ओर ले गया। लम्बी यात्रा से परिश्रान्त घोड़ों को विश्राम कराने के लिए सुमन्त्र रथ को लेकर और कहीं चला गया। सीता और लक्ष्मण आगे पैदल चलने लगे।

अब लक्ष्मण सोचने लगे कि महाराज ने आज्ञा दी है कि "रावण के घर में रहने से सीता के चरित्र के विषय में पुरवासियों में अपवाद फैल रहा है। अतएव केवल सीता के लिए मैं, शरत्-चन्द्र के समान निर्मल, इक्ष्वाकु-कुल में कलङ्क न लगने दूँगा। दोहद में सीता ने मुझसे गङ्गा-दर्शन की प्रार्थना की है। अत तुम इन्हें, गङ्गा ले जाने के बहाने, रथ में बैठाकर, किसी वन स्थान में छोड आओ।" सो मैं स्वजन-विश्वास के कारण निर्भय सीता को यहाँ लाकर वन को जा रहा हूँ। हा। मैं कैसे पापमय कर्म में प्रवृत्त हो रहा हूँ।

इतने में नदी-तट समीप आ गया। स्नान के लिए गङ्गा के विषम तट से नीचे उतरते-उतरते सीता परिश्रान्त हो गईं। वे एक वृक्ष की छाया में थोड़ी देर विश्राम करने को बैठ गईं। सीता को विश्राम कर चुकी जानकर लक्ष्मण, उनके चरणों पर सिर रखकर, बोले—आपके प्रवास के दुःख का चिर-सहचर अभागा लक्ष्मण प्रार्थना करता है कि आप अपने हृदय को स्थिर कर लें।

सीता ने स्तब्ध होकर पूछा—महाराज तो सकुशल हैं?

लक्ष्मण ने वन की ओर संकेत करके कहा—ऐसा होने पर कुशल कहाँ?

सीता—क्या माता ने फिर वनवास दे दिया?

लक्ष्मण—माता ने नहीं, महाराज ने।

सीता—वत्स! स्पष्ट कहो क्या बात है।

लक्ष्मण—मैं मन्दभाग्य और क्या कहूँ? महाराज ने आपको त्याग दिया है। आपको यहाँ छोड़कर मैं भी चला जाऊँगा।

यह सुनकर सीता मूर्च्छित हो गईं। गङ्गा के जल-बिन्दु से शीतल और मृदु वायु द्वारा शीघ्र सचेत होकर बोलीं—वत्स! मुझे किस दोष से निकाला है?

लक्ष्मण—आपमें कैसा दोष?

सीता ने व्याकुल होकर कहा—हाय! मेरा दुर्भाग्य! तो क्या बिना दोष ही मुझे निकाला है? मेरे लिए कोई सन्देश हो तो कहो।

लक्ष्मण—उन्होंने कहा है कि "सीता ! मैं जानता हूँ कि तुम कुल और गुण में मेरे सदृश हो तथा सुख-दुःख में चिर-काल से मेरी सहचरी हो, परन्तु मैं तुम्हें लोकापवाद के भय से त्यागता हूँ, न कि तुम्हारे किसी वास्तविक दोष से"।

सीता—मुझमें क्या दोष है ?

लक्ष्मण—ऋषियों के, लोकपालों के, राम के तथा मेरे सामने आप अग्नि-परीक्षा में शुद्ध प्रमाणित हुई थीं, किन्तु लोग निरङ्कुश हैं। उन्हें कौन रोक सकता है ?

अब तो सीता सब कुछ समझ गई। वे शोक-ग्रस्त होकर कहने लगीं—मेरे विषय में भी ऐसा कहा जाता है ! अथवा, स्त्री होने को ही धिक्कार है ! हाय, मैं त्याग दी गई ! इस प्रकार स्वामी से परित्यक्त होकर मैं प्राण-त्याग क्यों न कर दूँ ? नहीं, मुझे तो, उन कठोर की वैसी ही सन्तान की रक्षा के कारण, इस कलङ्क रूपी कण्टक से विद्ध होने पर भी अपने जीवन की रक्षा करनी ही होगी।

इस विचार पर उपकार मानते हुए लक्ष्मण ने आगे बताया कि *महाराज ने यह भी कहा है—तुम मेरे हृदय में* स्थित गृह-देवी हो, स्वप्न में प्रकट होकर मेरी शय्या की सङ्गिनी हो। मुझे दूसरी स्त्री की इच्छा नहीं है। यज्ञ में तुम्हारी प्रतिमा ही मेरी धर्मपत्नी होगी।

यह सुनने पर सीता का दुःख कम हो गया। लक्ष्मण ने जब सन्देश का उत्तर माँगा तब सीता ने कहा—मेरी सासों

से, चरण छूकर, निवेदन करना कि इस प्रकार हिंस्र जन्तुओं से व्याप्त वन में रहती हुई मेरी वे हृदय से मङ्गल कामना किया करें।

लक्ष्मण—यह आज्ञा मैंने सुन ली। महाराज के लिए आप कुछ न कहेंगी।

सीता—उनके सदृश निर्दय के लिए, तुम्हारे वचनों को निष्फल न बनाने के अभिप्राय से, मैं सन्देश देती हूँ। उनसे मेरी ओर से कहना कि वे मुझ अभागिनी के लिए शोक करके राज-धर्म के पालन में शिथिलता न करें। सत धर्म और अपने शरीर के सम्बन्ध मे सावधान रहें। वत्स! उन्हें भला उलहना क्या दूँ?

लक्ष्मण—क्या आपमें इतना भी सामर्थ्य नहीं?

सीता—तो उनसे इतना और कहना कि मुझ निरपराधिनी को हृदय से सहसा निकाल देना उचित न था, आपने तो देश से भी निकाल दिया। और यह भी निवेदन करना कि तपोवन-निवासिनी सीता हाथ जोडकर प्रार्थना करती है कि यदि मैं निरर्थक हूँ, तो मुझे चिर-परिचित या अनाथा समझकर ही कभी-कभी स्मरण-मात्र से अनुगृहीत कर दिया करें।

यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा—यह सन्देश सुनकर महाराज को, क्षत पर क्षार के समान, अवश्य असह्य वेदना होगी।

सीता अब क्या कर सकती थीं? उन्होंने लक्ष्मण से, भाई के शरीर की ओर सावधानी रखने को कहा और पुनः निवेदन किया कि मेरी ओर से रघुवंश की राजधानी भगवती अयोध्या को प्रणाम कहना, स्वर्गीय महाराज की मूर्त्ति की सेवा करना, सासों की आज्ञा का पालन करना, प्रियवादिनी मेरी प्रिय सखियों को आश्वासन देना, मुझ अभागिनी को सदा स्मरण रखना।—इतना कहते-कहते सीता रोने लगीं। लक्ष्मण भी उद्विग्न हो गये।

फिर सूर्यास्त समीप जानकर सीता ने लक्ष्मण को वापिस जाने को कहा। लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और निवेदन किया—आप स्वामी, सखी या स्वजनों का स्मरण करती हुई शोक मे आत्महत्या न कर लें। इक्ष्वाकु वंश की सन्तान आपके गर्भ मे है। आप इसकी यत्नपूर्वक रक्षा करें।

सीता ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

लक्ष्मण ने फिर कहा—मैं महाराज की आज्ञा मे आपको वन मे लाकर छोड़ रहा हूँ। देवी! मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

सीता—तुम भाई की आज्ञा पालनेवाले हो। तुम्हें सन्तोष के स्थान मे दोष की आशङ्का कैसी?

लक्ष्मण ने अब सीता की प्रदक्षिणा कर दिक्पाल, भगवती भागीरथी, मुनिजन, वनदेवता आदि से उनकी रक्षा के लिए प्रार्थना की। इसके अनन्तर सीता को प्रणाम करके वे चले गये।

सीता व्याकुल होकर कहने लगीं—'क्या सचमुच लक्ष्मण मुझ अकेली को छोड़कर चला गया ? हाय ! इस समय सूर्य अस्त हो गया। लक्ष्मण का शब्द भी नहीं सुन पड़ता। हरिण भी अपने विश्राम-स्थान को जाने लगे हैं, पक्षी अपने घोंसलों को उड़ने लगे हैं। हिंसक जीव विचरने लगे हैं। अन्धकार ने दृष्टि ढक दी है, वन निर्जन हो गया है। मैं दुर्भागिनी कहाँ जाऊँ ? हाय ! मैंने कौन से पाप किये हैं जिनका परिणाम यह भोग रही हूँ। कैसे कैसे लक्ष्मण से नियुक्त किये हुए वन-देवता कैसे रघुवंश के परम्परागत वशिष्ठ वाल्मीकि आदि महाप्रभावशाली वे महर्षि अब मुझे त्यागकर "

इस प्रकार रोती हुई सीता मूर्च्छित हो गईं। इस समय महर्षि वाल्मीकि वहाँ आ गये। मुनिपुत्रों ने सायङ्काल गङ्गा-स्नान से लौटकर उनसे कहा था कि एक निराश्रया गर्भिणी स्त्री अकेली वन में रो रही है। इसी से वे शीघ्र ही आकर उसे ढूँढ रहे थे।

सीता को चेत हो आया। महर्षि कह रहे थे—"मैं यहाँ हूँ !"

सीता को प्रतीत हुआ कि कोई उन्हें ढूँढ रहा है। उन्होंने कहा—लक्ष्मण ! क्या तुम लौट आये ?

वाल्मीकि—लक्ष्मण नहीं, मैं हूँ।

पर-पुरुष समझकर सीता ने घूँघट निकालकर कहा—मैं अकेली हूँ।



सीता परित्याग

वाल्मीकि—बेटी, मैं यहाँ खड़ा हूँ। तुम पर-पुरुष की शङ्का मत करो। सायङ्काल उपासना से निवृत्त होकर जब मुनि-पुत्र लौटे तब उनसे तुम्हारा वृत्तान्त पाकर मैं तपस्वी तुम्हीं को सहायता देने आया हूँ। सो मुझे बताओ कि धर्म-युद्ध के विजेता राम के साम्राज्य में तुम पर कैसी विपत्ति है।

सीता—उसी पूर्ण चन्द्र से यह वज्राघात हुआ है।

वाल्मीकि—क्या राम से ही तुम्हें विपत्ति आई है?

सीता—हाँ।

अब तो वाल्मीकि कहने लगे—यदि वर्णाश्रम-धर्म के प्रति-पालक महाराज ने तुम्हें निकाला है तो तुम्हारा कल्याण हो, मैं जाता हूँ।

सीता ने प्रार्थना की—यदि रघुवर-द्वारा निर्वासित की जाने के कारण मैं दयापात्र नहीं हूँ तो रघु, सगर, दिलीप, दशरथ आदि की सन्तति को तो, जो मेरे गर्भ में है, बचाना चाहिए।

यह सुनकर वाल्मीकि लौट पड़े। उन्हें चिन्ता हुई कि इक्ष्वाकु-वंश का उदाहरण देनेवाली यह स्त्री कौन है। वे पास आकर बोले—पुत्री! क्या तुम दशरथ की पुत्रवधू हो?

सीता—आपका कथन ठीक है।

वाल्मीकि—और विदेहराज जनक की पुत्री?

सीता—हाँ।

अब तो वाल्मीकि उन्हें सीता समझकर कहने लगे—क्या तुम्हीं सीता हो?

दु खित-हृदया सीता ने कहा—भगवन् ! मैं सीता नहीं, एक अभागिनी हूँ।

वाल्मीकि—हा ! मैं मन्दभाग्य नष्ट हो गया। बेटी, राजप्रासाद में तुम्हारा अध पात कैसे हुआ ?

लज्जा के कारण सीता चुप ही रहीं। वाल्मीकि ने दिव्य दृष्टि से सब कारण जानकर सीता से कहा—तुम निरपराधिनी हो। आओ, आश्रम को चलें।

सीता—आप कौन हैं ?

वाल्मीकि—मैं राजा जनक का मित्र और दशरथ का बाल-सखा हूँ। मुझे दूसरा कोई मत समझो। मैं ही वाल्मीकि हूँ। मैं तुम्हारे लिए ससुर और पिता के तुल्य हूँ।

अब सीता ने उन्हें प्रणाम किया। वाल्मीकि ने आशीर्वाद दिया—वीर-पुत्र की माता होओ, तुम्हें स्वामी के पुनर्दर्शन होवें।

अब तो सीता नि सकोच इनके साथ आश्रम को चलने लगीं। चलते समय उन्होंने हाथ जोड कर गङ्गा से प्रतिज्ञा की कि सुखपूर्वक प्रसव होने पर मैं प्रतिदिन 'कुन्द'-पुष्पों की अच्छी गुँथी हुई माला तुम्हें अर्पण किया करूँगी।

(२)

राम के सदृश दो पुत्र, यथासमय, सीता के उत्पन्न हुए। बडे का नाम कुश रक्खा गया, छोटे का लव। दोनों कुमार चन्द्र-कला की नाईं बढने लगे। मृग-शावकों के साथ दौडते

समय वे, तपस्वियो के हृदयो को मोहते हुए, दो प्रतिद्वन्द्वी मिहशावक प्रतीत होते थे। वे मुनियों की गोद मे फिरते थे। कुछ बडे होने पर वे वाल्मीकि-प्रणीत रामायण पढने लगे। ऐसे पुत्रों के जन्म से तपोवन के स्त्री-पुरुष सीता को भाग्यवती कहते थे।

कुछ समय के पश्चात् महाराज रामचन्द्र ने नैमिषारण्य मे यज्ञ रचा। यज्ञ-सामग्री एकत्र हो गई। स्त्रियों सहित तपस्वियो को निमन्त्रण दिया गया। महर्षि वाल्मीकि को भी राम का निमन्त्रण मिला। परन्तु सीता को यज्ञ के विषय में किसी से कोई सूचना न मिली।

चिन्ता मे निमग्न सीता एक दिन, शालवृक्ष की छाया मे, बैठी थीं। वे सोचती थीं कि स्वभाव से ही निर्दय पुरुषों के हृदय का विश्वास नहीं। अथवा मैं स्वामी की निन्दा क्यों करूँ? पहले मेरे स्वामी अब कोसों के अन्तर पर हुए • निष्कारण • मैं पूर्ण दुखिया बनाई गई हूँ। जब मैं स्वामी को प्रिय थी तब सारी मिथिला मेरा सत्कार करती थी। अब मेरी ऐसी दुरवस्था है कि परित्याग के दुख स भी अधिक पीडा मुझे लज्जा देती है। अथवा अब तो कुमार उत्पन्न हो गये हैं, और भाग्य मे वढ भी रहे हैं। भगवान् वाल्मीकि मेरा आदर करते हैं। तपोवन के नियम के विरुद्ध दीर्घ निश्वास लेकर समय व्यतीत करना अनुचित है।

सीता ऐसी चिन्ता कर रही थीं कि प्रिय सखी वेदवती ने उन्हें पुकारा। इसने सीता को चिरकाल से नहीं देखा था। इसकी अनुपस्थिति में ही कुश-लव का जन्म हुआ था। सीता ने इसे छाती से लगा लिया।

वेदवती—कुश-लव तो कुशल से हैं?

सीता—जैसी वनवासियों की कुशल होती है।

वेदवती—तुम कैसी हो?

सीता ने वेणी दिखाकर कहा—इसे देख लो।

वेदवती समझ गई कि यह अभागिनी दुःख से सन्तप्त हो रही है। राम के द्वारा किये गये अपमान की चर्चा करके उसने इनका दुःख घटाना चाहा। कहने लगी—अरी मूढ़! निर्दय स्वामी के लिए तुम, कृष्णपक्ष की चन्द्र-कला की नाईं, क्यों प्रतिदिन क्षीण होती जा रही हो?

सीता—वे निर्दय क्यों हैं?

वेदवती—इसलिए कि तुम्हें त्याग दिया है।

सीता—क्या मैं त्याग दी गई हूँ?

वेदवती—लोग तो ऐसा ही कहते हैं।

सीता—उन्होंने शरीर से अवश्य त्याग दिया है, किन्तु हृदय से नहीं त्यागा।

वेदवती—पराये हृदय को तुम कैसे जानती हो?

सीता—उनका हृदय सीता के लिए पराया कैसे होगा?

वेदवती—अहो, अनुराग नहीं घटा!

सीता—वे मेरे लिए अनुराग कैसे त्याग सकते हैं, जब यह प्रसिद्ध है कि मुझ अभागिनी के लिए उन्होंने सेतु-बन्धन आदि का परिश्रम सहन किया था।

वेदवती—आत्मश्लाघिनी! रावण के ऊपर क्रोध करना क्षत्रियों के लिए उचित ही था, इसका कारण सीता पर अनुराग न था।

परन्तु सीता ऐसे विचार को मन में नहीं ला सकती थीं। वे कहने लगीं—तुम यह नहीं देखती हो कि सौतों के निःश्वास से राम का वक्षस्थल अभी तक अपवित्र नहीं हुआ। क्या यह मेरा सत्कार नहीं है?

वेदवती—इतनी अधीर मत होओ। राम की यज्ञ-दीक्षा का समय समीप है। तब उन्हें धर्मपत्नी का पाणि-ग्रहण करना पड़ेगा।

सीता—स्वामी के हृदय पर मेरा अधिकार है, न कि उनके हाथ पर।

वेदवती को विश्वास हो गया कि सीता का राम पर दृढ प्रेम है। अब उसने कहा—क्या पुत्रों के मुखदर्शन से तुम्हारा प्रवास शोक नवीन हो गया है?

सीता—शोक न्यून करने पर भी बढ़ता है। देखो, इन पुत्रों को देख देखकर मुझे महाराज का स्मरण हो आता है। इससे मुझे और भी कष्ट होता है। हाय! सखी वेदवती! क्या स्वामी के पुनर्दर्शन कर मैं अपना जीवन सार्थक कर सकूँगी?

इतना वार्तालाप हुआ था कि एक ओर से घोषणा का शब्द सुनाई पडा—यहाँ से समीप ही अश्वमेध यज्ञ आरम्भ हुआ है। यज्ञ की सब सामग्री एकत्र हो गई है। वशिष्ठ, आत्रेय आदि अनेक मुनि भिन्न-भिन्न प्रदेशों से पधार चुके हैं। केवल भगवान् वाल्मीकि के आने की प्रतीक्षा करते हुए महाराज ने अब तक यज्ञ दीक्षा नहीं ली है। वाल्मीकि के तपोवन-निवासियों के निमन्त्रण के लिए राम का दूत आया है। सो अब विलम्ब न करो।

इस आदेश के अनुसार मुनिजन, शिष्यमण्डली-सहित, चलने को सज्जित हो गये। सीता ने भी शीघ्रता से कुश और लव को तिलक लगा दिया। वे स्वय भी, अन्य तपस्विनियों के साथ, नैमिषारण्य को चल पडी।

(३)

सीता कुश, लव तथा अन्य तपस्वियों के साथ महर्षि वाल्मीकि नैमिषारण्य मे, सायङ्काल से पहले, पहुँच गये। दूसरे दिन इन महर्षि के दर्शन करने के लिए राम और लक्ष्मण, दोपहर से पूर्व, गोमती के तट पर इनके आश्रम को गये।

राम मार्ग में जाते समय सीता के लिए चिन्तित हो रहे थे। लक्ष्मण भी पुन वन में आकर सीता को वन में छोड जाने के स्मरण से, दु खित थे। उन्हें इस बात का शोक था कि वे ही निरपराध सीता को, छल से, घने वन मे छोडने को इच्छा से लाये थे।

लक्ष्मण ने राम को सीता के लिए अधिक चिन्तित देख-कर, दूसरी ओर उनका ध्यान हटाने के विचार से, उनसे गोमती नदी की रमणीयता देखने का अनुरोध किया।

गोमती नदी की ओर देखते हुए लक्ष्मण की दृष्टि, नदी की तरङ्गों में सर्पिणी की वक्र गति का अनुसरण कर रही, कुन्द पुष्पों की एक माला पर जा पड़ी। चरण-स्पर्श की कामना से वह कुन्दमाला, तरङ्गों में बहती हुई, राम के चरणों के पास आ लगी। लक्ष्मण ने राम से उसका ग्रन्थन वैचित्र्य देखने को कहा।

राम ने माला को देखकर प्रसन्नतापूर्वक लक्ष्मण से कहा—वत्स! मैंने इस माला का-सा विन्यास-कौशल पहले भी देखा है।

लक्ष्मण—कहाँ देखा है?

राम—सीता के अतिरिक्त और कौन ऐसी माला गूँथ सकता है?

लक्ष्मण—जगत्पति कैसी-कैसी क्रीडाएँ करता है, यह जानने की शक्ति हम अज्ञानियों में नहीं। आइए, अब गोमती-तट के साथ-साथ माला के उद्गम स्थान की ओर चलें।

पहले तो राम ने कहा कि इस लोक में सादृश्य दुर्लभ नहीं है। हमारा ऐसा सौभाग्य कहाँ कि परित्यक्त सीता यहाँ, इतनी दूर, आ गई हो। परन्तु तब भी उधर चलने का विचार हुआ जिससे कि नदी-तट के साथ-साथ चलकर उस

स्थान पर शीघ्र पहुँच जायँ। थोड़ी दूर चलने पर वाल्मीकि का आश्रम समीप ही जान पड़ा।

कुछ और आगे बढ़े तो लक्ष्मण को वालुका-भूमि पर पद-चिह्न दिखाई पड़े। उनके दिखाने पर राम ने वह पद चिह्न देखकर कहा—वत्स! ये तो सीता के ही पद-चिह्न हैं।

पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए दोनों भाई उत्कण्ठा-पूर्वक वाल्मीकि के आश्रम की ओर चले।

उधर सीता उपासना से निवृत्त होकर, अपने हाथों गूँथी हुई, कुन्दमाला भागीरथी (गोमती) को समर्पित कर चुकी थीं। इसके अनन्तर अतिथि-पूजा के योग्य पुष्प चुनने के लिए वे ऊँचे, घने, शीतल लता-कुञ्ज में चली गईं। उनके पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए लक्ष्मण और राम भी वहाँ लता-कुञ्ज के बाहर तक पहुँच गये। वहाँ तनिक विश्राम करके वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचने का विचार हुआ।

वहाँ सीता को 'वत्स! वत्स!' ये परिचित शब्द सुन पड़े। उनका शरीर पुलकित हो गया। उन्होंने समझा कि वही निर्दय यहाँ आ गये। उधर देखने लगीं तो विचार हुआ कि उन्हें देखने से मेरी आत्मा लज्जित होती है। सो उन्होंने उधर से मुँह फेर लिया। परन्तु वे अपने को वश में न रख सकीं। दृष्टि बलात् उधर खिंच गई। उधर देखकर सीता कहने लगीं—अहो! इन्हें देख लिया इससे सन्तोष है, चिर-प्रवास में क्रोध है, इन्हें क्षीण देखकर उद्वेग है, ये निर्दय हैं इस कारण

अभिमान है, चिर-परिचित होने से अनुराग है, दर्शनीय होने के कारण उत्कण्ठा है, स्वामी हैं इस कारण इनके प्रति सम्मान है, कुश लव के पिता हैं इस कारण कुटुम्बिनी का सद्भाव है, अपराधिनी कही गई हूँ इस कारण लज्जा है।

सीता के मन में ऐसे विविध भाव उठने लगे। अब वे कान लगाकर राम-लक्ष्मण का वार्त्तालाप सुनने लगीं।

लक्ष्मण ने राम-द्वारा पुकारे जाने पर कहा—आपने मुझे सहसा बुलाकर क्यों सजल नेत्र हो तथा मौन धारण कर सिर नीचा कर लिया है ?

राम—दण्डक वन के प्रवास का स्मरण आने से चित्त व्याकुल हो रहा है।

सीता ने मन में कहा कि वनवास का स्मरण है, उस वनवासिनी का नहीं ?

लक्ष्मण—उस दुःसमय वनवास के स्मरण से क्या लाभ ?

राम—वत्स लक्ष्मण! क्या कहते हो ? देखो, मुझे सायंकाल में सीता का सुकुमार हाथ पकड़कर विविध प्रेमालाप करने का स्मरण आता है।

यह सुनकर सीता आप ही कहने लगीं कि निर्दय! इस अनुचित सलाप से मुझ शरणहीना को और क्यों पीड़ा देते हो ?

लक्ष्मण ने राम से धैर्य रखने को कहा, परन्तु राम ने कहा—मैं धीरज रक्खूँ कैसे ? देखो, पहले वनवास, फिर

लङ्का का युद्ध आदि और फिर यह निर्वासन। मुझ जैसे पतित से सीता को दुःख पर दुःख मिल रहे हैं।

सीता ने मन में कहा कि नाथ! आपका यह शोक निर्वासित सीता के अनुकूल नहीं है।

राम अब "जनक-राजपुत्री! वनवास-सहायिनी! तुम कहा चली गई हो?" इत्यादि कहकर विलाप करने लगे। फिर लक्ष्मण से बोले—उसका कहीं पता लग सकता है?

लक्ष्मण—पता लगना कठिन है।

अब शोक-विह्वल राम रोने लगे। यह देखकर सीता को शोक हुआ। वे सोचने लगीं कि अश्रुधारा से ढकी आँखों को साहस करके पोंछ दूँ। उन्होंने पैर बढाया ही था कि फिर सोचने लगीं कि लोकापवाद से बचाना चाहिए। जब तक ये मुझे देख नहीं लेते, मैं शोकावेग से बलपूर्वक अपने आपको वश में नहीं रख सकती। यह मुनियो के आने-जाने का स्थान है। कोई अकस्मात् आकर मुझे देख लेगा।

दूसरे के द्वारा देखे जाने के भय से सीता आश्रम की ओर कुश लव के पास चली गई।

इस समय महर्षि वाल्मीकि द्वारा भेजे हुए बादरायण ऋषि, राम को लेने, वहाँ आये। वाल्मीकि नें सुन लिया था कि लक्ष्मण के साथ राम यहाँ आ रहे हैं। उन्हें शङ्का थी कि कहीं हमें मध्याह्न-कर्मों मे व्यग्र देखकर वे बाहर ही न बैठे रहें। अतएव ऋषि से कहा कि मार्ग में जाकर राम को बुला लाओ।

बादरायण को आते देखकर राम ने आँसू पोंछ लिये। अब वे स्थिर होकर बैठ गये। ऋषि पास आकर राम-लक्ष्मण को आश्रम में लिवा गये।

(४)

एक दिन भगवान् वाल्मीकि के तपोवन में, रामायण गाने के लिए, तिलोत्तमा अप्सरा बुलाई गई। उसने वेदवती से कहा कि वह, दिव्यशक्ति द्वारा, सीता के रूप से राम के सामने जाकर जानना चाहती है कि राम सीता के ऊपर दयावान् हैं या नहीं। वेदवती ने यह सूचना यज्ञवेदि को दी और राम का विश्रामस्थान पूछा। यज्ञवेदि ने कहा कि जब तुम्हारी यह बात तिलोत्तमा से हो रही थी तब लता की ओट में छिपे हुए राम के मित्र कौशिक ने यह सब मन्त्रणा सुन ली थी। अब वेदवती ने सोचा कि राम के जान लेने पर भी यदि अब सीता का चरित किया जायगा तो यह उपहास के विपरीत होगा। सो वेदवती ने जाकर तिलोत्तमा को रोक देने का निश्चय किया।

इस दिन से सातवें दिन पहले एक विचित्र घटना हुई थी। सब तपस्विनियों ने भगवान् वाल्मीकि से प्रार्थना की कि आश्रम की यह पुष्करिणी अब महाराज के समीप होने के कारण, पर-पुरुष की दृष्टि पड़ने से, स्त्रियों के स्नान आदि के योग्य नहीं रही। तब वाल्मीकि ने ध्यान से निश्चल-नेत्र होकर, पल भर सोचकर, कहा कि इस पुष्करिणी पर आई हुई स्त्रियाँ

पुरुष-दृष्टि से अदृश्य रहेंगी। तब से लेकर सीता, राम के दृष्टि-पथ से बचने के लिए, इस पुष्करिणी के तट पर सारा दिन व्यतीत कर देती थीं।

एक दिन, जब तिलोत्तमा आई थी, अधिक शोक-विह्वल हो रही सीता पुष्करिणी के तट पर बैठी थीं। पहले वनवास में वनदेवी मायावती से स्मृति-रूप प्राप्त चन्द्रमा से श्वेत सुवासित दिव्य उत्तरीय को, जो राम और सीता दोनों के हाथ में रहने से अति प्रिय और चिरकाल तक दुःख का भागी रहा था, सीता ओढ़े हुए थीं। उनको आज-कल राम के तपोवन में होने से दूना शोक हो रहा था। वे अकेली दिन-रात दीर्घ निःश्वास लेती रहती थीं। उनको हृदय का आवेग दुःसह हो उठा था। वहाँ बैठी अधीर होकर वे कभी तो रोने लगतीं और कभी चुप हो जाती थीं।

ऐसे समय में वहाँ राम को लेकर कण्व ऋषि आये। राम को चिन्ताकुल देखकर वाल्मीकि ने कण्व ऋषि से कहा था कि नैमिषारण्य के दृश्य दिखाकर इनका मनोविनोद करो।

राम के चित्त को वन की रमणीयता की ओर आकर्षित करके कण्व ने पूछा—यह वन आपको प्रिय है न?

राम—इस वन के प्रति मेरे हृदय में बड़ा सम्मान है। प्रिय है या नहीं, इस प्रश्न के लिए अवकाश ही नहीं।

नैमिषारण्य के प्रति राम की भक्ति देखकर कण्व ऋषि ने नैमिषारण्य की ही प्रशंसा आरम्भ कर दी। परन्तु राम का

ध्यान तब भी प्रवासी मनुष्य तथा जीव-जन्तुओं की ओर ही जाता था। उनका शोकावेग कम न हुआ।

कुछ समय के पश्चात् कण्व ने होमाग्नि के धुएँ से भयभीत भ्रमरों को कमलों के भीतर प्रवेश करने के लिए उड़ते देखा। निरन्तर आहुति डालने से धुआँ इतना बढ़ गया कि राम की आँखें दुखने लगीं। तब उन्होंने कहा—सीता के विरह की अश्रुधारा टपकाती हुई मेरी दुःखित आँखें अब धुएँ से और पीड़ित हो रही हैं।

तब कण्व ने राम को पुष्करिणी में स्नान कर और शीतल जल में आँखें धोकर विश्राम करने को कहा और वे स्वयं कुलपति के हवन में चले गये।

राम उस पुष्करिणी में उतर गये। जल में एक छाया देखकर आश्चर्य से कहने लगे—यहाँ सीता कैसे आई।

इन्हें देखकर सीता ने कहा—अरे। हंसों के देखने में मग्न होने से मैंने इनको आते देखा ही नहीं।

अब सीता वहाँ से हट गई। उनके हट जाने से छाया भी हट गई।

वहाँ छाया न देखकर राम ने कहा कि मेरा सत्कार किये बिना सीता कैसे चली गई। उन्हें पकड़ने के लिए उधर हाथ बढ़ाकर वे कहने लगे—यह सीता नहीं है, यह तो पुष्करिणी-तट पर कहीं जाती हुई सीता की, जल में पड़ी, छाया है।

राम अब छाया के मूल-कारण सीता को ढूँढने लगे, परन्तु

पुष्करिणी का तट तो जन-शून्य था। आकृति के बिना उस प्रतिबिम्ब को असम्भव जानकर राम सोचने लगे कि बात क्या है। उधर सीता ने इन्हें अपनी छाया से दुखित देखकर अपनी छाया भी हटा ली। राम अब मूर्च्छित हो गये।

राम को मूर्च्छित देखकर सीता उनके पास गये बिना न रह सकी। पास जाकर राम को, अचेत पड़ा देखा तो उन्होंने व्याकुल होकर उनका स्पर्श कर लिया। राम को चेत आ गया। सीता अलग हट गई। राम को अपना शरीर रोमाञ्चित-सा जान पड़ा। निर्वासित दशा में ऐसा साहस करने से सीता डर गई।

राम ने रोते हुए कहा—प्रिये! मुझे पृथक् मत करो।

सीता ने मन में कहा—मैं निरपराध हूँ।

राम—प्रिये! मुझे दर्शन दो।

सीता—सिद्ध वाल्मीकि की आज्ञा शक्तिमय है। मैं अभागिनी क्या करूँ?

राम फिर कहने लगे—इस दीर्घ रोष को त्याग दो।

सीता—मैं भी आपसे यही प्रार्थना करती हूँ।

राम—तुम मेरे लिए कठोर क्यो हो?

सीता—नाथ! यह उलहना विपरीत है।

राम—प्रिये! मैं कहता हूँ कि तुम सच्चरित्र हो।

सीता प्रसन्न होकर बोलीं—अहो! तो फिर ये प्राण त्यागने योग्य नहीं हैं।

राम ने फिर कहा—तुम्हें जो देश से निकाल दिया है।

सीता—आप तो सब सेवकों के रक्षक हैं।

राम ने अब प्रार्थना की—यह दोष होने पर भी तुम प्रसन्न हो जाओ।

सीता—मैं तो सदैव प्रसन्न हूँ।

इस प्रकार विलाप करते हुए राम को जब कुछ उत्तर सुनाई न दिया (क्योंकि मुनि के प्रभाव से सीता के वचन और दर्शन गुप्त थे) तब "हा प्रिये। जनक-पुत्री।" कहकर वे पुन मूर्च्छित हो गये।

सीता दुपट्टे से हवा करने लगीं। राम ने सचेत होकर दुपट्टा पकड़ लिया और कहा कि यह दुपट्टे का पल्ला-सा क्या है? यह क्या होगा? फिर सोचकर बोले—सीता के बिना कोई नहीं दीखता जो अपने आँचल से मुझे निरन्तर हवा कर सके।

सीता को देखने की इच्छा से आँखें खोलीं। परन्तु आँसू निकलने से कुछ भी दीख न पड़ा। आँसू पोंछने के लिए आँचल खींचने लगे।

सीता ने उत्तरीय को तो छोड़ दिया परन्तु मन में कहा कि पराये वस्त्र से आपका आँसू पोंछना उचित नहीं। गिरे हुए वस्त्र को देखकर राम ने कहा—यह क्या! केवल उत्तरीय ही दिखता है, इसको धारण करनेवाला नहीं। राम ने उत्तरीय को देखकर पहचान लिया कि यह तो वही है जिसे चित्रकूट

की वनदेवी मायावती ने दिया था। परिचित उत्तरीय को देख-कर राम अत्यन्त प्रसन्न हुए। वे कहने लगे—इस उत्तरीय का विशेष सम्मान कैसे करूँ ? फिर कुछ विचारकर उन्होंने उत्तरीय स्वय ओढ लिया। इसमें उन्हें असाधारण सम्मान दीख पडा। परन्तु फिर कुछ विचार हुआ कि दूसरा उत्तरीय ओढे देखकर मुनिजन मुझे क्या कहेंगे। इसलिए अपना उत्तरीय उतार दिया।

पृथ्वी पर गिरने से पहले ही उस उत्तरीय को पकडकर सीता ने ओढ लिया। नीचे गिरने से पहले ही उत्तरीय को अपहृत देखकर राम विस्मित हुए। उन्होंने समझा कि अब मनोरथ की सफलता समीप है। फिर वे सोचने लगे कि उठाये जाते हुए उत्तरीय की छाया तो जल में दिखाई दी, पर सीता नहीं। सिद्ध तपस्वियो के द्वारा उसमें यह प्रभाव हो गया है। अब उसके दर्शन शीघ्र कैसे हो ?

ऐसा विचारकर राम ने फिर कहा—वैदेही ! पूर्व-वृत्तान्त का भी कुछ स्मरण है जो मुझे इस प्रकार दर्शनमात्र से भी सत्कृत नहीं करती ?

सीता ने मन में कहा—कैसा पूर्व-वृत्तान्त ?

राम—तुम्हें स्मरण है कि चित्रकूट पर जब तुम पुष्प-सचय को जाती थीं तब मैं तुम्हें बिना कहे, पीछे से आकर, प्रेमपूर्वक झोली को पकडकर एकत्र किये पुष्पो को पृथ्वी पर बिखेर देता था ?

सीता—साहसिक ! तुम्हीं ने मुझे दूर कर दिया है।

सायंकाल समय समीप जानकर सीता ने जाना चाहा। इस समय राम की खोज में कौशिक वहाँ आ पहुँचा। कौशिक को आता देखकर सीता चली गई। कौशिक ने राम से कहा—आज आपको प्रातःकाल से ढूँढते ढूँढते सायङ्काल हो गया। मैंने सुना है कि मुनिकन्याओं और अप्सरा ने एक तपोवन रहस्य के विषय में मन्त्रणा की थी। वह आपको कुछ अप्रिय है। वही कहने को मैं व्याकुल हो रहा हूँ।

राम—कैसा तपोवन-रहस्य ?

कौशिक ने तिलोत्तमा के, सीता का रूप धारण कर, राम का उपहास करने की वार्ता कही। राम ने समझा कि यह ठीक ही है, अन्यथा प्रिया की निकटता का सूचक उत्तरीय तो दिखाई दे परन्तु प्रिया स्वयं न दिखे, यह मनुष्यों में असम्भव है। मुझे कामरूपधारिणी तिलोत्तमा ने पूर्णतया ठग लिया।

कौशिक ने राम को लज्जित सा देखकर कहा—आप लज्जित क्यों होते हैं ?

राम—भाई ! मैं ठगा गया हूँ।

कौशिक—क्या मेरा सुना हुआ रहस्य मिथ्या हो सकता है ?

(५)

प्रातःकाल नित्य-कृत्य से निवृत्त होकर राम तपोधनियों

को प्रणाम करने के लिए मण्डप मे गये। परन्तु गत दिवस की घटना से वे विस्मित और चिन्तित थे।

राम जब इस प्रकार चिन्तित थे तब कौशिक ने उनमे सिंहासन पर बैठने को कहा। कौशिक ने सीता के विषय में इनका अभिप्राय जानना चाहा। अत वह राम से कहने लगा—सिंहासन के ये सिंह अधिक भार उठाने से परिश्रान्त हुए के समान, मुख-द्वार से निकले हुए मोतियो की माला के व्याज से झाग निकाल रहे हैं। मैं समझता हूँ कि भुजाओं से पृथ्वी को और हृदय मे पृथ्वी की पुत्री सीता का उठाये रहने से आप अधिक भारी हो गये है।

राम समझ गये कि सीता का प्रसग छेडकर यह कुछ जानना चाहता है। यह बाल-सखा है, सो इसमे मैं सब वृत्तान्त कहे देता हूँ। वे कहने लगे—मित्र! मै निरन्तर सीता को स्मरण करता रहता हूँ।

कौशिक—दोष के कारण या गुण के कारण?

राम—न दोष से, न गुण से।

इस उत्तर से विस्मित होकर कौशिक ने पूछा—इन दोनों को छोडकर स्त्रियाँ कैसे स्मरण की जा सकती हैं?

राम—अन्य मनुष्यों का प्रेमावेश कारण पर आश्रित रहता है, परन्तु राम और सीता में यह बात नहीं है। सुख-दुःख में भी तिरोहित न होने से दोष और गुण की अपेक्षा न

करनेवाला मेरा स्वाभाविक प्रेम-बन्धन मेरी आत्मा के समान सीता पर चिरकाल से अप्रकट बना रहा है।

कौशिक—मित्र! कुसुम-कोमल वैदेही को झूठे मधुर वचनों से आप मेरे सामने न ठगें। आप ही देखें सीता के विना

राम—यह विचार ठीक नहीं है कि मैं एकान्त में सीता के प्रति उदासीन हूँ। मेरा प्रेम बाहर से कर्कश है, परन्तु भीतर से राग-अनुराग से लिप्त, कठिन मृणाल के कोमल तन्तुओं के समान, गुप्त है।

राम ने यह विषय दोनों के लिए दुखदायी समझकर कौशिक को, बाहर द्वारपालो को यह सन्देश दे आने के लिए, भेजा कि तपस्वियो के आने का समय हो गया है, जो आना चाहें उन्हें यहाँ सादर ले आवें।

कौशिक बाहर जाकर शीघ्र ही लौट आया और राम से बोला कि अपनी कला दिखाने के लिए बाहर दो तापस-कुमार आये है। उनका रङ्ग स्निग्ध श्याम है, उनके शरीर मे तरुणता प्रकट नहीं हुई है, बाल्यावस्था के रूप लावण्य के कारण वे कामदेव के पुत्रों के समान है, वे आकार में ऊँचे, स्वभाव से निरालस्य, स्फूर्तिमान्, बली, अत्यन्त धीर और ललित तथा उदार हैं।

यह वर्णन सुनकर राम ने पूछा—तो मेरे पास आने में क्या बाधा है?

कौशिक ने कहा कि कुतूहल उत्पन्न करनेवाले इन दोनों कुमारों का परिचय पहले सुन लो। ये दोनों भगवान् वाल्मीकि के शिष्य हैं। वीणा बजाने में अति प्रवीण हैं। उन्होंने कहा है कि महर्षि की यह आज्ञा है—कठिन विन्यासवाली, महाकवि की बनाई हुई, महापुरुष के चरित्र की रचना को वीणा की तन्त्रियों के रस में अनुविद्ध करके गाना। वह रचना महान् अर्थ से गम्भीर है, उसे पहले किसी ने नहीं सुना है, उसका प्रत्येक अक्षर योग-द्वारा विरचित है और गान्धर्व वेद के सवाद से सरस है। यह रचना सुनकर सङ्गीत-कला मे विशेष प्रसन्न हुआ राजा जो करे सो जानना।

राम ने उनके कथन को विद्याभिमान और वीरता के गर्व से भरा हुआ जाना। उन्हे शीघ्र बुला लाने के लिए मित्र कौशिक से इसलिए कहा कि ऐसा न हो कि अधिक समय तक खड़े रहने से वे आत्मग्लानि के कारण लौट जायँ।

कौशिक—इसमे आत्मग्लानि कैसी। परस्पर प्रेम, आकार की एकरूपता और जटा-जूट से भूपित मुख को देखकर जैसे महाराज दशरथ के जीवन-काल में राम लक्ष्मण राजधानी को अलङ्कृत करते थे वैसे ही आपके बालभाव और महाराज को स्मरण कर साश्रु नयनोंवाले सोविदल्ल बातचीत में उन्हें लगाये हुए खड़े हैं।

राम को यह सुनकर और भी अचम्भा हुआ कि उनकी आकृति हमारे बाल्यकाल के सदृश है। उन्हें देखने के लिए

कुतूहल बढने लगा। उन्हें शीघ्र बुला भेजा। कौशिक उन्हे साथ ले आया।

उन तापस-कुमारों को देखकर राम अपने आपको भूल गये। हृदय में भय, हर्ष, शोक, दया आदि भावों के सम्मिश्रण से उनकी विचित्र अवस्था हो गई। उन्हें मूर्च्छा-सी आने लगी। आँखों से आँसू निकलने लगे।

इधर राम की ओर जैसे-जैसे कुश बढने लगे वैसे-वैसे, हृदय के कम्पित करनेवाले भय से, अङ्गों पर से उनका वश जाता रहा। आत्माभिमान उनसे पृथक् होने लगा। राम के सामने बिना सिर झुकाये खडे रहना उनके लिए कठिन हो गया। कुश ने राम के आगे सिर झुका ही दिया। तब लव ने भी, भाई की तरह प्रभावित होकर, राम को प्रणाम किया।

उन्हे प्रणाम करते देखकर राम को, मर्यादा-भङ्ग होने से, दुःख हुआ। प्रणाम के उत्तर में उन्होंने कहा—मेरी आज्ञा से यह प्रणाम आपके गुरु के ही चरणों में अर्पित हो।

अब कुश और लव ने राम से कुशल पूछी। राम ने कहा—आपके दर्शन-मात्र से कुशल है।

राम ने उन्हे हृदय से लगा लिया। मन प्रफुल्लित हो गया। दोनों को आधे सिंहासन पर बैठा लिया। जब कुमारों ने सिंहासन पर बैठने में आशका की तब राम ने दोनों को गोद में बैठा लिया। आँखों में आँसू उमड आये।

उन्हें फिर छाती से लगाकर राम पूछने लगे—कौशिक, सीता को निर्वासित किये कितने वर्ष हुए ?

कौशिक ने कुछ सोचकर कहा—यह दसवाँ वर्ष है ।

राम ने कुमारों को देखकर कहा कि यदि प्रसव सकुशल हुआ हो और यदि उसकी सन्तान जीवित हो तो उसकी इस समय इतनी ही आयु होगी । यह विचार आने से कौशिक और राम दोनों को असह्य वेदना पीडित करने लगी । राम, कुमारों को छाती से लगाकर, रोने लगे ।

इस समय कौशिक सहसा स्तब्ध होकर बोल उठा—हाय ! तपस्वी-कुमारों को छोडिए, ये जीवित रहें । सिंहासन से नीचे उतर आवें ।

राम ने कुमारों को छोड दिया और कौशिक से ऐसा कहने का कारण पूछा । कौशिक ने बताया कि अयोध्या के रहनेवाले वृद्ध पुरुषों से मैंने सुना है कि इस सिंहासन पर रघु-वंशियों के अतिरिक्त जो चढता है उसके सिर के सैकडों टुकडे हो जाते हैं ।

अब राम ने बालकों को शीघ्र नीचे उतार दिया और उनसे पूछा—तुम स्वस्थ हो न ?

कुश-लव—हम तो स्वस्थ हैं । हमारे सिरों में कुछ भी विकार नहीं है ।

कौशिक इससे आश्चर्य करने लगा । परन्तु राम ने कहा—इसमें आश्चर्य क्या ? तपस्वियों के शरीर स्वस्त्ययन-युक्त होते हैं ।

राम ने फिर कुमारों की सुन्दरता से बढ़े हुए कुतूहल के कारण उनसे पूछा—तुमने अपने जन्म और दीक्षा से किस वर्ण और आश्रम को अलंकृत किया है ?

लव—मेरा दूसरा वर्ण और पहला आश्रम है।

राम को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि ये ब्राह्मण नहीं हैं। अतएव उन्होंने सोचा कि इनके प्रणाम करने से उन्हें कुछ दोष नहीं लगा। उन्होंने कुमारों से फिर पूछा—क्षत्रियकुलों के पितामह सूर्य और चन्द्र में से तुम्हारे वंश का कर्त्ता कौन है ?

लव—सूर्यदेव।

राम—कुल तो हमारे समान है।

कौशिक—क्या दोनों का एक ही उत्तर है ?

लव—हाँ, हम सहोदर भाई हैं।

राम—आकृति तो समान है। क्या आयु में कुछ अन्तर नहीं है ?

लव—हम यमज हैं।

राम—तुम दोनों में से ज्येष्ठ कौन है और क्या नाम है ?

लव ने कुश की ओर सङ्केत किया और दोनों ने नाम बताये।

राम—आपके गुरु का नाम क्या है ?

लव—भगवान् वाल्मीकि हमारे गुरु हैं।

राम—किस सम्बन्ध से ?

लव—उपनयन सम्बन्ध से।

राम—मै तुम्हारे शरीर के धाता (पिता) का नाम जानना चाहता हूँ।

लव—मैं उनका नाम नहीं जानता। कोई भी इस तपोवन मे उनका नाम नहीं लेता।

परन्तु कुश ने कहा—मैं उनका नाम जानता हूँ। उनका नाम 'निर्दय' है। माता उन्हें इसी नाम से पुकारती है।

राम को इस नाम से आश्चर्य्य हुआ। कौशिक ने कुश से पूछा—क्या क्रोध मे आकर वे ऐसा कहती हैं या साधारण दशा में भी ?

कुश—यदि बालभाव के कारण हममे कोई दोष देखती हैं तो इस प्रकार ताना दिया करती हैं "निर्दय के पुत्रो! चपलता मत करो।"

अब कौशिक ने कहा—इनके पिता का नाम यदि 'निर्दय' है तो उसने इनकी माता का या तो अपमान किया होगा अथवा उसे निर्वासित किया होगा। उस 'निर्दय' का कुछ करने मे असमर्थ हो इसी वचन से वह इन कुमारों का शासन करती होगी।

राम भी इस पर सहमत हुए। परन्तु उन्हें अपने ऊपर ग्लानि हुई। वे कहने लगे कि मुझे धिक्कार है। वह तपस्विनी मेरे अपराध के कारण अपने पुत्रों की इस प्रकार क्रोधपूर्ण वचनों से भर्त्सना करती है। इस विचार में राम की आँखें भर आई। वे कुमारों से पूछने लगे—वह 'निर्दय' क्या तुम्हारे पास, आश्रम में, है ?

लव—नहीं।

राम—क्या उसके विषय में कुछ सुना जाता है?

लव चुप रहा। कुश ने कहा—हमने अब तक उसके चरणों में नमस्कार नहीं किया। माता की वेणी उसका जीवित होना बताती है।

राम को अब इनकी माता का नाम जानने की इच्छा हुई, परन्तु उन्होंने स्त्री के सम्बन्ध में, विशेषकर तपोवन में, प्रश्न करना उचित न समझा। उन्होंने कौशिक से पूछने को कहा।

कौशिक—तुम्हारी माता का क्या नाम है?

लव—उनके दो नाम हैं। तपस्वी लोग उन्हें देवी कहते हैं और भगवान् वाल्मीकि वधू।

यह सब सुनकर राम ने सोचा कि इन कुमारों का और हमारे कुटुम्ब का वृत्तान्त एक-सा है। ऐसा सोचकर वे व्याकुल हो गये। परन्तु जब कौशिक ने पूछा कि क्या आप इन्हें सीता के पुत्र समझते हैं तब राम यह कह न सके। वे किसी तपस्विनी के साथ ऐसा सम्बन्ध जोड़ना ठीक नहीं समझते थे। किन्तु इन युगल-कुमारों ने आयु, कुल, वर्ण, उन्नत शरीर और इस विपदा से मैथिली के पुत्रों की सम्भावना को खड़ा करके राम को अति व्याकुल कर दिया।

कुमारों ने अब कविता गान का कार्य आरम्भ करना चाहा। राम ने यह सोचकर कि मानव जाति के लिए सरस्वती देवी की अपूर्व रचना है, इसे अपने मित्र सभासद्

आदि के साथ सुनना चाहा। उन्होंने लक्ष्मण को अपने पास बुला भेजा। उसके लिए प्रबन्ध होने लगा। राम स्वयं जरा टहल कर चिरकाल आसन पर बैठने से टाँगों की थकावट हटाने लगे।

(६)

कौशिक-द्वारा राम की आज्ञा पाकर कञ्चुकी ने सभा-मण्डप में सबके बैठने का प्रबन्ध कर दिया। सब रघुवंशी नगर-निवासी और ग्राम-निवासी उपस्थित हो गये। परदे के भीतर महाराज की तीनों माताएँ और तीनों छोटे भाइयों की बहुएँ भी बैठी थीं। राम ने कुश-लव से गान आरम्भ करने को कहा।

कुश-लव—पाणिग्रहण किया दशरथ ने धर्मरूप से कर स्वीकार।
कौशल्या कैकेयि सुमित्रा मध्यमागिनी अति सुकुमार॥

यह सुनकर राम-लक्ष्मण प्रसन्न हुए कि कवि ने पिता को ही कथा का नायक बनाया है।

कुश-लव—कौशल्या से हुए राम अरु कैकेयी से भरत महान।
लक्ष्मण और शत्रुघ्न कुँवर दो हुए सुमित्रा के मतिमान॥
सीता ब्याही गई राम से लक्ष्मणोर्मिला का उद्वाह।
भूप कुशध्वज-कन्याओं से हुआ भरत-शत्रुघ्न विवाह॥
शैशव-यौवन सन्धि स्थित वे वर्त्तमान नृप राजकुमार।
तरुणीभोगोत्कण्ठा नव में उन्हें नहीं अनर्थ विचार॥

लक्ष्मण—वाह! वाह!

राम—विलंब न करो, गाओ —

श्वेत हुए थे केश पिता के, काकपक्षधारी थे हम।
थे तब सब साकेत नगर में जुटने भर के थे उस दम॥

कुश लव—सिंहासन पर रामचन्द्र का हुआ बैठने का जब साज।
मामा के घर गये हुए थे भरत कुँवर करने कुछ काज॥

अब राम ने मन में सोचा कि माता कैकेयी की निन्दा यहाँ अवश्य होगी। इस कारण इस प्रसङ्ग को छोड़कर उन्होंने सीता-हरण से गाने को कहा।

कुश लव—शूर्पणखा से सुन रावण ने सीता का सौन्दर्य स्वरूप।
थी उनकी सदेह की चोरी रक्षित रम्य चारित्र्य अनूप॥

यह सुनकर लक्ष्मण ने राम की ओर देखा।

कुश लव—पुल बाँध वारिधि, मार रावण युद्ध के संघर्ष से।
प्राप्त की सीता, पुन लौटे अयोध्या हर्ष से॥

राम—अहो, कैसा सक्षेप है।

कुश लव—राज्य प्राप्त कर राम ने सुना प्रजा उपहास।
लक्ष्मण द्वारा दे दिया सीता को वनवास॥

भीगा हुआ आँसुओं से मुख उस अनाथ माता का था।
राघव कुल सन्तति धारण से गर्भवास वह नाका था॥

लौटे लक्ष्मण छोड़कर निर्जन वन को जान।
हिंस्र जन्तुओं से भरा था वह प्रान्त महान॥

लक्ष्मण—अहो अपयश का भागी मैं ही हुआ।

राम—तुम्हारा इसमें क्या अपराध है ? ये काम तो मेरे समझे जाते हैं।

कुश-लव—बस, गान तो इतना ही हैं। इसके आगे निराश सीता के प्राण-त्याग का वर्णन है। अत अप्रिय कथा के भय से कवि ने कथा समाप्त कर दी है।

कुश ने इन दोनों को सीता सम्बन्धी कथा से अत्यन्त दुःखी देखकर लक्ष्मण से पूछा—आप क्या रामायण की कथा के नायक राम-लक्ष्मण हैं ?

लक्ष्मण—हाँ, हमी दुःख के भागी हैं।

कुश—क्या आप ही सीता को ले गये थे ?

लक्ष्मण ने लज्जित होकर कहा—हाँ।

कुश—सीता क्या राम की धर्मपत्नी हैं ?

लक्ष्मण—इसमें क्या सन्देह ?

राम ने अब कुमारों से पूछा—तुमने यहीं तक पढ़ा है अथवा कथा ही समाप्त हो गई ?

कुश—हम नहीं जानते।

राम ने अब कण्व से पूछना चाहा। उन्हें बुलाने के लिए लक्ष्मण को भेजा। कण्व आकर आसन पर बैठ गये। "लौटा लक्ष्मण छोड़कर" के आगे गाना आरम्भ किया—

कण्व—शिष्यों से सीता की गाथा सुनके वाल्मीकि मुनिनाथ।
आश्वासन दे चले तपोवन जनक नन्दिनी को ले साथ॥

यह जानकर कि उन्हें वाल्मीकि महर्षि अपने आश्रम में ले

गगे, राम बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—महर्षि ने रघु-कुल पर अनुग्रह किया। उन्होंने मुझे उबार लिया।

कुश-लव भी यह जानकर प्रसन्न हुए कि सीता सकुशल हैं। कुश ने लव से पूछा—भाई! वाल्मीकि के तपोवन में वह सीता कौन है?

लव—कोई भी नहीं, कविता की सीता के तो नाम के अक्षर मात्र ही अवशिष्ट रह गये हैं।

राम ने कण्व से पूछा—फिर क्या हुआ?

कण्व—यथासमय सीता से जन्मे दो सुत तभी एक ही काल।
चन्द्र सूर्य पैदा होते हैं जैसे नभ में विशद विशाल॥

लक्ष्मण ने यह सुनकर राम को पुत्र जन्म पर बधाई दी। उन्हें रघुकुल की वृद्धि से हर्ष हुआ। कुश लव ने भी राम को पुत्र-जन्म पर बधाई दी। राम ने मन में कहा कि कदाचित् ये बालक कुश-लव ही हों।

कण्व—फिर करके विधिवत् जातकर्म, समयानुसार सब मान क्रम।
फिर किया नाम का संस्कार, आहूत हुए कुश लव कुमार॥

अब तो सब रहस्य खुल गया। राम ने जान लिया कि ये ही सीता के पुत्र हैं। वे "हा पुत्र कुश! हा पुत्र लव!" पुकारने लगे। लक्ष्मण को भी यह जानकर हर्ष हुआ कि ये सीता-राम की ही सन्तान हैं। कुश लव भी अचम्भे में आ गये। राम ने उन्हें हृदय से लगा लिया और सब मूर्च्छित हो गये। लक्ष्मण भी सचेत न रह सके।

इन्हे मूर्च्छित देखकर कण्व व्याकुल हो गये। उन्होंने सोचा कि कहीं चारों रघुवीरों ने देह न छोड़ दी हो। परन्तु उनके श्वास की गति देखने से कुछ धैर्य हुआ। वे वाल्मीकि और सीता को शीघ्र बुला लाये।

वाल्मीकि ने सीता से कहा—जल्दी करो। विना उपाय की गई मूर्च्छा मृत्यु मे परिणत हो सकती है।

सीता को यह वचन सुनकर अधीरता हुई परन्तु वाल्मीकि ने बताया कि श्वास चल रहा है ये जीवित हैं।

वाल्मीकि ने अब सीता को राम पर दृष्टि डालने को कहा।

सीता ने लज्जा के साथ वाल्मीकि से कहा—भगवन्! उनकी आज्ञा है कि मैं उनके सामने न आऊँ।

वाल्मीकि—मेरी उपस्थिति मे अनुमति देने या रोकनेवाला कौन है। जाओ, मैने तुम्हें उनका देखने की अनुमति दे दी, अपने स्वामी के पास निःशङ्क होकर जाओ।

राम की दशा देखने से सीता को शोक हुआ। वे भूमि पर गिरकर रोने लगीं।

वाल्मीकि ने उन्हे धैर्य रखने को कहा। फिर ऋषि ने राम और लक्ष्मण को तथा सीता ने कुश और लव को सचेत किया।

राम ने सचेत होकर कण्व से पूछा—क्या वैदेही जीवित हैं?

वाल्मीकि—सामने ही तो है।

सीता को देखकर राम लज्जित हो गये।

लक्ष्मण ने स्थिर होकर पूछा—भाई, क्या सचेत हो गये?

राम—मैं अभागा स्थिर हो गया हूँ।

कुश और लव ने स्थिर होकर राम के पैर छुए। राम ने दोनों को हृदय से लगाकर शान्त किया। दोनों कुमार आँसू पोछकर खड़े हो गये।

सीता एक ओर मुँह किये खड़ी थीं। उन्हें ऐसे देखकर राम ने कहा—ओह! सीता की उदासीनता तो देखो कि चिरकाल के बाद हमसे मिलकर इधर मुख नहीं करतीं।

इस पर वाल्मीकि ने सक्रोध कहा—हे महाकुलीन विवेकशील राजन्! कुश लव की माता, भगवती पृथ्वी की पुत्री देवी सीता को, केवल लोकापवाद सुनकर, निर्वासित कर देना क्या उचित था? जनक ने सीता का दान किया और दशरथ ने उस दान की स्वीकृति दी थी, अरुन्धती ने सीता के लिए मङ्गल-विधान किया था, मैंने उनके चरित्र का विशुद्ध बताया था और अग्नि ने उसकी शुद्धता का अनुमोदन किया था।

राम ने व्याकुलता प्रकट की।

वाल्मीकि ने फिर कहा—लक्ष्मण! क्या यह ठीक था? अथवा तुम्हें क्या उलहना दूँ, क्योंकि तुम तो छोटे हो, आज्ञापालन ही तुम्हारा धर्म है।

मुनि ने अब राम से कहा—रावण के वध के पश्चात्

तुमने सीता के ग्रहण के लिए, किस देवता को प्रमाण माना था ?

राम—अग्निदेव को ।

वाल्मीकि—तो उनमें अविश्वास करने का कारण ?

राम से इस प्रकार प्रश्न होते सुनकर सीता ने कहा—शोक ! मुझ अभागिनी के लिए महाराज का तिरस्कार किया जा रहा है ।

वाल्मीकि ने फिर कहा—कुश लव की माता के चरित्र के साक्ष्य के लिए अग्निदेव के नियुक्त किये जाने पर भी तुमने निराधार लोकापवाद को हृदय में स्थान दिया ?

राम ने हाथ से महर्षि को छुआ ।

वाल्मीकि—मुझे हाथ से क्यों रोकते हो ? सिर खुजलाने से क्या ? कुश-लव को स्वीकार करो । हम अपने आश्रम को जाते हैं ।

वाल्मीकि ने अब सीता से कहा—वैदेही ! तपस्वियों को भी राजा दण्ड दे सकता है । तुम अपनी आत्मा की परिशुद्धि करो, विकार के उचित प्रतिकार की घोषणा करो ।

सीता ने हाथ जोड़कर कहा—सब लोकपाल, आकाशगामी देवता गन्धर्व, सिद्ध विद्याधर अपने प्रभाव से स्वर्गलोक के रहस्य को प्रत्यक्ष करनेवाले वाल्मीकि विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि श्रेष्ठ महर्षि और सबके शुभाशुभ कर्म के साक्षी—रघु-

कुल के पितामह—सूर्य भगवान् सुनें कि सीता चरित्रशुद्धि के अनन्तर इस प्रकार शपथ लेती है—

इतना कहते ही ससार के स्थावर और जङ्गम सभी जीव निःस्तब्ध हो गये। सीता कहने लगीं—देवताओ और असुरों मे भी अद्वितीय धनुर्धर रघुकुलनन्दन को छोडकर यदि मैंने और किसी को, पातिव्रत्य के विरुद्ध भाव से, देखा हो या कुछ वचन कहे हों या हृदय से चिन्ता की हो तो इस सत्य वचन से सकल लोक को प्रत्यक्ष दर्शन देती हुई दिव्य रूपवती वसुन्धरा लोक के समक्ष उसका स्पष्ट प्रमाण उपस्थित करें।

उसी समय पुष्प-वर्षा करती हुई, एक सी उज्ज्वल वेश-धारिणी स्त्रियों के साथ पृथ्वी माता प्रकट हो गई। सबने हाथ जोडकर उनका स्वागत किया।

पृथ्वी माता ने कहा—प्रतिनिवृत्ति के लिए दी हुई पति व्रताओं की आज्ञा अनुल्लङ्घनीय है। मैं यहाँ सीता के कारण ही प्रकट हुई हूँ। सब ऋषि, दानव, सिद्ध, यक्ष गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य और लोकपाल क्षण भर ध्यान से सुनें। दशरथ के पुत्र राम को छोडकर सीता ने मन से भी पर-पुरुष का ध्यान नहीं किया। सब लोग इसे जान लें।

इसी समय आकाश से पुष्प वृष्टि हुई और बाजे बजने लगे। सबको असीम हर्ष और विस्मय हुआ। सबने हाथ जोडकर कहा—यह अलौकिक जोडी फिर मिल जाय।

प्रतिभाशाली व्यक्ति समझा। अनसूया ने पूछा—श्रीमान् किस राज-वंश के भूषण हैं और अधिक सुकुमार होकर भी तपोवन के परिश्रम में शरीर को क्यो श्रान्त कर रहे हैं ?

उत्तर सुनने के लिए शकुन्तला का भी हृदय उत्सुक हुआ।

दुष्यन्त अपना परिचय नहीं देना चाहते थे। अत उन्होंने कहा—देवी! मुझे पौरव राजा ने धर्माधिकार में नियुक्त किया है। मैं तपोवन मे यह जानने के लिए आया हूँ कि यज्ञ आदि मे कोई बाधा तो नहीं होती।

इस पर अनसूया ने कहा—हम धर्मचारी अब सनाथ हुए।

अब सखियो ने आपस मे कहा—यदि आज यहाँ पिता होते तो जीवन-सर्वस्व से भी इस विशेष अतिथि को कृतार्थ करते।

यह सुनकर शकुन्तला ने कृत्रिम क्रोध से कहा—हटो, तुम न जाने हृदय मे क्या विचार कर ऐसा कह रही हो। मैं तुम्हारी बात नहीं सुनती।

अब राजा ने शकुन्तला के विषय मे पूछा—ऐसा प्रसिद्ध है कि भगवान् काश्यप सदा से तपस्या में स्थित हैं, फिर यह तुम्हारी सखी उनकी कन्या कैसे हुई ?

अनसूया—सुनिए, कौशिक गोत्र के एक महाप्रतापी राजर्षि हुए हैं। एक बार उनके उग्र तप से शङ्कित होकर देवताओं ने, उनके तपोभङ्ग के लिए, मेनका नाम की अप्सरा भेजी। उसी से हमारी सखी की उत्पत्ति हुई है। इस परित्यक्त कन्या का पालन करने के कारण तात काश्यप इसके पिता हैं।

अब तो दुष्यन्त को अपने मनोरथ के लिए अवकाश मिला। उन्होंने पूछा—यह मृगाक्षी पाणिग्रहण तक ही तपस्या के व्रत का पालन करेगी अथवा जीवन-पर्यन्त हरिणियों के साथ ही रहेगी ?

प्रियवदा—महाराज। यह कन्या धर्माचरण में भी परवश है। इसके पिता की इच्छा इसे योग्य वर को सौंपने की है।

दुष्यन्त ने मन में कहा कि तब तो यह दुर्लभ नहीं है। अब मनोरथ की पूर्ति में कोई विघ्न नहीं रहा। यह रत्न, जिसे अग्नि समझकर मेरा हृदय भयभीत हो रहा था, मेरे स्पर्श करने योग्य है।

यह वार्त्तालाप सुनकर शकुन्तला क्रोधित होकर जाने लगी। अनसूया के कारण पूछने पर शकुन्तला ने कहा—मैं जाकर असम्बद्ध प्रलाप करनेवाली प्रियवदा की बातें माता गौतमी से कहे देती हूँ।

अनसूया ने उसे रोककर कहा—तुम्हें अतिथिविशेष का सत्कार किये बिना ही जाना उचित नहीं।

अब शकुन्तला जाने लगी। राजा उसे पकड़ना चाहते थे परन्तु ऐसा कर नहीं सकते थे। प्रियवदा ने शकुन्तला को रोककर कहा—तुम्हें जाना उचित नहीं।

शकुन्तला—क्यों ?

"तुम्हें मेरे दो वृक्ष सींचने हैं। आओ, इस ऋण से उऋण होकर जाना।" ऐसा कहकर प्रियवदा ने शकुन्तला को बलपूर्वक रोक लिया।

"यह तो वृक्षों के सींचने से परिश्रान्त हुई दीख पडती है, सो मैं इसका ऋण चुकाये देता हूँ।" ऐसा कहकर दुष्यन्त ने अपनी अँगूठी उतारकर दे दी।

उस पर अङ्कित नाम पढकर दोनों सखियाँ विस्मित हो गईं।

राजा ने उनका भाव समझकर कहा—कुछ और मत सोचो। यह राजा का उपहार है।

अब प्रियवदा ने कहा—राजा का उपहार होने के कारण आपको यह अँगूठी देना उचित नहीं। यह तो आपके वचन से ही उऋण हो गई। फिर उसने कुछ हँसकर कहा—सखी शकुन्तला। इस महानुभाव अथवा महाराज के अनुग्रह से तुम उऋण हो गई हो। अब जा सकती हो।

परन्तु शकुन्तला का मन जाने को नहीं चाहता था। उसके उत्तर मे, उसने मन मे कहा कि "यदि मैं अपनी स्वामिनी होऊँ।" फिर स्पष्ट रूप से कहा—मुक्त करनेवाली या रोकनेवाली तुम कौन हो?

राजा अब शकुन्तला की ओर देखकर सोचने लगे कि जैसे मेरा मन इसकी ओर आकृष्ट है वैसे ही क्या इसका मन भी मेरी ओर अनुरक्त होगा? राजा ने शकुन्तला की चाल ढाल से अनुमान किया कि मेरी प्रार्थना की सफलता प्रतीत होती है।

इतने में एक ओर से शब्द आया—हे तपस्वियो। तपोवन के जीवों के पास, उनकी रक्षा के लिए, जाओ। सुना है कि मृगयाशील राजा दुष्यन्त निकट है। घोड़ों की टापों से उड़ी हुई धूल आश्रम के वृक्षों की शाखाओं पर सूखने के लिए डाले हुए, गीले वस्त्रों पर पड रही है। रथ को देखने से भयभीत हाथी तपोवन में प्रवेश कर रहा है। इसने मृगों के झुण्ड को तितर बितर कर दिया है।

यह सुनकर सब स्तब्ध हो गये। राजा को पार जनों पर शोक हुआ, जिन्होंने तपोवन में आकर शान्ति भङ्ग कर दी। कन्याएँ भयभीत होकर कुटी को जाने लगीं। उन्हें कुटी में जाने की अनुमति देकर दुष्यन्त आश्रम में, विघ्न के रोकने के लिए, जाने लगे। सखियों ने पुनर्दर्शन की प्रार्थना की।

चलते समय शकुन्तला ने सखी से कहा—अनसूया! मेरे पैर में नवीन कुश का काँटा चुभ गया है और वस्त्र कुरबक की शाखा में उलझ गया है। सो जब तक मैं इसे मुक्त करती हूँ, मेरी प्रतीक्षा करो।

अब शकुन्तला राजा की ओर देखती हुई, बहाने से विलम्ब करके सखियों के साथ चली गई।

दुष्यन्त को भी अब नगर की ओर जाने की इच्छा न थी। उसने अपने अनुचरों का डेरा, तपोवन के समीप, डलवाने का विचार किया।

राजा का मित्र माढव्य मृगयाशील राजा से व्याकुल हो उठा। वह सोचने लगा कि मध्याह्न में भी ग्रीष्म के कारण विरल छायावाले वृक्षों के बीच भ्रमण करना पडता है। पहाडी नदियों का, पत्तों के मिलने से कडुवा, जल पीना पडता है। उपयुक्त भोजन भी नहीं मिलता। रात्रि मे निद्रा पूर्ण नहीं होती तभी, प्रात काल से पहले ही, मृगया मे राजा के साथ जाने के लिए मुझे दासीपुत्र उठा देते है। फिर व्रण पर कॉटे ये कि कल जब हम लोग पीछे रह गये थे तब महाराज ने मृग का अनुसरण करते हुए आश्रम में प्रवेश कर तपस्वी की कन्या शकुन्तला को दुर्भाग्य से देख लिया। अब नगर की ओर जाने के लिए किसी प्रकार उनका मन ही नहीं करता। क्या करूँ ?

माढव्य इस प्रकार चिन्ता कर रहा था कि शकुन्तला का चिन्तन करते हुए राजा दुष्यन्त, धनुर्धारिणी यवन-स्त्रियों के साथ, वहाँ आ गये।

माढव्य ने राजा से कहा—मित्र। मेरा हाथ नहीं उठता। सो शब्दों मे ही तुम्हारा स्वागत करता हूँ, जय हो।

राजा—गात्रोपघात कब मे हुआ ?

माढव्य—स्वय ही तो आँखें दुखाकर अब आँसुओं का कारण पूछते हो।

राजा ने स्पष्ट रूप से सब वृत्तान्त कहने के लिए कहा।

माढव्य कहने लगा—इस प्रकार राजकाज छोडकर ऐसे
यङ्कर और निर्जन प्रदेश में आखेट की वृत्ति से तुम रहा
रोगे। मैं सत्य कहता हूँ कि प्रतिदिन हिंसक पशुओं का
नुसरण करते करते मेरे अङ्ग वश में नहीं रहे। सो मुझ
पर कृपा करो। एक दिन तो विश्राम कर लेने दो।

दुष्यन्त ने सोचा कि यह तो ऐसा कहता है। मेरा
भी चित्त काश्यप की कन्या का स्मरण कर आखेट से निरु
त्साह हो गया है।

इसलिए माढव्य से बोले—और क्या? मेरे मित्र के वाक्य
उल्लङ्घन के योग्य नहीं हैं। लो, मैं आखेट छोडकर ठहरा जाता हूँ।

माढव्य प्रसन्न हो गया।

राजा—मित्र! ठहरो, मुझे कुछ और कहना है।
तनिक विश्राम कर लो, मेरे एक सरल कार्य में तुम्हें सहायक
होना होगा।

माढव्य—क्या लड्डू खाने में? तब तो मुझ पर तुम्हारी
बडी कृपा हुई।

राजा—जो कहना है, अभी कहता हूँ।

राजा ने सेनापति को बुलाकर कहा—मृगया के विरोधी
माढव्य ने मेरा उत्साह मन्द कर दिया है।

सेनापति—माढव्य तो ऐसे ही बका करता है। मृगया
से शरीर को कई लाभ होते हैं। चर्बी कम हो जाने से पेट

हलका हो जाता है और शरीर प्रत्येक कार्य के लिए योग्य बन जाता है। जन्तुओं के भी भय-क्रोध-पूर्ण विकारयुक्त चित्त देखने में आते हैं। धनुर्धरों की निपुणता यह है कि भागते हुओं पर उनके बाण सफल होते हैं। मृगया को लोग बिना कारण ही बुरा कहते हैं। ऐसा मनोविनोद और कहाँ प्राप्त हो सकता है?

परन्तु राजा ने तपोवन निकट होने के कारण मृगया बन्द करना ही उचित समझा। उन्होंने सेनापति को आज्ञा दी कि आगे गये हुए वन के घेरनेवालों को वापिस बुला लो।

आज्ञा-पालन के लिए सेनापति चला गया।

अब दुष्यन्त और माढव्य वृक्ष की छाया में, शिला-तल पर, बैठ गये। दुष्यन्त ने शकुन्तला का प्रसङ्ग छेड़ा। उन्होंने मित्र से कहा—माढव्य! यदि तुमने दर्शनीय पदार्थ नहीं देखा तो तुम्हें आँखों का फल नहीं मिला।

माढव्य—तुम तो मेरे सामने ही रहते हो।

दुष्यन्त—अपने को सभी सुन्दर कहते हैं। मैं तो तुमसे आश्रम के रत्न—शकुन्तला—के विषय में कहता हूँ।

माढव्य ने सोचा कि मैं राजा को इस बात का अवसर न दूँगा। अतः अब उसने कहा—मित्र! क्या एक तपस्वी की कन्या तुम्हारी इच्छा के योग्य है?

दुष्यन्त—मित्र! त्याज्य वस्तु पर पौरवों का मन नहीं जाता। सुना है कि वह मुनि-कन्या अप्सरा से उत्पन्न है।

माता से त्यक्त होने पर वह मुनि को प्राप्त हुई है मानों चमेली का पुष्प, शिथिल होकर, अर्क-वृक्ष पर गिरा हो।

माढव्य ने हँसकर कहा—जैसे किसी की अभिलाषा खजूरों से हटकर इमली में लगी हो, वैसे स्त्री-रत्नों के भोगी होते हुए यह तुम्हारी इच्छा है।

दुष्यन्त—तुमने उसे नहीं देखा, इसी से ऐसा कहते हो। वह तो विधाता की रची हुई, रूप-लावण्य की, विलक्षण सजीव प्रतिमा है।

दुष्यन्त से माढव्य ने अब उसे शीघ्र प्राप्त करने को इसलिए कहा कि कहीं वह, इगुदी के तेल से चिकने सिरवाले, किसी तपस्वी के हाथ न पड जाय। परन्तु दुष्यन्त ने बताया कि वह परवश है, उसका पिता यहाँ नहीं है।

माढव्य—आपके प्रति उसकी अनुराग-दृष्टि कैसी है?

दुष्यन्त—तपस्वी की कन्या स्वभाव से ही लज्जाशील होती है, तथापि उसने मुस्कराकर मेरी ओर देखा था। पुन उसके लज्जाशील होने पर भी चलते समय उसका भाव प्रकट हो गया। कुछ पद ही चलकर, दर्भ के अङ्कुर से पैर छिलने के बहाने, वह सुदमाङ्गी ठहर गई और वृक्षों की शाखाओं में उलझे वल्कल-वस्त्र को सुलझाती हुई मुख मोडे खडी रही।

माढव्य—मित्र! तब तो अपने लिए खाद्य-सामग्री और एकत्र कर लो। यह तपोवन उपवन दिखाई देता है।

दोनों में इस प्रकार वार्त्तालाप हो रहा था कि दो ऋषि-कुमारों ने आकर निवेदन किया—महाराज ! आश्रमवासी आपसे प्रार्थना करते हैं कि भगवान् महर्षि कण्व के न होने से राक्षस हमारे यज्ञ में विघ्न डालते हैं। सो आप कुछ दिन, सारथी सहित, इस आश्रम को सनाथ करें।

दुष्यन्त ने यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली। माढव्य ने धीरे से राजा से कहा—अब यह गलहस्त तुम्हारे अनुकूल है।

राजा ने मुस्कराकर द्वारपाल रैवतक को आदेश दिया—मेरी ओर से सारथी से कहो कि रथ में धनुष बाण रखकर ले आये।

दोनों ऋषि कुमार प्रसन्न हो गये। राजा ने उनसे कहा—आप लोग चलें मैं भी आपके पीछे-पीछे आता हूँ।

रथ सज्जित हो गया। परन्तु इसी समय राजमाता की कोई आज्ञा लेकर नगर से एक दूत आ गया। उसने निवेदन किया—महाराज ! माता ने आज्ञा दी है कि आज से चौथे दिन पुत्र पिण्ड पालन नाम का व्रत होगा। उस समय तुम अवश्य आकर हमको प्रसन्न करो।

दुष्यन्त—इधर तपस्वियों का कार्य, उधर गुरुजनों की आज्ञा। दोनों ही कार्य अनुल्लङ्घनीय हैं। अब क्या करना चाहिए ?

फिर कुछ विचार कर राजा ने कहा—मित्र माढव्य ! माताजी तुम्हें पुत्रवत् मानती हैं। सो तुम्हीं यहाँ से लौटकर,

तपस्वियों के कार्य में व्यग्र, मेरा निवेदन कर माता के पुत्रोचित कार्य का अनुष्ठान करो।

माढव्य ने भी यह स्वीकार कर लिया। परन्तु दुष्यन्त का शीघ्र ही एक और विचार आया। उन्होंने सोचा कि यह चञ्चल है। जाकर कहीं हमारे प्रेम का वृत्तान्त अन्त पुर मे न कह दे। अतएव उससे कह दिया—मित्र। मैं ऋषियो के गौरव से आश्रम में ठहरा हुआ हूँ। तपस्वी की कन्या पर मेरा प्रेम तिल भर भी नहीं। कहाँ तो मैं और कहाँ वह प्रेम व्यवहार मे अनभिज्ञ, मृगों के साथ पली हुई, कन्या ? मैंने परिहास मे जो जल्पना की है उसे सच मत समझ लेना।

माढव्य ने भी "अच्छा" कहकर राजा का कहना स्वीकार कर लिया।

(३)

महानुभाव राजा दुष्यन्त के प्रवेश मात्र में ऋषियो के सब धर्म-कार्य निर्विघ्न हो गये। उधर दुष्यन्त के लिए शकुन्तला चिन्तित रहने लगी। उसे सन्तप्त-हृदय जानकर सखियाँ उसके लिए उशीर का लेप और मृणाल-युक्त कमल-पत्र ले आईं। माता गौतमी के हाथ एक तपस्वी ने शान्ति जल भी भेजने को कहा।

राजा दुष्यन्त की भी ऐसी ही उत्कट दशा हो रही थी। वे सोचने लगे कि अब यज्ञकर्म समाप्त हो जाने पर, तपस्वियों से आज्ञा लेकर, मनोविनोद करूँ। उन्हें शकुन्तला के

दर्शन बिना कुछ अच्छा न लगता था। उसे ढूँढने का वि कर उन्होंने अनुमान किया कि शकुन्तला, मध्याह्न के स मालिनी नदी के तट पर लता-कुञ्ज में गई होगी।

इधर जाते हुए राजा जब बेंतो से घिरे लता-कुञ्ज के प पहुँचे तब पैर चिह्न की नई पङ्क्ति दिखाई दी। वहाँ झाँककर दे तो उनको शान्ति मिल गई। शकुन्तला पुष्पों से ढके हु शिलातल पर लेटी हुई थी। दोनों सखियाँ पङ्खा कर रही थीं।

दुष्यन्त वहाँ खड़े होकर उनका वार्त्तालाप सुनने लगे। शकुन्तला उस समय अत्यन्त व्याकुल-सी दिखाई दी। दुष्यन्त सोचने लगे कि यह ग्रीष्म का दोष है अथवा वही है जो मेरे मन में है।

उधर दोनों सखियाँ भी शकुन्तला की अवस्था पर चिन्तित थीं। प्रियंवदा ने धीरे से अनसूया से कहा—उस राजर्षि के प्रथम दर्शन से लेकर शकुन्तला उत्सुक-सी है। कदाचित् इसका यह रोग उसी निमित्त से हो।

अनसूया ने धीरे से कहा—मेरे हृदय में भी ऐसी ही शङ्का है। अच्छा, इससे पूछती हूँ।

दोनों सखियों के आग्रह करने पर शकुन्तला ने कहा—सखी। जब से वह तपोवन का रक्षक राजर्षि मेरे दृष्टि-पथ में आया है (फिर नीचा मुँह करके) तब से मन में उसके लिए अभिलाषा होने से मेरी यह अवस्था हो गई है।



पत्र लेखन

यह सुनकर दुष्यन्त प्रसन्न हो गये। वे कहने लगे—जो सुनने योग्य था वह सुन लिया।

शकुन्तला ने फिर कहा—तुम्हारी इच्छा हो तो ऐसा करो जिससे मैं उस राजर्षि की दयापात्र हो जाऊँ। अन्यथा मुझे तिलाञ्जलि दे दो।

अब दुष्यन्त का सारा सन्देह जाता रहा।

शकुन्तला की बात सुनकर प्रियवदा ने धीरे से कहा—अनसूया! इसकी प्रेम-व्यथा अत्यन्त बढ गई है। यह विलम्ब करने मे असमर्थ है। यह जिस पर मोहित है, वह पुरुवश का भूषण है, अत इसकी अभिलाषा माननीय है।

अनसूया ने भी इस विचार का समर्थन कर कहा—ऐसा कोई उपाय हो जिसके अवलम्बन से हम, गुप्त रूप से, प्रिय सखी का मनोरथ सिद्ध कर द।

प्रियवदा—वह राजर्षि, स्निग्ध दृष्टि से अभिलाषा सूचित करता हुआ, आजकल जागरण से क्षीण दिखता है। उसके लिए एक प्रीति-पत्र लिखवाओ। मैं देवता के प्रसाद के बहाने इसे, पुष्पों में छिपाकर, राजा के हाथ में पहुँचा दूँगी।

अनसूया को यह उपाय ठीक जँचा।

उनके कहने से शकुन्तला पत्र लिखने को सहमत हो गई। प्रियवदा ने उससे कहा कि तू अपने विषय मे ललित पद्य की रचना कर।

परन्तु शकुन्तला को और भय हुआ। वह कहने लगी—अवज्ञा के विचार से मेरा हृदय काँपने लगा है।

शकुन्तला का यह वचन सुनकर दुष्यन्त ने मन में कहा कि तू जिससे अवज्ञा की शङ्का करती है वह तो तेरे ही लिए उत्सुक खड़ा है।

सखियों ने भी शकुन्तला के वचन सुनकर कहा—हे अपने गुणों की निन्दा करनेवाली सखी। शरीर को शान्ति देनेवाली, शरद् ऋतु के चन्द्रमा की ज्योत्स्ना को वस्त्र से कौन हटाता है?

शकुन्तला ने सखियों का कहना मान लिया। वह लिखने के लिए कुछ सोचने लगी। कुछ देर सोचकर शकुन्तला ने कहा—सखी। पद्य तो मैंने सोच लिया, परन्तु लेख-सामग्री पास नहीं है।

सखियों ने उससे शुकोदर के समान सुन्दर कमलपत्र पर नखों द्वारा लिखने को कहा। शकुन्तला ने पत्र लिखकर सखियों को पढ़ सुनाया।

तो मन की जानत नहीं अहो मीत बे-पीर।
पै मो मन को करत नित मनमथ अधिक अधीर॥

इसी समय दुष्यन्त ने सहसा प्रकट होकर कहा—

केवल तोहिं तपावही मदन अहो सुकुमारि!
भस्म करत पै मो हियो तू चित देख बिचारि॥

राजा को देखकर सब प्रसन्न हो गईं। उन्होंने उनका

स्वागत किया। अनसूया ने राजा से, शकुन्तला के पास, उसी शिला पर विराजने को कहा। राजा वहाँ बैठ गये। शकुन्तला लजा गई।

प्रियवदा ने अब दुष्यन्त से कहा—यद्यपि आप दोनों का परस्पर अनुराग प्रत्यक्ष है तथापि सखी का स्नेह मुझे कहने को विवश करता है। हमारी सखी की यह दशा आपके ही कारण हुई है। सो अनुग्रह कर आपको इसके जीवन की रक्षा करनी चाहिए।

दुष्यन्त—मेरी ओर से भी यही प्रार्थना है।

शकुन्तला—सखी प्रियवदा! अन्त पुर के लिए उत्सुक राजा से ऐसा अनुरोध क्यों करती है?

दुष्यन्त—हे मेरे हृदय में निवास करनेवाली! मैं तो तुम्हारे ही वश में हूँ।

अनसूया—राजन्! हमने सुना है कि राजाओं के अनेक स्त्रियाँ होती हैं। अत हमारी सखी का इस प्रकार निर्वाह करना जिसमें इसे स्वजनों का शोक न हो।

दुष्यन्त—मैं अधिक क्या कहूँ? अनेक स्त्रियाँ होने पर भी मेरे लिए प्रतिष्ठा की पात्र दो ही होंगी—एक तो समागरा पृथिवी और दूसरी तुम्हारी प्रिय सखी।

यह सुनकर दोनों सखियाँ निश्चिन्त हुईं। प्रियवदा ने अब एक बहाना किया। "मृग शावक अपनी माता को

खोज रहा है, चलो, उसे मिला दें।" ऐसा कहकर दोनों वहाँ से चली गई।

शकुन्तला कहती ही रही कि सखियो। मैं असहाय रह गई हूँ, तुममे से एक तो यहाँ रहे। परन्तु दोनों ने मुस्कराकर कहा—पृथ्वी के रक्षक राजा तो तुम्हारे पास ही हैं।

सखियों को जाते देख शकुन्तला भी जाने को उद्यत हुई, किन्तु राजा ने उसे बलपूर्वक लौटा लिया।

शकुन्तला—पुरुराज। विनय की रक्षा कीजिए। प्रेम-विह्वल होने पर भी मैं अपनी स्वामिनी नहा हूँ।

दुष्यन्त—भीरु। तुम गुरुजनों का भय मत करो। यह जानकर धर्मज्ञ भगवान् कुलपति दोष न देंगे। सुना है कि गान्धर्व-विवाह से ब्याही हुई राजर्षियों की अनेक कन्याओं का अभिनन्दन उनके माता-पिता कर चुके हैं।

शकुन्तला—मुझे छोड दीजिए। मैं सखियो से सलाह कर लूँ।

राजा—अच्छा, छोड दूँगा।

इस प्रकार वार्त्तालाप हो ही रहा था कि बाहर से यह सुनाई दिया—चकवी। सहचर से विदा माँग ले। रात आ गई।

शकुन्तला ने इन शब्दों से सखी का अभिप्राय समझ लिया। वह राजा से कहने लगी—मेरे शरीर का वृत्तान्त

जानने के लिए माता गोतमी निःसन्देह इधर ही आती है। आप वृक्षों की ओट में हो जायँ।

राजा ने ऐसा ही किया। इतने में हाथ में कमण्डलु लिये गौतमी और दोनों सखियाँ वहाँ आ गई। गौतमी ने शकुन्तला से पूछा—बेटी! क्या तुम्हारे अङ्गों का ताप न्यून हो गया?

शकुन्तला ने कहा—माता, अब मुझे शान्ति है।

गौतमी ने अब कुशा से शकुन्तला पर शान्ति-जल छिड़क दिया। फिर उससे कुटी में चलने को कहा।

शकुन्तला उस समय जाना तो नहीं चाहती थी परन्तु विवश होकर, सन्तप्त हृदय से, अन्य सखियों के साथ चली गई। चलते समय उसने लताकुञ्ज को सम्बोधित कर कहा—हे सन्ताप के हरनेवाले! फिर भी दर्शन के लिए मैं तुमसे आज्ञा लेती हूँ।

दुष्यन्त अब दीर्घ निःश्वास लेते हुए पहले स्थान पर खड़े हो गये। वे सोचने लगे कि अब कहाँ जाऊँ। अथवा यहीं लता-कुञ्ज में मुहूर्त भर ठहर जाता हूँ।

परन्तु एक ओर से शब्द हुआ कि सायङ्काल के सवन-कर्म में प्रवृत्त होने पर वेदी को निशाचरों ने चारों ओर से घेर लिया है।—यह सुनकर तपस्वियों का भय दूर करने के लिए दुष्यन्त भी चले गये।

(४)

राजा दुष्यन्त के आश्रम से चले जाने के पश्चात् अनसूया

और प्रियवदा पुष्प चुन रही थीं। अनसूया ने कहा—सखी प्रियवदा! गान्धर्व-विवाह की विधि से कल्याण को प्राप्त हुई शकुन्तला को सुयोग्य पति मिल जाने से मेरा हृदय शान्त हो गया है। तथापि इतनी चिन्ता अवश्य है कि आज ऋषियो से विदा होकर वह राजर्षि जब अपने अन्त पुर मे पहुँचेगा तब यहाँ के वृत्तान्त को स्मरण रक्खेगा या नहीं।

प्रियवदा—ऐसी विशेष आकृतियाँ गुण की विरोधी नहीं होतीं। किन्तु अब इस वृत्तान्त को सुनकर पिताजी क्या कहेंगे ?

अनसूया—मैं तो समझती हूँ कि उनकी अनुमति मिल जायगी, क्योकि सिद्धान्त यही है कि "गुणवान् में कन्या दी जानी चाहिए'। यदि दैव ही उक्त कार्य कर दे तो गुरु-जन अनायास ही कृतार्थ हैं।

पुष्प चुनती हुई ये दोनो इस प्रकार वार्त्तालाप कर रही थीं कि सहसा सुनाई पडा—अरे! यह मैं हूँ।

अनसूया—सखी! यह किसी अतिथि का सा शब्द है।

प्रियवदा—शकुन्तला कुटी के पास है सही, परन्तु आज उसका चित्त ठिकाने नहीं है।

अत वे दोनों कुटी की ओर चल पडीं। परन्तु इसी समय पुन सुनाई पड़ा—अरी अतिथि का निरादर करने वाली! तू अनन्य मन से जिसका चिन्तन करती हुई मुझ

तपस्वी का स्वागत नहीं करती वह, स्मरण कराने पर भी, तुझे वैसे ही स्मरण नहीं करेगा जैसे उन्मत्त पुरुष पहले कहे हुए अपने प्रलाप-वाक्यों को स्मरण नहीं कर सकता।

यह सुनकर प्रियवदा ने कहा—हाय! अनर्थ हो गया। किसी का सत्कार न करके शून्य-हृदय शकुन्तला ने अपराध किया है।

आगे बढ़कर देखा तो शाप देकर महर्षि दुर्वासा शीघ्रता से जा रहे थे। प्रियवदा, उनके सत्कार के लिए, अर्घ्य आदि लेने चली गई। अनसूया ने आगे बढ़कर उनकी अभ्यर्थना की। उसके अधिक अनुनय विनय करने पर महर्षि दुर्वासा कुछ शान्त हुए।

अनसूया ने आकर कहा—सखी! उन्हें कुछ शान्त तो किया है परन्तु वे लौटे नहीं। वे यह कहते चले गये कि "मेरा वचन अन्यथा नहीं होता, किन्तु अभिज्ञान के दर्शन द्वारा शाप की निवृत्ति हो जायगी"।

प्रियवदा—अच्छा, आश्वासन के लिए यही यथेष्ट है। उस राजर्षि ने चलते समय अपने नाम से अङ्कित अँगूठी, स्मरण के लिए, पहना दी थी। उससे शकुन्तला का काम चल जायगा।

प्रियवदा और अनसूया ने शकुन्तला को इस शाप की सूचना देना उचित न समझा।

प्रियवदा—चमेली को उष्ण जल से सींचने का साहस कौन कर सकता है ?

कुछ दिनों के अनन्तर काश्यप आश्रम में लौट आये। अनसूया सोचने लगी कि क्या दुर्वासा के शाप से ही इतना विलम्ब हो रहा है ? अन्यथा उस राजर्षि ने इतने आश्वासन देकर भी अब तक पत्र क्यों नहीं भेजा ? सखी दोष की भागी होगी, इसलिए प्रवास से लौटे हुए पिता कण्व से—दुष्यन्त से विवाही गई—गर्भवती शकुन्तला का वृत्तान्त कहने में असमर्थ हूँ। अब क्या करना चाहिए ?

अनसूया इस प्रकार चिन्तित थी कि प्रसन्न-वदन प्रियंवदा वहाँ आ गई। वह कहने लगी—सखी। शीघ्रता करो। पिता कण्व ने आज शकुन्तला को, तपस्वियों के साथ, दुष्यन्त के पास भेजने के लिए कहा है।

अनसूया—पिता ने यह वृत्तान्त कैसे जाना ?

प्रियवदा—जब वे यज्ञस्थान के पास पहुँचे तब आकाशवाणी हुई कि शकुन्तला दुष्यन्त द्वारा गर्भवती है।

"आज ही शकुन्तला भेजी जायगी' यह शुभ समाचार सुनकर अनसूया प्रसन्न तो हुई, किन्तु साथ ही सखी की विदाई के कारण उसके दु ख की मात्रा भी स्वल्प न थी। अब दोनों सखियाँ, मङ्गल-द्रव्य एकत्र कर, शकुन्तला के पास चली गईं।

इसी समय महर्षि कण्व का शब्द सुनाई दिया। वे

गौतमी से कह रहे थे कि शार्ङ्गरव और शारद्वत शिष्यों से, शकुन्तला को पहुँचाने के लिए, कह दो।

प्रियंवदा और अनसूया ने देखा कि, सूर्य उदय होते "ही, शकुन्तला स्नान किये बैठी है और स्वस्ति-वाचन करनेवाले तपस्वी, उसके मङ्गल के लिए, आशीर्वाद दे रहे हैं।

दोनों सखियाँ जाकर शकुन्तला का शृङ्गार करने लगीं।

"सखियों-द्वारा किया हुआ यह शृङ्गार अब मुझे दुर्लभ हो जायगा।" इस विचार से शकुन्तला की आँखों में आँसू भर आये।

इस शुभ अवसर पर रोने से उसे सखियों ने रोका।

महर्षि कण्व के प्रताप-द्वारा वृक्षों में स्वयं प्राप्त दुकूल-वस्त्र तथा आभूषण शकुन्तला को पहनाये गये।

नित्य-कृत्य से निपटकर महर्षि कण्व भी शकुन्तला के पास आ गये। वे सोच रहे थे कि शकुन्तला आज पति गृह को जायगी, इसलिए उनका हृदय दुःखित हो रहा था। शकुन्तला की विदाई के कारण उनका हृदय व्यग्र था। आँसुओं के रोकने से गला भारी हो रहा था, चिन्ता के कारण इन्द्रियाँ जड़ हो रही थीं। उन्हें आश्चर्य होता था कि मुझ वनवासी को स्नेह से इतनी वियोग-पीडा हो रही है, तो अपनी कन्याओं के प्रथम वियोग से पीडित गृहस्थियों का क्या कहना ?

शकुन्तला ने लज्जा से, उठकर, उन्हें प्रणाम किया।

कण्व ने आशीर्वाद दिया—पुत्री। ययाति को शर्मिष्ठा के समान तू स्वामी की प्रिया हो। तेरे वैसा ही चक्रवर्ती पुत्र हो जैसा शर्मिष्ठा के पुरु उत्पन्न हुआ था।

महर्षि कण्व ने उसे, आहुति दी हुई, अग्नि की प्रदक्षिणा करने को कहा। सबने प्रदक्षिणा की। तब महर्षि कण्व ने शार्ङ्गरव आदि अपने दो शिष्यों को बुलाकर शकुन्तला को मार्ग दिखाने का आदेश किया।

शार्ङ्गरव ने शकुन्तला को मार्ग दिखाया। सब चल पड़े। तब कण्व ने तपोवन के वृक्षों को सम्बोधित कर कहा—हे तपोवन के वृक्षो। तुम्हें सींचे बिना जो जल नहीं पीती थी, आभूषणों की प्रेमी होने पर भी—तुम्हारे स्नेह से—जो तुम्हारे पल्लव नहीं तोड़ती थी और तुम्हारे प्रथम विकास के समय जो प्रसन्न होती थी, वही शकुन्तला आज पति-गृह को जा रही है। तुम सब इसे आज्ञा दो।

इसी समय कोयल बोल उठी। महर्षि कण्व ने समझा कि वृक्ष, कोयल के मधुर वचन-द्वारा, शकुन्तला को पतिगृह जाने की आज्ञा देते हैं।

इसके अनन्तर फिर शब्द सुनाई दिया—"तुम्हारे मार्ग कल्याणमय हों।" यह वन-देवियों का आशीर्वाद था। शकुन्तला ने सिर झुकाकर आशीर्वाद ग्रहण किया। फिर सखी प्रियंवदा से, धीरे से, कहा—स्वामी के दर्शन के लिए

उत्सुक होने पर भी आश्रम को त्यागते हुए मेरे पैर, दुख के मारे, आगे नहीं बढ़ते।

प्रियंवदा—सखी! चलते समय तपोवन के विरह से कुछ तुम्हीं कातर नहीं हो, वरन् तपोवन की भी वैसी ही दशा है। मृगों ने मुँह से तृण गिरा दिये हैं, मोरों ने नृत्य बन्द कर दिया है और लताओं ने जीर्ण पत्ते गिराकर आँसू-से बहाये हैं।

शकुन्तला अब वनज्योत्स्ना लता से विदा लेने गई। इस पर उसका बहन का सा स्नेह था। पास जाकर कहने लगी—"हे वनज्योत्स्ना! आम से लिपटी रहने पर भी तू, इधर बढ़ी हुई शाखा रूपी भुजाओं से, मुझे लिपट। आज मैं तुझसे दूर हो जाऊँगी।" फिर सखियों से कहा—सखियो! इसे मैं तुम्हारे हाथ सौंपती हूँ।

दोनों सखियों ने आँसू गिराते हुए कहा—और हमें किसके हाथ सौंप रही हो?

यह सुनकर महर्षि कण्व ने कहा—अनसूया! रोओ मत। शकुन्तला को तुम्हीं धीरज बँधाओ।

शकुन्तला—पिताजी! कुटी के समीप रहनेवाली मृगी के सकुशल प्रसव करने की मुझे सूचना भेजिएगा।

इस समय चलते चलते एक मृग ने पीछे से आकर शकुन्तला का आँचल खींच लिया। शकुन्तला ने घूमकर देखा तो वही मृग था जिसे इसने स्वयं खिला पिलाकर बड़ा किया था। रोती हुई शकुन्तला ने उसे लौटाया।

महर्षि कण्व ने शकुन्तला से शान्त हो जाने को कहा। क्योंकि रोने से आँखों में आँसू आ जाने के कारण विषम मार्ग में चलना कठिन था।

इतने में सब एक सरोवर के पास पहुँच गये। शार्ङ्गरव ने ऋषि से कहा—भगवन्! प्रिय जन का अनुगमन जलाशय तक ही करना चाहिए। सो यह सरोवर है। अब आप हमें सन्देश देकर लौट जायँ।

सब लोग वट वृक्ष की छाया में बैठ गये। महर्षि कण्व ने राजा दुष्यन्त के लिए सन्देश दिया—"हे राजन्! हम तपस्वियों को, अपने उच्च कुल को तथा तुम्हारे लिए इसकी आत्म-प्रेरित स्नेह-प्रवृत्ति को भले प्रकार विचारकर तुम सब स्त्रियों में इसे समान गौरव से देखना। इससे अधिक भाग्य के अधीन है, कन्या के स्वजनों को उसे कहना उचित नहीं।"

शिष्यों से यह सन्देश कहकर महर्षि कण्व ने शकुन्तला से कहा—पुत्री! अब तुम्हें कुछ शिक्षा देनी है। तुम यहाँ से पतिगृह को पहुँचकर—

शुश्रूषा गुरुजन की कीजो, सखाभाव सौतिन में लीजो।
भरता यदपि करै अपमाना, कुपित होइ गहियो जनि माना॥
मृदु भाषिनि दासिन सँग रहियो, बड़े भागि पै गर्व न लहियो।
या विधि तिय गेहिनि पद पावैं, उलटी चलि कुल दोष कहावै॥

गौतमी ने भी कहा—बेटी, यह कुलवधुओं के लिए उपदेश है। इस पर सदैव ध्यान रखना।

कण्व ने जब शकुन्तला से कहा कि मेरे और अपनी सखियों के गले लगो तब शकुन्तला का जी भर आया। वह रोने लग गई। कण्व ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—पुत्री! कातर क्यों होती है? जब तू यशस्वी राजा की आदरवाली रानी होकर, अति वैभव के कारण व्यग्र होती हुई, घर के कामों से अवकाश न पावेगी और थोड़े ही दिनों में तू पुत्र ऐसा जन लेगी जैसा कि पूर्व दिशा सूर्य को उत्पन्न करती है, तब विरह-व्यथा को भूल जायगी।

शकुन्तला पिता के चरणों पर गिर पड़ी।

कण्व ने कहा—जो तेरी इच्छा है, वह पूर्ण हो।

शकुन्तला ने अब सखियों से गले लगने को कहा।

गले लग चुकने पर उन्होंने शकुन्तला से कहा—सखी! यदि वह राजा तुम्हें पहचानने में विलम्ब करे तो उसके नाम-वाली यह अँगूठी दिखा देना।

यह सुनकर शकुन्तला काँप उठी। परन्तु दोनों सखियों ने कहा—भय मत करो। अति स्नेह से दुःख की आशङ्का होती है।

अधिक विलम्ब हो जाने से शार्ङ्गरव ने कहा—अब सूर्य दूसरे युग में चला गया है। शीघ्रता करो।

शकुन्तला ने पिता के गले लगकर, आश्रम की ओर देख-कर, कहा—तात! मैं तपोवन को फिर कब देखूँगी?

कण्व—जब चिरकाल तक पति के साथ रहकर दुष्यन्त के पुत्र का विवाह कर लेगी तब, स्वामी से कुटुम्ब का भार पुत्र को मिल जाने पर, पति के साथ इस शान्त आश्रम में तू पुनः पद रक्खेगी।

फिर सबने मिलकर शकुन्तला को विदा किया। जब वह वृक्षों की ओट में छिप गई तब सब लोग लौट आये। सबके हृदय शोक ग्रस्त थे। कण्व ने "पुत्री पराया धन है" कहकर हृदय को आश्वासन दिया।

(५)

महाराज दुष्यन्त अभी राज-कार्य से निपटकर विश्राम करने गये थे कि कञ्चुकी वातायन ने निवेदन किया—महाराज की जय हो। हिमालय की तराई के वन में रहनेवाले तपस्वी लोग, काश्यप का सन्देश लेकर, स्त्रियो-सहित आये हैं।

दुष्यन्त ने विस्मित होकर कहा—क्या? काश्यप का सन्देश लेकर स्त्रियो के साथ तपस्वी? अच्छा, तो मेरी ओर से सोमरात पुरोहित से कहो कि आश्रमवासियो का शास्त्र विधि से सत्कार कर उन्हें स्वय ही मेरे पास ले आवे। मैं भी इन तपस्वियो के दर्शन योग्य स्थान में प्रतीक्षा करता हूँ।

कञ्चुकी वातायन के चले जाने पर महाराज दुष्यन्त अग्निशाला की ओर चले गये। वहाँ तुरन्त धुली हुई छत पर बैठ गये। वे सोचने लगे कि भगवान् काश्यप ने तपस्वियों को मेरे पास क्यो भेजा है।

इतने में कण्व के शिष्य स्त्रियों-सहित, वहाँ आ गये। इनके आगे-आगे कञ्चुकी वातायन और पुरोहित सोमरात थे।

उस समय शकुन्तला ने कहा—हाय! मेरी दाहिनी आँख क्यों फड़कती है।

गौतमी—पुत्री! अमङ्गल नष्ट हो। तेरे स्वामी के कुल-देवता तुझ पर सुख की वृष्टि करें।

परन्तु शकुन्तला जैसे-जैसे आगे बढ़ती थी, उसका हृदय काँपता जाता था।

अभिवादन आशीर्वाद तथा कुशल-प्रश्न के अनन्तर शार्ङ्गरव ने कहा—राजन्! महर्षि ने कुशल प्रश्न के पश्चात् यह कहा है कि तुमने परस्पर प्रतिज्ञा कर मेरी इस कन्या को व्याहा है। तुम दोनों के इस विवाह को मैंने प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। क्योंकि तुम श्लाघ्य पुरुषों में प्रथम माने गये हो और शकुन्तला सत्कर्म की मूर्ति है। तुल्य गुणवाले वर और वधू को संयुक्त करके प्रजापति चिरकाल की निन्दा से बच गया। सो अब इस गर्भवती को, अपने साथ धर्माचरण के लिए, स्वीकार करो।

फिर गौतमी ने कहा—राजन्! मैं कुछ कहना तो चाहती हूँ, पर कहूँ क्या? क्योंकि न तो इसने गुरुजनों की अपेक्षा की है और न तुमने बन्धुओं से पूछा है।

यह सब सुनकर दुष्यन्त ने कहा—यह क्या कहा जा रहा है?

शकुन्तला को ये शब्द अग्नि-से प्रतीत हुए।

शार्ङ्गरव—हैं! यह क्या?

दुष्यन्त—क्या मैंने इसके साथ ब्याह किया था?

यह सुनकर शकुन्तला ने दुःख से मन में कहा—हृदय! तेरी शङ्का उचित थी।

शार्ङ्गरव ने फिर कहा—क्या पहले किये गये कार्य में द्वेष होने से राजा को धर्म से पराङ्मुख होना चाहिए?

दुष्यन्त—इस असत्य कल्पना का प्रसङ्ग कहाँ से आया?

शार्ङ्गरव क्रोध से बोला—ऐश्वर्य से उन्मत्त पुरुषों में प्रायः ऐसे विकार भर होते हैं।

अब गौतमी ने शकुन्तला से कहा—पुत्री! लज्जा मत कर। तेरा घूँघट हटाती हूँ जिससे तेरा पति तुझे पहचान ले।

परन्तु उसका मुँह देखकर भी दुष्यन्त पहचान न सके। थोड़ी देर तक देखकर कहने लगे—विचार करने पर भी इसको अङ्गीकार करने का मुझे स्मरण नहीं आता। अब इस गर्भवती को कैसे ग्रहण करूँ?

शकुन्तला ने व्यथित होकर मन में कहा—हाय! स्वामी को विवाह में ही सन्देह है। अब मेरी बढ़ी हुई आशा कहाँ गई?

राजा का उत्तर सुनते ही शार्ङ्गरव बोल उठा—मत ग्रहण करो। बलपूर्वक स्पर्श की गई कन्या का अनुमोदन करनेवाले

मुनि का तिरस्कार तुम्हें करना ही चाहिए। चोरी गई हुई अपनी वस्तु वे चोर को दान करते हैं।

शारद्वत—शार्ङ्गरव! बस चुप रहो। शकुन्तला! हम जो कहना था सो कह दिया। महाराज जब ऐसा कहते हैं तब तुम्हीं इन्हें उत्तर दो।

शकुन्तला ने सोचा कि पूर्व-अनुराग जब इस अवस्था में आ गया है तब स्मरण कराने से क्या लाभ? अथवा मुझे तो अपनी आत्मा की शुद्धि का प्रयत्न करना ही चाहिए। फिर प्रकट में कहा—हे पौरव! पहले तपोवन में स्वभाव से सरल हृदयवाली मुझको प्रतिज्ञाओं से ठगकर अब, सब कुछ जानते हुए भी, ऐसे वचनों से अस्वीकार करना तुम्हारे योग्य ही है!

राजा ने कानों पर हाथ रखकर कहा—हरे! हरे! मुझे पातकी बनाने के लिए और अपने कुल को भी कलङ्कित करने के लिए तुम ऐसा यत्न कर रही हो, जैसे उमड़े हुए जल-प्रवाह से सिन्धु नदी तटस्थ वृक्षों को गिराती है और अपने निर्मल जल को भी कलुषित करती है।

शकुन्तला—अच्छा, पर-स्त्री की आशङ्का को तुम्हारे ही अभिज्ञान से हटाती हूँ।

दुष्यन्त—यह अत्युत्तम है।

शकुन्तला ने अँगुली देखी तो वहाँ अँगूठी का पता न था। उसने दुःखी होकर गौतमी की ओर देखा।

गौतमी—शक्रावतार के भीतर शची-तीर्थ के जल को प्रणाम करते समय अँगूठी गिर गई होगी।

दुष्यन्त ने मुस्कराकर कहा—यह स्त्री की तत्काल-बुद्धि कहलाती है।

अब तो शकुन्तला ने समझा कि भाग्य ने अपनी प्रभुता दिखाई है। उसने अब तपोवन के कुछ दृश्यो की स्मृति कारानी चाही। परन्तु सब निष्फल था। राजा को कुछ भी स्मरण न आया।

दुष्यन्त—अपना कार्य साधनेवाली ऐसी स्त्रियों के मधुर असत्य वचनो से विषयी लोग आकर्षित हो जाते हैं।

ये अपशब्द सुनकर गौतमी ने कहा—महाभाग। ऐसा कहना तुम्हे उचित नहीं। यह तपोवन में पली हुई कन्या छल से सर्वथा अनभिज्ञ है।

दुष्यन्त—वृद्धे। मनुष्येतर प्राणियो मे भी, विना ही शिक्षा प्राप्त किये, स्त्री-जाति की चतुराई देखी जाती है। फिर बुद्धि-मती स्त्रियो की क्या बात ? उडने योग्य न होने तक अपने बच्चों का पोषण कोयल अन्य पक्षियों से करवाती है।

अब तो शकुन्तला को असीम क्रोध आ गया। वह कहने लगी—अनार्य। तुम अपने हृदय जैसा सबको समझते हो। तुम धर्म का बाहरी वेष धारण करनेवाले और तृण से ढके हुए कूप की भाँति हो। भला तुम्हारा अनुकरण अब कौन करेगा ?

अब तो दुष्यन्त को भी सन्देह हुआ कि यह कोप निश्छल ज्ञात होता है। परन्तु वे ऐसा कह नहीं सके।

दुष्यन्त—दुष्यन्त का चरित्र प्रसिद्ध है। उसकी प्रजा में भी यह बात नहीं दीखती।

शकुन्तला ने फिर क्रोध से कहा—पुरुवश का विश्वास करके, मुख में मधु और हृदय में विषवाले के हाथों पड़कर, मैं यहाँ कुलटा कही गई हूँ।

अब शकुन्तला आँचल से मुँह ढककर रोने लगी। शाङ्गरव ने भी उसे डाँटकर कहा—बिना सोचे-समझे किया हुआ चपलता का काम इसी प्रकार सन्तप्त करता है। अत भले प्रकार परीक्षा करके ही किसी से गुप्त प्रेम करना चाहिए। मित्रता अज्ञात हृदयों में ही शत्रुता बन जाती है।

दुष्यन्त—क्या इसका विश्वास करके ही हमें अपवाद लगाकर दु खित करते हो ?

शाङ्गरव—इसका उत्तर सुन लो। जन्म-काल से ही जो छल में अशिक्षित है उसका वचन तो प्रामाणिक नहीं, और जो दूसरों को यह छलने की विद्या पढ़ाते हैं वे विश्वसनीय हैं।

शारद्वत—शाङ्गरव। इन बातों से क्या लाभ ? चलो, हमने गुरु की आज्ञा का पालन कर दिया।

फिर राजा की ओर देखकर वह कहने लगा—राजन्। यह तुम्हारी स्त्री है, चाहे इसे रक्खो, चाहे निकाल दो। पति को स्त्री पर सब प्रकार का अधिकार है।

गौतमी और दोनों तपस्वी, शकुन्तला को वहाँ छोड़कर, चले गये। शकुन्तला ने कहा—इस कपटी ने मुझे ठग लिया। क्या तुम भी मुझे त्यागते हो ?

शकुन्तला उनके पीछे पीछे जाने लगी। उसे देखकर गौतमी ठहर गई और शार्ङ्गरव से बोली—शकुन्तला तो हमारे पीछे रोती चली आती है। पति से त्यागी हुई मेरी पुत्री करे क्या ?

शार्ङ्गरव ने क्रोध से लौटकर कहा—आः, राजा से त्यागी जाने का दोष देखनेवाली ! तुम स्वतन्त्रता चाहती हो ?

शकुन्तला भयभीत होकर काँपने लगी।

शार्ङ्गरव—यदि तू वैसी ही है जैसा यह राजा कहता है तो तुझसे हमें क्या काम ? और यदि तू अपने पातिव्रत्य को जानती है तो पति के कुल में रहकर तेरा सेवा करना भी अच्छा है। तू यहाँ रह, हम जाते हैं।

दुष्यन्त—इसे क्यों धोखा देकर जाते हो ?

शार्ङ्गरव—राजन् ! किसी अन्य में आसक्ति होने से यदि पिछले वृत्तान्त को भूल गये हो तो हे धर्म-भीरु ! क्या अब स्त्री-त्याग का फल भोगोगे ?

दुष्यन्त—इसका निर्णय आप ही कर दीजिए। या तो मैं मूढ़ हूँ, अथवा यह मिथ्या कहती है। मैं इस संशय में स्त्री-त्यागी बनूँ अथवा पर-स्त्री के स्पर्श से पाप का भागी ?

पुरोहित अपने आप कह उठा—बालक का जन्म होने तक यह स्त्री हमारे गृह में ठहरे। मैं यह इसलिए कहता हूँ कि

ज्योतिषियों ने पहले बताया है कि तुम्हे चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा। वह मुनि का नाती यदि इन लक्षणों से युक्त होगा तो इसे प्रसन्न करके अन्त पुर में रख लेना। अन्यथा इसके पिता के समीप पहुँचवा देना निश्चित है।

दुष्यन्त ने यह सम्मति स्वीकार कर ली। अब पुरोहित ने शकुन्तला से पीछे-पीछे आने को कहा। शकुन्तला रोती हुई, पुरोहित और तपस्वियों के साथ, चली गई।

पुरोहित ने तुरन्त ही लौटकर महाराज से कहा—राजन्! आश्चर्य है! कण्व के शिष्यों के लौट जाने पर अपने भाग्य की निन्दा करती हुई वह कन्या छाती पीट-पीटकर रोने लगी। इतने में स्त्री के आकार की एक ज्योति उसे उठाकर अप्सरा-तीर्थ की ओर ले गई।

यह वृत्तान्त सुनकर सब विस्मित हो गये। व्याकुल हुए राजा अपने शयनगृह को चले गये। वे सोचते थे कि यद्यपि लौटाई हुई मुनि कन्या के पाणिग्रहण का मुझे स्मरण नहीं है, परन्तु मेरा हृदय मुझे बलपूर्वक व्यथित करता हुआ मानो उसका विश्वास दिलाता है।

(६)

राजा दुष्यन्त ने अपने साले को नगर-रक्षक नियुक्त किया था। एक दिन उस नगर-रक्षक ने एक धीवर को पकड लिया, क्योंकि वह राजा के नाम की रत्न-जटित अँगूठी बेच रहा था। जानुक और सूचक राजपुरुषों ने उसे



अप्सरा का शकुन्तला को ले जाना

ज्योतिषियों ने पहले बताया है कि तुम्हें चक्रवर्ती पुत्र प्राप्त होगा। वह मुनि का नाती यदि इन लक्षणों से युक्त होगा तो इसे प्रसन्न करके अन्तःपुर में रख लेना। अन्यथा इसके पिता के समीप पहुँचवा देना निश्चित है।

दुष्यन्त ने यह सम्मति स्वीकार कर ली। अब पुरोहित ने शकुन्तला से पीछे-पीछे आने को कहा। शकुन्तला रोती हुई पुरोहित और तपस्वियों के साथ, चली गई।

पुरोहित ने तुरन्त ही लौटकर महाराज से कहा—राजन्! आश्चर्य है! कण्व के शिष्यों के लौट जाने पर अपने भाग्य की निन्दा करती हुई वह कन्या छाती पीट-पीटकर रोने लगी। इतने में स्त्री के आकार की एक ज्योति उसे उठाकर अप्सरा-तीर्थ की ओर ले गई।

यह वृत्तान्त सुनकर सब विस्मित हो गये। व्याकुल हुए राजा अपने शयनगृह को चले गये। वे सोचते थे कि यद्यपि लौटाई हुई मुनि-कन्या के पाणिग्रहण का मुझे स्मरण नहीं है, परन्तु मेरा हृदय मुझे बलपूर्वक व्यथित करता हुआ मानो उसका विश्वास दिलाता है।

(६)

राजा दुष्यन्त ने अपने साले को नगर-रक्षक नियुक्त किया था। एक दिन उस नगर-रक्षक ने एक धीवर को पकड़ लिया, क्योंकि वह राजा के नाम का रत्न-जटित अँगूठी बेच रहा था। जानुक और सूचक राजपुरुषों ने उसे

का स्मरण आ जाने से, प्रबल उद्वेग से, उन्मत्त हुए राजा ने वसन्तोत्सव रुकवा दिया है।

सानुमती ने जब राजा को माढव्य और वेत्रवती दासी के साथ उद्यान में आते देखा तब वह अदृश्य ही रहकर इनका वार्त्तालाप सुनने लगी।

दुष्यन्त चिन्ताग्रस्त होकर धीरे-धीरे चलते हुए कहने लगे—यह पापी हृदय पहले मृगाक्षी प्रिया के स्मरण कराने पर भी सोता रहा, अब पश्चात्ताप का दुःख सहने को जागा है।

यह सुनकर सानुमती ने कहा कि ओह! तपस्विनी के ऐसे भाग्य हैं।

राजा को चिन्तित देख माढव्य ने सोचा कि शकुन्तला-रूपी व्याधि से ग्रस्त हुए की न जाने कैसे चिकित्सा होगी।

राजा ने इस समय दासी-द्वारा मन्त्री पिशुन को कहला भेजा—विलम्ब से उठने के कारण मैं आज धर्मासन पर बैठने में असमर्थ हूँ। आपने जो पौर कार्य देखा हो वह पत्र में लिखकर मेरे पास भेज दीजिए।

दासी चली गई। अब एकान्त हो गया। राजा ने पूछा—मित्र! अब मैं कहाँ बैठकर मन बहलाऊँ? माढव्य ने स्मरण कराया—राजन्! आपने विश्वसनीय चतुरिका दासी को आज्ञा दी है कि "मैं इस समय माधवी-मण्डप में रहूँगा। तुम मेरे हाथ से अङ्कित शकुन्तला का चित्र लाओ"।

दुष्यन्त को भी स्मरण आ गया। सो दोनों लता कुञ्ज

में चले गये और वहाँ मणिशिला पर बैठकर वार्त्तालाप करने लगे। चित्र देखने की अभिलाषा से सानुमती भी, अदृश्य रूप से, पास ही बैठ गई।

दुष्यन्त ने दीर्घ नि:श्वास लेकर कहा—मित्र! शकुन्तला का पहले का वृत्तान्त सब स्मरण आ गया। मैंने तुमसे कहा था, पर अस्वीकार करने के समय तुम मेरे पास नहीं थे। किन्तु तुमने पहले भी कभी उसका नाम नहीं लिया। क्या मेरी भाँति तुम भी उसे भूल गये थे?

माढव्य—मैं भूला नहीं था। किन्तु सब बातें कहकर अन्त में आपने यह भी तो कहा था कि "यह परिहास की कथा है, इसे सत्य न मान लेना।" मैं मूर्ख ने भी आपकी बात को सच समझ लिया। होनी ही ऐसी थी।

अस्वीकार करने से व्याकुल हुई प्रिया की अवस्था का स्मरण कर दुष्यन्त अति दु:खित हुए। वे कहने लगे—मित्र! मैं निरुपाय हो गया हूँ।

सानुमती ने मन में कहा कि ओह! अपने कार्य की इतनी तत्परता! इसके सन्ताप से मुझे प्रसन्नता होती है।

माढव्य—मैं समझता हूँ कि उसे कोई देवता उठा ले गया है।

दुष्यन्त—मित्र! उस पतिव्रता का स्पर्श करने का उत्साह कौन करेगा? मैंने सुना है कि उसकी माता मेनका है। सो उसे मेनका की सखियाँ ही ले गई होंगी।

माढव्य—ऐसा है तो धैर्य रक्खो। समय पर उससे मिलन होगा। क्योंकि पति के वियोग में दुःखित पुत्री को माता-पिता चिरकाल तक नहीं देख सकते।

किन्तु राजा को किसी प्रकार धैर्य न होता था। कभी वे अपनी उस अँगूठी को धिक्कारते थे, कभी अपने आपको।

इस समय शकुन्तला का हस्ताङ्कित चित्र लेकर चतुरिका आ गई। चित्र अत्युत्तम बना था। उस चित्रपट में और दृश्य बनाने के अभिप्राय से राजा ने चतुरिका को रङ्ग का डिब्बा और कूची लाने को भेजा।

चित्राङ्कित शकुन्तला को देखकर राजा उन्मत्त हो गये। उन्हें शकुन्तला-सहित सब दृश्य प्रत्यक्ष-से दिखाई देने लगे। प्रत्येक दृश्य का ध्यान करके चित्र में उसकी पूर्त्ति का विचार करते हुए वे उस चित्र के द्वारा सजीव शकुन्तला के दर्शन का अनुभव करने लगे। माढव्य ने जब स्मरण कराया कि यह तो चित्र ही है तब उन्हें अत्यन्त शोक हुआ। उनके नेत्र सजल हो गये। वे माढव्य से कहने लगे—यह तुमने क्या अनर्थ किया? मुझे उसमें, तन्मय हृदय होने से प्रिया के साक्षात् दर्शन का-सा सुख मिल रहा था, सो चित्र का स्मरण कराकर तुमने मेरी प्रिया को पुनः चित्रलिखित कर दिया।

यह सुनकर सानुमती ने कहा कि भूत और वर्तमान का विरोधी यह विरह का मार्ग अपूर्व है।

तब माढव्य ने पूछा—राजन् ! आपने यह अँगूठी उसके हाथ किस कारण दी थी ?

दुष्यन्त—जब मैं आश्रम से अपने नगर के लिए चलने को उद्यत था, तब आँखों में आँसू भरकर शकुन्तला ने कहा—आप मुझे कितने समय में सूचना भेजेंगे ? मैंने तब यह अँगूठी उसे पहनाकर उत्तर दिया। प्रतिदिन इस अँगूठी पर मेरे नाम का एक अक्षर गिन लिया करना और अभी नाम के अन्तिम अक्षर तक तुम पहुँची न होगी कि मेरा दूत तुम्हें रनवास में लिवा लाने के लिए आ जायगा।

राजा—मित्र ! मैं इस दुःख को निरन्तर कैसे सहन करूँ ? जागते रहने से स्वप्न में उसका समागम दुर्लभ है और आँसू उसे चित्र में भी नहीं देखने देते।

राजा के इन भावों से प्रसन्न होकर सानुमती कहने लगी कि अस्वीकार की जाने का शकुन्तला को जो दुःख हुआ है उसे तुमने सर्वथा धो दिया।

इतने में चतुरिका ने आकर राजा से कहा कि मुझसे रङ्ग का डिब्बा और कूची छीनकर रानी वसुमती इधर आ रही हैं।

राजा ने माढव्य से कहा—शकुन्तला का चित्र छिपा दो।

चित्र लेकर माढव्य मेघप्रतिच्छन्द भवन में भाग गया। अब वेत्रवती दासी आ पहुँची। उसके द्वारा दुष्यन्त को विदित हुआ कि रानी, उसे राजकार्य के विषय में पत्र लेकर आते देखकर, मार्ग में से, लौट गई हैं।

यह पत्र मन्त्री पिशुन ने राजा के पास भेजा था। पत्र में लिखा था कि समुद्र-व्यापारी सेठ धनमित्र, जहाज के डूब जाने से, मर गया है। वह नि सन्तान था। अत उसका सब धन राजा को प्राप्त होना चाहिए।

यह पढकर राजा को नि सन्तान होने पर दु ख हुआ। उन्होंने दासी से कहा—यदि वह धनी है तो उसके अनेक पत्नियाँ होगी। पता लगाओ, उसकी कोई स्त्री गर्भवती तो नहीं।

दासी—महाराज। सुना है कि अयोध्या के सेठ की पुत्री का जो धनमित्र की स्त्री है, अभी पुसवन-सस्कार हुआ है।

राजा—जाओ, मन्त्री से कह दो कि वह गर्भस्थित बालक पितृधन का अधिकारी है।

वेत्रवती चली गई। राजा को अब नि सन्तान होने का दु ख और भी पीडित करने लगा। उन्होंने सोचा कि मेरी मृत्यु होने पर यही दशा पुरु-वश की होगी। हाय। मैंने धर्म-पत्नी शकुन्तला को गर्भावस्था में अकारण त्याग दिया।

सानुमती ने कहा कि वह शीघ्र ही मिल जायगी।

चतुरिका ने, राजा के मनोविनोद के लिए, माढव्य को मेघ-प्रतिच्छन्द प्रासाद मे बुलाने के लिए वेत्रवती को भेजा।

दुष्यन्त फिर विलाप करके कहने लगे—ओह। मेरे पितृजन सशय में पडे हुए हैं। वे कहते होंगे कि हाय। इसके पश्चात् हमें शास्त्र-विधि के अनुसार पिण्ड कौन देगा।

मुझ नि सन्तान के दिये हुए, आँसुओं के धोने से शेष, जल को वे पीते होंगे।

अब तो सानुमती का हृदय द्रवीभूत हो गया। वह कहने लगी कि हाय! दीपक के होने पर भी इसे अन्धकार दीख रहा है। मैं तो इसे अभी शान्त कर देती, परन्तु मैंने देखा है कि इन्द्र की माताजी शकुन्तला को यह कहकर ढाढ़स बँधा रही थी कि यज्ञभाग के उत्सुक देवता ही ऐसा करेंगे जिसमें तेरा स्वामी तुझे शीघ्र स्वीकार कर ले। सो उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए। अब यहाँ का वृत्तान्त सुनाकर मैं प्रिय सखी को आश्वासन दूँगी। अब सानुमती वहाँ से चली गई।

इसी समय, भयभीत हुई, वेत्रवती ने आकर कहा—महाराज! मित्र को सङ्कट से बचाइए।

दुष्यन्त—क्या हुआ?

वेत्रवती—किसी अदृष्ट जीव ने उसे मेघप्रतिच्छन्द भवन की अट्टालिका पर चढ़ा दिया है।

राजा शीघ्र ही वहाँ चले गये। माढव्य का वचन सुनकर उससे कहने लगे—डरो मत, डरो मत।

माढव्य—कोई पीछे से ग्रीवा पकड़कर, ईख के समान, मेरे तीन खण्ड किये देता है।

राजा ने धनुष मँगवा लिया। उस जीव ने भी राजा को उत्तेजित करने के लिए कहा—लो, दुखियों का भय हटानेवाला धनुर्धर राजा दुष्यन्त अब तुम्हें बचावे।

यह सुनकर राजा को क्रोध चढ़ आया। वे कहने लगे—यह तो मुझे ही लक्ष्य करके कहता है। ठहर, ठहर, दुष्ट राक्षस! तू अब जीवित नहीं बचेगा।

राजा ने धनुष खींच लिया, परन्तु उन्हें कोई भी दिखाई न देता था। इस समय वह व्यक्ति, मातलि, प्रकट हो गया। उसने कहा—इन्द्र ने राक्षसों को लक्ष्य किया है। उनका नाश करने के लिए आपसे सहायता माँगी है।

मातलि को देखकर राजा ने धनुष उतार लिया और कहा—अरे मातलि!

मातलि ने अब अपना कार्य कह सुनाया। उसने कहा—चिरञ्जीव! इन्द्र का सन्देश सुनिए। कालनेमि की सन्तान दानवों का समूह दुर्जय है। उन दानवों को आपके मित्र इन्द्र नहीं जीत सकते। रणभूमि में आप उनका नाश करें।

राजा ने यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली। परन्तु मातलि से पूछा—तो माढव्य के लिए ऐसा क्यों किया?

मातलि ने मुस्कराकर कहा—वह भी कहता हूँ। किसी कारण मन के सन्ताप से आप मुझे व्याकुल दिखाई पड़े। सो आपको उत्तेजित करने के लिए मैंने वैसा किया था।

राजा अब मातलि के साथ जाने लगे। वे माढव्य-द्वारा मन्त्री पिशुन को, प्रजा-पालन में सावधान होने के लिए, आज्ञा देकर चले गये।

(७)

इन्द्र के कार्य से महाराज दुष्यन्त निवृत्त हो गये। इन्द्र ने उनका विशेष सत्कार किया। सब देवताओं के सम्मुख उन्हें अपने अर्ध-सिंहासन पर बिठाया। मन्दार-पुष्पों की माला की आशा किये, उनका पुत्र, जयन्त खड़ा था। परन्तु इन्द्र ने माला, उसे न देकर, दुष्यन्त को पहना दी। इस प्रकार विशेष सम्मान प्राप्त कर दुष्यन्त, मातलि के साथ विमान से भूलोक को चले।

मार्ग में स्वर्ग के अति रमणीय दृश्य थे। असुरों के संहार की उत्सुकता से स्वर्ग को जाते हुए राजा ने पहले दिन यह प्रदेश देखा नहीं था। आज उन्होंने मातलि से पूछा—हम वायु के कौन से मार्ग में हैं?

मातलि—हरि के दूसरे पग से पवित्र हुआ यह 'प्रवह' वायु का मार्ग है। इसमें रजस् नहीं है। यह आकाश गङ्गा को बहाता है और किरणों को विभक्त करने से नक्षत्रों को चलाता है।

यह दृश्य देखकर दुष्यन्त का अन्तरात्मा, बाहरी और भीतरी इन्द्रियों सहित पुलकित हो गया। राजा ने रथ के चक्र को देखकर कहा—हम मेघों के मार्ग में उतर आये हैं। चक्र के अरों में से निकलते हुए चातक और चमकदार विद्युत् के प्रकाश से लिप्त घोड़े तथा जल बिन्दुओं से गीले चक्रवाला

यह आपका रथ जल-पूर्ण मेघों के ऊपर चलना सूचित करता है।

मातलि—ठीक है, आप शीघ्र ही अपने राज्य की भूमि में पहुँच जायँगे।

राजा ने नीचे की ओर देखकर फिर कहा—मातलि। वेग से नीचे उतरने से मनुष्यलोक आश्चर्यमय दिखाई देता है। ऊँचे उठे हुए पर्वतों के शिखरों के कारण पृथ्वी नीचे उतरती हुई-सी दिखाई देती है। स्कन्धों के प्रकट होने से वृक्ष, पत्तों में छिपे होने की अवस्था को त्याग रहे हैं। क्षीण दिखने से अदृश्य जलवाली नदियाँ विस्तार से प्रकट हो रही हैं। देखो, भुवन किसी के द्वारा ऊपर फेंका हुआ-सा मेरे पास आ रहा है।

इस दृश्य की प्रशंसा मातलि ने भी की। राजा ने पूछा—पूर्व-पश्चिम समुद्र में डूबा हुआ, सोने का रस स्रवण करनेवाला, सन्ध्या की मेघ-राशि के समान यह कौन-सा पर्वत है ?

मातलि—यह किंपुरुषों का हेमकूट नाम का पर्वत है, यह तपस्वियों का परम क्षेत्र है। देखिए। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि से जो कश्यप प्रजापति उत्पन्न हुए थे वे ही सुरासुरों के गुरु, पत्नी-सहित, यहाँ तपस्या करते हैं।

यह सुनकर दुष्यन्त ने भगवान् कश्यप को प्रणाम करने की इच्छा प्रकट की।

मातलि ने रथ रोक लिया। दोनों रथ से उतर गये।



भरत की क्रीडा

ऋषियों के तपोवन को देखकर राजा अति विस्मित होकर कहने लगे कि अन्य मुनि तपस्या द्वारा जिसकी इच्छा करते हैं वही यह स्थान है जिसमें कल्प-वृक्ष से युक्त वन में वायु के द्वारा प्राणों की उचित वृत्ति हो जाती है, जहाँ स्वर्ण-कमल के परागों से रक्त हो रहे जल में स्नान-क्रिया सुलभ है और जहाँ रत्नशिलावाले गृहों में ध्यान तथा अप्सराओं के समीप सयम किया जाता है। इस प्रकार ऐसे स्थान में रहकर भी ये तपस्या करते हैं।

मातलि अब राजा को अशोक वृक्ष के नीचे ठहराकर, इन्द्र के गुरु, कश्यप को सूचना देने चला गया।

इस समय दुष्यन्त की भुजा फडकने लगी। राजा ने कहा कि मैं मनोरथ की आशा नहीं करता। भुजा! तू व्यर्थ फडकती है। जो सुख पहले तिरस्कृत होता है वह दुःख में परिवर्त्तित हो जाता है।

इतने में राजा को एक ओर से सुनाई दिया—चपलता मत कर। अपनी प्रकृति को कैसे प्राप्त हो गया?

राजा ने कहा कि यह तो चपलता का स्थान नहीं है। सो कौन मना कर रहा है?

जिधर से शब्द आया था उधर देखने पर एक पराक्रमी बालक, दो तपस्विनियों के साथ दिखाई पड़ा। सिंह का बच्चा आधा ही दूध पी पाया था कि उसे वह बालक, खेलने

के लिए, खींच रहा था। सिंह-शिशु से वह कह रहा था—मुँह खोल, तेरे दाँत गिनूँगा।

एक तपस्विनी—धृष्ट ! हमारे सन्तान-तुल्य जीवों को क्यों पीडा देता है ? तेरा क्रोध बढता जाता है। ऋषियों ने तेरा नाम सर्वदमन ठीक ही रक्खा है।

बालक को देखकर राजा को उस पर औरस पुत्र का-सा स्नेह हो आया। उन्होंने सोचा कि निःसन्तान होने के कारण इस पर मेरा प्रेम हो रहा है।

इस समय दूसरी तपस्विनी ने बालक से कहा—यदि तू सिंह के बच्चे को नहीं छोडेगा तो यह सिंहनी तुझ पर झपटेगी।

बालक ने मुस्कराकर 'ओह, मैं बहुत डर गया।" कहकर सिंहनी के बच्चे का, नीचे का, होंठ खींच लिया।

राजा को विस्मय हुआ। उन्हें यह बालक महातेजस्वी जान पड़ा।

एक तपस्विनी—वत्स ! उसे छोड दे, तुझे दूसरा खिलौना दूँगी।

"कहाँ है ? दो।" कहकर बालक ने हाथ फैला दिया।

'तब तक मैं इसी से खेलूँगा।' ऐसा कहकर बालक तपस्विनी को देखकर हँसा।

तपस्विनी ने अँगुली से निर्देश करके कहा—'अरे, मेरा कहा नहीं मानता। यहाँ कोई ऋषि कुमार है ?" फिर राजा को देखकर कहा—भद्र ! आओ, इस सिंह के बच्चे को, जो इस बालक की क्रीडा से पीडित हो रहा है मुक्त कर दो।

राजा ने पास जाकर मुस्कराकर कहा—अरे महर्षि-कुमार ! इस प्रकार आश्रम के विरुद्ध वृत्ति से तुमने, जीवों के आश्रयदाता संयमी पिता को चन्दनवृक्ष को कृष्ण-सर्प के शिशु के समान दूषित किया है।

तपस्विनी—भद्र ! यह ऋषिकुमार नहीं है।

दुष्यन्त—यह तो आकृति के सदृश इसकी चेष्टा ही कहती है। मैंने केवल स्थान के कारण ऐसा सोचा था।

राजा ने अब बालक का हाथ पकड लिया। इसके स्पर्श से उनके अङ्ग में सुख का सञ्चार हुआ।

तपस्विनी—आश्चर्य है ! इस बालक का तुमसे सम्बन्ध न होने पर भी तुम दोनों के आकार-सादृश्य से मैं विस्मित हूँ। और यह चञ्चल होने पर भी तुम्हारे अनुकूल हो गया है, यद्यपि तुम अपरिचित हो।

राजा—आर्ये ! यदि यह ऋषि-कुमार नहीं है तो किस कुल का है ?

तपस्विनी—पुरुवंश का।

के लिए, खींच रहा था। सिंह-शिशु से वह कह रहा था—मुँह खोल, तेरे दाँत गिनूँगा।

एक तपस्विनी—धृष्ट! हमारे सन्तान-तुल्य जीवों को क्यों पीड़ा देता है? तेरा क्रोध बढ़ता जाता है। ऋषियों ने तेरा नाम सर्वदमन ठीक ही रक्खा है।

बालक को देखकर राजा को उस पर औरस पुत्र का-सा स्नेह हो आया। उन्होंने सोचा कि निःसन्तान होने के कारण इस पर मेरा प्रेम हो रहा है।

इस समय दूसरी तपस्विनी ने बालक से कहा—यदि तू सिंह के बच्चे को नहीं छोड़ेगा तो यह सिंहनी तुझ पर झपटेगी।

बालक ने मुस्कराकर 'ओह, मैं बहुत डर गया।" कह-कर सिंहनी के बच्चे का, नीचे का, होंठ खींच लिया।

राजा को विस्मय हुआ। उन्हें यह बालक महातेजस्वी जान पड़ा।

एक तपस्विनी—वत्स! उसे छोड़ दे, तुझे दूसरा खिलौना दूँगी।

"कहाँ है? दो।" कहकर बालक ने हाथ फैला दिया।

दूसरी तपस्विनी—सुव्रता! यह निरी बातों से चुप न होगा। अतः जाओ, मेरी कुटिया में ऋषि-कुमार मार्कण्डेय का विचित्र वर्णोंवाला मिट्टी का मोर रक्खा है। उसे ले आओ।

"तब तक मैं इसी से खेलूँगा।" ऐसा कहकर बालक तपस्विनी को देखकर हँसा।

तपस्विनी ने अँगुली से निर्देश करके कहा—"अरे, मेरा कहा नहीं मानता। यहाँ कोई ऋषि कुमार है?" फिर राजा को देखकर कहा—भद्र। आओ, इस सिंह के बच्चे को, जो इस बालक की क्रीडा से पीडित हो रहा है, मुक्त कर दो।

राजा ने पास जाकर मुस्कराकर कहा—अरे महर्षि-कुमार। इस प्रकार आश्रम के विरुद्ध वृत्ति से तुमने, जीवों के आश्रयदाता संयमी पिता को, चन्दनवृक्ष को कृष्ण-सर्प के शिशु के समान, दूषित किया है।

तपस्विनी—भद्र। यह ऋषिकुमार नहीं है।

दुष्यन्त—यह तो आकृति के सदृश इसकी चेष्टा ही कहती है। मैंने केवल स्थान के कारण ऐसा सोचा था।

राजा ने अब बालक का हाथ पकड़ लिया। उसके स्पर्श से उनके अङ्ग में सुख का सञ्चार हुआ।

तपस्विनी—आश्चर्य है। इस बालक का तुमसे सम्बन्ध न होने पर भी तुम दोनों के आकार-सादृश्य से मैं विस्मित हूँ। और यह चञ्चल होने पर भी तुम्हारे अनुकूल हो गया है, यद्यपि तुम अपरिचित हो।

राजा—आर्ये। यदि यह ऋषि-कुमार नहीं है तो किस कुल का है?

तपस्विनी—पुरुवंश का।

राजा ने मन मे कहा कि मेरा और इसका एक ही कुल कैसे हुआ। इसी कारण यह तपस्विनी कहती है कि मेरे सदृश है। फिर प्रकट कहा—इस आश्रम मे निवास ते पैरवो का अन्तिम कुल व्रत है। फिर यहाँ तक मनुष्यो की पहुँच भी नहीं हो सकती।

तपस्विनी—आपका कहना ठीक है। अप्सरा के सम्बन्ध से इस बालक की माता ने यहाँ, देवगुरु के तपोवन मे, इसे उत्पन्न किया था।

यह सुनकर राजा ने सोचा कि यह आशा का दूसरा स्थान है। तपस्विनी से पूछने लगे—वह स्त्री किस राजर्षि की धर्मपत्नी है ?

तपस्विनी—उस धर्मपत्नी के त्याग करनेवाले का नाम कौन लेगा ?

दुष्यन्त ने सोचा कि यह कथा ते मुझ पर ही घटती है। अब सोचा कि इस बालक की माता का नाम पूछूँ परन्तु पर-स्त्री के विषय मे पूछना अनुचित समझकर वे चुप हो रहे।

इतने में पहली तपस्विनी सुव्रता मिट्टी का मोर लेकर आ गई। उसने कहा—सर्वदमन! यह शकुन्त-लावण्य (पक्षी की शोभा) देखो।

बालक—कहाँ है मेरी माता ?

दोनों तपस्विनियाँ हँस पड़ीं।

सुव्रता—यह नाम के सादृश्य से धोखा खा गया।

दूसरी तपस्विनी—वत्स! मैंने तो यह कहा है कि इस मिट्टी के मोर की शोभा को देखो।

राजा ने सोचा कि क्या इसकी माता का नाम शकुन्तला है, अथवा नामों की सदृशता भी सम्भव है। क्या यह नाम मृग तृष्णा के समान, इस प्रस्ताव पर, मेरे विषाद के लिए लिया गया है?

इतने मे सुव्रता ने उद्वेग से कहा—अरे, इसका रक्षा-कवच हाथ में नहीं दिखता।

राजा रक्षा-कवच को पास पडा देखकर उठाने लगे। दोनो तपस्विनियो ने रोका, परन्तु उन्होने उठा भी लिया। इससे दोनों तपस्विनियाँ विस्मित हो गई।

राजा—आपने मुझे क्यों रोका?

सुव्रता—महाराज! यह महान् प्रभाववाली अपराजिता नाम की दिव्य महौषधि है जिसे, इस बालक के जातकर्म के समय, भगवान् कश्यप ने दिया था। यह औषधि यदि भूमि पर गिर जाय तो इस बालक के माता-पिता को छोड़कर अन्य कोई इसे नहीं उठा सकता। यदि कोई उठा लेता है तो उसे यह सर्प बनकर डस लेती है।

राजा—तुमने पहले कभी ऐसा होते देखा है?

दोनों तपस्विनियाँ—अनेक बार।

अब तो राजा ने मनोरथ पूर्ण हुआ समझकर बालक को हृदय से लगा लिया।

वियोगिनी शकुन्तला को यह वृत्तान्त सुनाने के लिए दोनो तपस्विनियाँ चली गईं।

बालक ने दुष्यन्त से कहा—मुझे छोड दो। मैं माता के पास जाऊँगा।

दुष्यन्त—पुत्र! मेरे ही साथ चलकर माता को प्रसन्न करना।

बालक—मेरे पिता दुष्यन्त हैं, तुम नहीं।

इस विवाद से भी राजा को निश्चय हो गया।

इतने मे वहाँ, एक वेणी धारण किये हुए, शकुन्तला आ गई। नियम-व्रत आदि करते-करते वह क्षीण हो रही थी। उसके वस्त्र मैले थे। राजा ने उसे पहचान लिया। शकुन्तला ने राजा को पश्चात्ताप से विवर्ण हो रहे देखकर सोचा कि यह व्यक्ति मेरे स्वामी-सा नहीं है। तो फिर यह है कौन जो अब, रक्षा-कवच से रक्षित, मेरे पुत्र को अपने स्पर्श से दूषित करता है।

बालक माता को देखकर उसके पास चला गया और बोला—यह कौन है जो मुझे पुत्र कहकर स्नेह से मेरा आलिङ्गन करता है?

राजा ने शकुन्तला से कहा—प्रिये! मैंने तुम्हारे साथ कठोरता की है। पूर्व-वृत्तान्त से मेरा मोह-रूपी अन्धकार दूर हो गया। सौभाग्य से तुम मेरे सम्मुख खडी हो। ग्रहण के अन्त में चन्द्रमा का रोहिणी के साथ संयोग हुआ है।

शकुन्तला स्वामी को प्रणाम कहना चाहती थी किन्तु आँसुओं से कण्ठ रुद्ध हो जाने से न कह सकी।

"सुदमाङ्गी! हृदय से अस्वीकृति का दुःख हटा दो। उस समय मेरे मन को प्रबल मोह ने ढक रक्खा था।" ऐसा कहकर राजा दुष्यन्त शकुन्तला के पैरों पर गिर पड़े।

शकुन्तला ने उन्हें उठाते हुए कहा—नाथ! अवश्य पूर्व-जन्म में मेरे पुण्यों के प्रतिकूल चरित उन दिनों में सुखकारी न होकर परिणाम में सुखवाले थे। इसी कारण दयालु स्वामी ने मेरे साथ वैसा बर्ताव किया था। अच्छा, यह तो बताइए कि मुझ दुखिया का स्मरण आपको कैसे आया।

राजा ने शकुन्तला के आँसू पोंछकर कहा—इस अँगूठी की प्राप्ति से स्मरण आ गया।

इतने में मातलि ने वहाँ आकर कहा—सौभाग्य से आप आज धर्मपत्नी और पुत्र-मुख के दर्शन से भाग्यशाली हुए हैं। चलिए, भगवान् कश्यप आपको दर्शन देते हैं।

अब ये लोग भगवान् कश्यप के स्थान को गये। अदिति और भगवान् कश्यप दोनों एक आसन पर विराजमान थे। राजा ने श्रद्धा भक्ति से उन्हें प्रणाम किया। भगवान् कश्यप ने उन्हें आशीर्वाद दिया। अब पुत्र सहित शकुन्तला ने चरणवन्दना की। उन्हें आशीर्वाद देकर भगवान् कश्यप ने, एक एक की ओर सकेत करके कहा—सौभाग्य से साध्वी शकुन्तला से, इस सुपुत्र से, और आप

में क्रमश श्रद्धा, वित्त और विधि क सुप्रसिद्ध त्रिवर्ग का सयोग हुआ है।

राजा ने अब भगवान् कश्यप से शकुन्तला की स्मृति न आने का कारण पूछा। उन्होने कहा—अप्सरातीर्थ पर के कार्य से निवृत्त होकर मेनका जिस समय व्याकुल शकुन्तला का लेकर दाक्षायणी के पास आई थी उसी समय मैंने ध्यान से जान लिया था कि दुर्वासा के शाप से तुमने अपनी सहधर्मिणी का ग्रहण करने से अस्वीकार कर दिया है। इसमें और कोई कारण न था। उस शाप की अवधि अँगूठी के दर्शन तक थी।

राजा—सन्तोप है कि मैं अपवाद से मुक्त हो गया।

शकुन्तला ने मन में कहा कि सौभाग्य से मुझे स्वामी ने अकारण नहीं त्यागा था। मुझे शाप का स्मरण नहीं है। अथवा मुझ शून्य-हृदया ने वह शाप सुना ही न होगा। क्योंकि सखियों ने नम्रतापूर्वक मुझसे कहा था कि वह राजा जब तुम्हे स्मरण न करे तब यह अँगूठी दिखा देना।

भगवान् कश्यप ने अब शकुन्तला से कहा—बेटी! तेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। अब अपने स्वामी पर क्रोध न करना। शाप से स्मृति नष्ट हो जाने के कारण ही तू अस्वीकृत की गई थी।

भगवान् कश्यप ने अब बालक के विषय में कहा कि यह चक्रवर्त्ती होगा। यह सातों द्वीपों का विजेता होगा। यहा

पर जीवों का बलपूर्वक दमन करने से यह सर्वदमन है, आगे लोक का भरण करने से इसका नाम भरत होगा।

राजा—जिस बालक के संस्कार आपने किये हैं उससे हम सब आशाएँ करते हैं।

अदिति ने अब कण्व के पास, पुत्रों के मनोरथ की पूर्त्ति की, सूचना भेजने को कहा।

कश्यप—तप के प्रभाव से उन्हें सब प्रत्यक्ष है। किन्तु तब भी प्रिय सूचना हमें भेज देनी चाहिए।

उन्होंने शिष्य गालव को महर्षि कण्व के आश्रम में सूचना देने के लिए भेज दिया।

दुष्यन्त, शकुन्तला और कुमार भी विदा होकर, रथ पर चढ़कर, अपनी राजधानी को चल पड़े।

—

(६) उत्तर-रामचरित

(१)

रामचन्द्र के अभिषेक के समय अयोध्या में दिन-रात उत्सव होता रहा। अभिषेकोत्सव समाप्त होने पर लङ्का युद्ध के मित्र वानर और राक्षस तथा आशीर्वाद देने के लिए विभिन्न प्रदेशों से आये हुए ब्रह्मर्षि और राजर्षि विदा हो गये।

कुछ समय के अनन्तर अरुन्धती को आगे किये हुए राम की तीनों माताएँ, वशिष्ठ मुनि के साथ, जामाता ऋष्यशृङ्ग के यज्ञ में गईं। विभाण्डक मुनि के पुत्र ऋष्यशृङ्ग का विवाह शान्ता के साथ हुआ था, जिसे लोमपाद ने राजा दशरथ से गोद लिया था। ऋष्यशृङ्ग ने बारह वर्ष के यज्ञ का अनुष्ठान किया था। उनके अनुरोध से गुरुजन, पूर्ण गर्भवती जानकी को छोड़कर, वहाँ चले गये थे।

इन दिनों प्रजा में एक प्रवाद फैल रहा था। राक्षस के गृह में रहने के कारण सीता को अनेक लोग दोष देते थे। उन लोगों को अग्नि-परीक्षा में विश्वास नहीं था। परन्तु यह लोकापवाद अभी राम के कानों तक न पहुँचा था।

राजा जनक के चले जाने पर उदासीन सीता को राम आश्वासन दे रहे थे कि ऋष्यशृङ्ग के आश्रम में अष्टावक्र मुनि

आ गये। उनको प्रणाम आदि करने के पश्चात् सीता और राम ने स्वजनों का कुशल क्षेम पूछा।

कुशल समाचार निवेदन करके अष्टावक्र ने सीता से कहा—देवी! भगवान् वशिष्ठ ने तुम्हें कहा है—"पृथ्वी तुम्हारी माता है, प्रजापति के समान राजा जनक तुम्हारे पिता हैं, उन राजाओं की तुम पुत्र-वधू हो जिनके कुल के सूर्य और हम गुरु हैं। सो तुम्हारे लिए और कुछ आवश्यक नहीं यही आशीर्वाद है कि तुम वीर-जननी होओ"। भगवती अरुन्धती, माताओं तथा शान्ता ने बारम्बार कह दिया है कि सीता की प्रत्येक दोहद-इच्छा शीघ्र पूर्ण की जाय।

राम—वे तो जो कहती हैं उसकी पूर्त्ति कर दी जाती है।

अष्टावक्र फिर बोला कि ऋष्यशृङ्ग ने तथा माताओं ने यह कहा है—पुत्री! तुम पूर्ण गर्भवती हो, इस कारण तुम्हें साथ नहीं लाये। राम को तुम्हारे विनोद के लिए ही छोड़ दिया है। सो तुम आयुष्मती की गोद को हम पुत्र से भरी हुई देखेंगे।

राम—क्या भगवान् वशिष्ठ ने कुछ आदेश नहीं किया है?

अष्टावक्र—उन्होंने कहा है कि जामाता के यज्ञ से हम रुके हुए हैं। तुम अभी बालक हो, राज्य नया है।

तुम्हें प्रजा की प्रसन्नता में दत्तचित्त रहना चाहिए। इसी में यश है, जो तुम्हारे वंश का परम धन है।

राम—स्नेह दया, मित्रता किंबहुना जानकी को भी—प्रजा की प्रसन्नता के लिए—त्यागने में मुझे दुःख नहीं है।

सन्देश सुनकर राम ने अष्टावक्र के विश्राम करने के लिए लक्ष्मण को बुलाकर साथ कर दिया।

लक्ष्मण ने फिर आकर निवेदन किया—चित्रकार अर्जुन ने, मेरे कथनानुसार, वीथिका में आपके चरितों को अङ्कित कर दिया है। आप देख लें।

राम—चित्र कहाँ तक बने हैं?

लक्ष्मण—महारानी की अग्नि-परीक्षा तक।

राम—ऐसा मत कहो। जन्म से ही पवित्र रानी को अन्य शोधकों से क्या काम? वे तीर्थ, जल और अग्नि आदि अन्य पदार्थों से शुद्धि के योग्य नहीं हैं।

फिर सीता से कहा—हे यज्ञ से उत्पन्न हुई देवी! क्षमा करना। तुम्हारे जीवन भर के लिए यह प्रवाद हो गया। खेद है, हम जैसे कुलधनियों को प्रजा की प्रसन्नता का यत्न करना पड़ता है। सो मैंने जो अशुभ कठोर वचन कहे थे उनके लिए तुम क्षमा करना।

सीता—जाने दीजिए। चलिए, आपके चित्र को देखूँ।

फिर सब लोग उठकर चित्र देखने चले गये। चित्र में कई दृश्य बने थे। एक स्थान पर जृम्भक अस्त्र थे जो भग-

वान् कृशाश्व से विश्वामित्र को मिले थे तथा जिन्हें उन्होंने, ताटका वध से प्रसन्न होकर, राम को दे दिये थे। राम के आदेश से यही अस्त्र, भविष्य में, राम के पुत्रों को प्राप्त हुए। इसके आगे मिथिला में विवाह का दृश्य था। कहीं पर राम का चित्र था, कहीं पर जनक और शतानन्द वशिष्ठ आदि का सत्कार करते दिखाये गये थे। साथ ही चारों भाइयों के विवाह का चित्र था। सीता, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्त्ति चारों बहनों का भी चित्र था। इससे सीता के सामने मानो वही समय उपस्थित हो गया। परन्तु परशुराम का चित्र देखकर वे डर गईं।

अब लक्ष्मण ने अयोध्या के चित्र की ओर राम का ध्यान आकृष्ट किया। उसे देखकर राम को पिता का ध्यान आ गया।

लक्ष्मण ने मन्थरा का चित्र दिखाया।

परन्तु राम बिना कुछ कहे अगले चित्र को देखकर कहने लगे—यह शृङ्गवेर नगरी में इङ्गुदी का वृक्ष है जहाँ पर पहले मित्र निषादराज से हमारी भेंट हुई थी।

लक्ष्मण ने समझ लिया कि माता कैकेयी के वृत्तान्त को भाई ने छोड़ दिया है।

आगे पुण्य जलवाली भागीरथी नदी का चित्र था। राम ने भागीरथी से, सीता के कल्याण के लिए, सावधान रहने की प्रार्थना की।

फिर विन्ध्याचल के चित्र आरम्भ हो गये। पहले ही विराध-वध का चित्र था। आगे जनस्थान में प्रस्रवण पर्वत के दृश्य थे। एक ओर पञ्चवटी में शूर्पणखा का चित्र था। एक ओर हेम मृग के द्वारा राक्षसों की की हुई करतूत अङ्कित थी। इसके स्मरण में राम के नेत्रों में आँसू भर आये।

लक्ष्मण ने अब इनका ध्यान जटायु के चित्र की ओर आकर्षित किया। वहाँ दण्डकारण्य, चित्रकुञ्जवान्, ऋष्य-मूक पर्वत पर मतङ्ग ऋषि का आश्रम, सिद्ध शबरी और पम्पा आदि के दृश्य थे। अगले दृश्य में अञ्जना के पुत्र हनुमान् का चित्र था। परन्तु राम को, सीता के वियोग का स्मरण करके, अब इन चित्रों का देखना कठिन हो गया। सीता भी परिश्रान्त हो गई थीं। सो अब चित्र देखना छोड़कर सब लोग विश्राम करने लगे।

चित्रों के देखने से सीता को कुछ विचार हुआ। वे कहने लगीं—स्वामी! मुझे शान्त और घने वनों में विचरने की इच्छा होती है। मैं पवित्र भागीरथी में स्नान करना चाहती हूँ।

राम ने तुरन्त लक्ष्मण से कहा—वत्स! इनकी दोहद-इच्छा शीघ्र पूर्ण करनी चाहिए। गुरुजनों का भी यही सन्देश है। सो शान्त गति से चलनेवाला रथ लाओ।

सीता—स्वामी! आपको भी साथ चलना चाहिए।

राम—अरी कठोर हृदयवाली! क्या इसके कहने की आवश्यकता है?

लक्ष्मण रथ लेने गये। राम और सीता खिड़की के पास, विश्राम करने के लिए, लेट गये। चित्र देखने के परिश्रम से सीता थक गई थी। वे राम की बाँह पर सिर रखकर लेटी-लेटी सो गई। उन्हें देखकर राम मन में कहने लगे कि यह मेरी गृह लक्ष्मी है आँखों की अमृत वर्त्तिका है इसका स्पर्श शरीर के लिए चन्दन से बढ़कर शीतल है। इसका सब कुछ प्रिय है, केवल इसका विरह ही असह्य है।

इतने में राम को समीपवर्ती दुर्मुख दूत के आने का सूचना मिली। राम ने उसे बुला भेजा।

सीता इस समय नींद में बडबडा उठी—हा स्वामी! आप कहाँ है ?

राम ने समझा कि चित्र देखने से, विरह के भाव से, यह उद्विग्न हो रही है।

इतने में दुर्मुख आ गया। राम ने पूछा—कहो, क्या समाचार मिला है ?

दुर्मुख—सब प्रजा आपकी स्तुति करती है कि राम के कारण हम महाराज दशरथ की स्मृति को भूल गये हैं।

राम—यह तो मेरी प्रशंसा हुई। कोई दोष बतलाओ जो हटाया जाय।

दुर्मुख ने राम के कान में कुछ कह दिया। इससे वे मूर्च्छित हो गये। सचेत होकर उन्होंने कहा—हा! शोक है। सीता का, पराये गृह में रहने का, दूषण अद्भुत उपायों

से शान्त हो गया था। दुर्भाग्य से अब वह फिर, पागल कुत्ते के विष के समान, सर्वत्र फैल गया है। मैं अभागा क्या करूँ ?

राम ने फिर विचार कर कहा—और क्या करूँ ? अच्छे राजाओं को, जैसे बने प्रजा-रञ्जन करना चाहिए। मुझे भी भगवान् वशिष्ठ ने यही कहला भेजा है। अब यदि मेरे विषय में गर्हित लोकापवाद फैले तो मैं वस्तुत पापिष्ठ हूँ।

राम को सीता के पवित्र चरित्र पर सब प्रकार से विश्वास था। वे कहते थे कि यह देवयज्ञ से उत्पन्न हुई हैं, इसके जन्म से पृथ्वी पवित्र हुई है, पृथ्वी ही क्यों, तीनों लोक पवित्र हुए हैं। परन्तु खेद है कि उसी सीता के विषय में मनुष्यों का ऐसा घृणित कथन है।

राम ने अब दुर्मुख के कान में, लक्ष्मण से कहने के लिए कुछ कह दिया। यह सुनकर दुर्मुख कहने लगा—अग्नि में शुद्ध की गई, पवित्र रघुकुल की सन्तान की गर्भधारिणी, रानी के विषय में दुर्जनों के वचन से आप ऐसा क्यों सोचते हैं ?

राम—शान्त रहो। प्रजा दुर्जन कैसे है ? इक्ष्वाकु-वंश प्रजा को प्रिय है। दैव से निन्दा का बीज उत्पन्न हो गया है। और विशुद्धि के समय जो अद्भुत कृत्य दूर देश में हुआ था, उस पर कौन विश्वास करे ?

दुर्मुख चुपचाप आज्ञा-पालन करने को चला गया।

इस निश्चय के कारण राम अपने को धिक्कारते हुए कहने लगे कि म अति बीभत्स कर्म में घातक हो गया हूँ। बाल्यकाल से पाली हुई प्रिया को मैं छल से मृत्यु के मुँह में वैसे ही ढकेल रहा हूँ जैसे मांस-विक्रेता, पाले हुए, पक्षी का वध कर। सो मैं तो पातकी और स्पर्श के अयोग्य ठहरा। अतः मैं देवी को क्यों दूषित करूँ? ऐसा विचार कर राम ने, सीता के सिर के नीचे से, अपनी बाँह धीरे से निकाल ली। वे कहने लगे कि अरी मूढ़! मुझे छोड़ दे, मैं तो चाण्डाल का-सा कर्म कर रहा हूँ। तूने, चन्दन-वृक्ष के भ्रम में, भयङ्कर विष-वृक्ष का आश्रय लिया है। मैं निरुपाय हूँ। क्या करूँ? इस प्रकार सन्तप्त होकर राम रोने लगे।

इतने मे बाहर से 'बचाओ! बचाओ" का शब्द सुनाई दिया। राम ने इस शब्द का कारण जानने को कहा। सूचना मिली कि लवण से पीडित होकर ऋषि लोग, रक्षा के लिए, आये हैं।

राम ने क्रोध से कहा कि आह, अब भी राक्षसों का भय बना हुआ है? ऋषियों की रक्षा के लिए उन्होंने शत्रुघ्न को भेज दिया।

अब भगवती वसुन्धरा की पुत्री जानकी की रक्षा के लिए प्रार्थना करके वे चले गये।

सीता निद्रा में फिर बोली—हा! स्वामी! आप कहाँ हैं? फिर सहसा उठकर सीता कहने लगी—हा! शोक

है। बुरे स्वप्न से ठगी हुई मैं स्वामी को पुकार रही हूँ। ओह! स्वामी मुझे अकेली छोड़कर चले गये। यह क्या? अच्छा, जब उन्हें देखूँगी तब वश में हुई तो, कोप करूँगी।

इतने में दुर्मुख रथ लेकर आ गया। उसने सीता से कहा—रानी! कुमार लक्ष्मण निवेदन करते हैं कि रथ तैयार है, चढ़िए।

सीता रथ पर चढ़ कर वन के लिए चली गई। साथ लक्ष्मण थे।

(२)

बारह वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन वनदेवी ने एक तापसी का फल पुष्प-पल्लव के अर्घ्य में अतिथि सत्कार किया। यह तापसी आत्रेयी थी। वनदेवी ने पूछा—देवी। आप कहाँ से आ रही हैं, दण्डक वन में आने का क्या प्रयोजन है?

आत्रेयी—यहाँ अगस्त्य आदि अनेक सामवेदी ऋषि रहते हैं। उनसे वेदान्त पढ़ने के लिए मैं, वाल्मीकि के पास से, आई हूँ।

वनदेवी ने विस्मित होकर कहा—जब अन्य मुनि भी उसी पुरातन ब्रह्मवादी प्राचेतस् ऋषि की सेवा में, वेदाध्ययन के लिए, उपस्थित होते हैं तब आप यह दीर्घ प्रवास का यत्न क्यों करती हैं?

आत्रेयी—वहाँ अध्ययन में बाधा है। उन ऋषिजी के पास, सब प्रकार से अद्भुत, दो दुधमुँहे शिशुओं को कोई देवता ले आया है। वे शिशु न केवल ऋषियों के, प्रत्युत चराचर जीवों के भी अन्त करण को स्नेह-युक्त करते हैं।

वनदेवी—आप उनके नाम जानती हैं?

आत्रेयी—कहा जाता है कि उस देवता ने ही उनके नाम कुश-लव बताकर उनका प्रभाव बतला दिया है। उन शिशुओं का जन्म से ही जृम्भकास्त्र, रहस्य-सहित, सिद्ध हैं।

यह सुनकर वनदेवी विस्मित हुई।

आत्रेयी ने फिर कहा—वास्तव में उन शिशुओं को महर्षि वाल्मीकि ने, धाय की तरह, पाला है। चूड़ाकर्म हो जाने पर, वेद के अतिरिक्त, अन्य सब विद्याएँ वाल्मीकि ने उन्हें साव-धानी से पढ़ा दीं। इसके अनन्तर ग्यारहवें वर्ष में क्षात्र-विधि के अनुसार यज्ञोपवीत हो जाने पर, उन्हें तीनों वेद पढ़ा दिये। उन कुशाग्रबुद्धि मेधावी बालकों के साथ हम जड़ बुद्धिवालों के सहाध्ययन का योग नहीं है।

वनदेवी—क्या अध्ययन में यही विघ्न है?

आत्रेयी—और भी है। वे ब्रह्मर्षि एक बार माध्यन्दिन-सवन के लिए तमसा नदी को गये। वहाँ उन्होंने क्रौञ्चयुगल में से एक को व्याध से बिँध जाते देखा और अकस्मात् स्फुरित सुबद्ध वर्णों-सहित अनुष्टुप् छन्द में परिणत वाग्देवी का वचन कहा—

['मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम् ॥']
रति विलास की चाह सों, मदमाती सानन्द ।
पाँचनि की जोड़ी फिरत विहरत जो स्वच्छन्द ॥
हनि तिनमें सों एक को, कियो परम अपराध ।
जुग जुग लों तोहि नहिं मिलहिं, कबहुँ बड़ाई व्याध ॥

यह छन्द सुनकर वनदेवी ने कहा—यह तो वेद से भिन्न नये छन्द का निर्माण हुआ है ।

आत्रेयी—तब समय पर प्रकट हुए शब्द-ब्रह्मप्रकाश-युक्त उक्त ऋषि से, पास आकर, भूतभावन ब्रह्मा ने कहा—'हे ऋषि ! तुम शब्द-स्वरूप ब्रह्म में प्रबुद्ध हो, सो रामचरित कहो । तुम्हारी प्रतिभा की आर्ष-चक्षु की ज्योति निर्विघ्न प्राप्त होगी । तुम आदिकवि हो ।" ब्रह्मा के अन्तर्धान हो जाने पर भगवान् प्राचेतस् ने पहले पहल, मनुष्यलोक में, शब्द-ब्रह्म के उस विवर्त्त को इतिहास-रामायण में रचा । अच्छा, यह मैंने विघ्न बतला दिया । अब मुझे अगस्त्य के आश्रम का मार्ग बताओ ।

मार्ग बताती हुई वनदेवता ने कहा—यहाँ से पञ्चवटी में जाकर गोदावरी के तीर ही तीर चली जाइए ।

आत्रेयी ने आँखों में आँसू भरकर पूछा—तो यह तपोवन है, यह पञ्चवटी है, यह गोदावरी है, यह प्रस्रवण पर्वत है, और आप हैं जनस्थान की देवी वासन्ती ?

वासन्ती—हाँ, यह सब ठीक है।

आत्रेयी—सीता के सम्बन्धवाले पदार्थ आदि से मेरे सामने अब केवल नामशेष सीता दिखाई देती है।

वासन्ती ने भयभीत होकर कहा—सीता देवी का क्या अनिष्ट हुआ ?

"केवल अनिष्ट ही नहीं प्रत्युत अपवाद भी।" इतना कहकर आत्रेयी ने वासन्ती के कान में कुछ कह दिया।

वासन्ती मूर्च्छित हो गई। सचेत होकर पूछने लगी—उस वन मे लक्ष्मण-द्वारा त्याग दी जाने पर सीतादेवी का क्या हुआ ? कुछ सुना है ?

आत्रेयी—कुछ नहीं सुना।

इस उत्तर से दुःखित होकर वासन्ती कहने लगी—अरुन्धती वशिष्ठ आदि से अधिष्ठित और वृद्धा स्त्रियो के जीवन-काल में रघुकुल मे यह कैसे हुआ ?

आत्रेयी—तब गुरुजन ऋष्यशृङ्ग के यज्ञ मे गये थे। अब बारह वर्षों का यज्ञ समाप्त होने पर, ऋष्यशृङ्ग से सत्कृत होकर, गुरुजन विदा हुए हैं। तब भगवती अरुन्धती ने कहा कि मैं सीता से शून्य अयोध्या में न जाऊँगी। राम की माताओं ने भी इसका अनुमोदन किया। यह अनुरोध मानकर भगवान् वशिष्ठ ने वाल्मीकि के तपोवन में जाकर निवास करने का विचार किया।

वासन्ती—इसके अनन्तर उस राजा ने क्या किया ?

आत्रेयी—उस राजा ने अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ किया है।

वासन्ती ने विस्मय के साथ पूछा—तो क्या राम ने विवाह भी कर लिया ?

आत्रेयी—उन्होंने सीता की सुवर्ण-प्रतिमा बनवाई है।

इस पर वासन्ती ने कहा—हा! श्रेष्ठ पुरुषों के वज्र में भी कठोर और कुसुम में भी कोमल हृदयों को जानने में कौन समर्थ है ?

आत्रेयी ने फिर कहा—यज्ञ का अश्व छोड दिया गया है। वामदेव ने मन्त्रों द्वारा उस अश्व की पूजा की थी। विधि के अनुसार उसके रक्षक नियुक्त किये गये हैं। दिव्यास्त्रों से सज्जित चतुरङ्गिणी सेना के साथ लक्ष्मण का पुत्र चन्द्रकेतु भेजा गया है।

वासन्ती ने स्नेह से कहा—अहा! कुमार लक्ष्मण के भी पुत्र है। मैं सौभाग्यवती हूँ।

आत्रेयी ने आगे कहा—इसके अनन्तर एक ब्राह्मण मृत पुत्र को राज द्वार पर लाकर, अपनी छाती पीटकर, रक्षा करने के लिए चिल्लाने लगा। तब "राजा के दुर्व्यवहार के बिना प्रजा में अकाल-मृत्यु नहीं होती" यह सोचकर, अपना दोष देखने पर, करुणामय रामचन्द्र को सहसा एक दिव्य वाणी हुई—शम्बूक नाम का वृषल पृथ्वी पर तप कर रहा है। तुम उसका शिरच्छेद करके ब्राह्मण को पुनर्जीवित करो।

यह सुनकर उस शूद्र तपस्वी को ढूँढने के लिए तलवार हाथ में ले, पुष्पक-विमान पर चढ़कर, सब दिशाओं में जगत्पति राम ने विचरना आरम्भ किया है।

यह सुनकर वासन्ती को आशा हुई कि कदाचित् राम इस वन को फिर अलङ्कृत करें।

उधर सौभाग्य से वन की दूसरी ओर पुष्पक-विमान पर चढ़े हुए राम ने सचमुच प्रवेश किया। अपनी इच्छा के विरुद्ध उन्होंने किसी प्रकार प्रहार करके शूद्र का वध किया और प्रार्थना की कि वह ब्राह्मण का पुत्र पुनर्जीवित हो जाय।

इसी समय एक दिव्य पुरुष प्रकट हो गया। उसने कहा—मैं तुम्हारे चरणों में सिर झुकाता हूँ। यम से भी अभय किये जाने पर, और तुम्हारे दण्ड धारण करने पर, वह शिशु पुनर्जीवित हो। यह दिव्य रूप मेरी सम्पदा है। सत्सग से उत्पन्न मृत्यु भी श्रेयस्कर है।

यह दृश्य देखकर राम प्रसन्न हो गये। वे कहने लगे—मुझे दोनों बातें प्रिय हैं। सो अपने उग्र तप का फल भोगो।

शम्बूक—यह आपके चरणों की महिमा है, न कि तपस्या का फल। अन्यथा कहाँ तो अयोध्या और कहाँ दण्डक वन में आपका आगमन।

राम विस्मित होकर बोले—क्या यह दण्डक वन है?

शम्बूक—यही दण्डक वन है। सुना है, यहाँ रहकर

हले आपने चौदह सहस्र क्रूर राक्षसों और खर, दूषण तथा त्रिशिरा को युद्ध में मारा था। इस कारण सिद्ध तत्र जन-स्थान में मेरे जैसे भीरु जनों को विचरना निर्भय हो गया है।

अब राम ने समझ लिया कि यह न केवल दण्डक वन है वरञ्च जनस्थान भी है। जनस्थान के विचार में राम को सब पूर्व वृत्तान्त प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। उन्हें सीता का स्मरण हो आया। वे चारों ओर देखकर कहने लगे—यह वही वन है जो वैदेही को बहुत प्रिय था। इससे अधिक भयानक और क्या होगा?

राम के नेत्र सजल हो गये। शम्बूक ने वन के मनोहर दृश्य द्वारा उनके चित्त को स्वस्थ करना चाहा, परन्तु निष्फल था। राम ने आँसू पोंछकर उसे विदा किया।

शम्बूक भी, शाश्वत स्थान को जाने से पहले, अगस्त्य ऋषि को प्रणाम करने चला गया। अब राम अकेले फिर पहले सीता के साथ रहने के दिनों के चिन्तन में मग्न हो गये। स्मरण आया कि यह वही पञ्चवटी है जहाँ चिरकाल तक निवास करने से विविध स्वच्छन्द विहारों की अधिकता के साक्षी प्रदेश हैं और प्रिया की प्रिय सखी वासन्ती रहती है। आ मुझे यह क्या हो गया? चिरकाल से घनीभूत शोक, न के समान, मुझे वैसे ही व्याकुल करता है, जैसे तीव्र विष फै कर चिरकाल के पश्चात् वेगपूर्वक पीड़ा देता है, अथवा भीतर बाण का टुकड़ा वेग से हिल रहा हो, अथवा जैसे

मास आ जाने से बन्द हुए—हृदय के मर्मों में फोडा फिर से फूट पडा हो।

राम अब पूर्व-परिचित प्रदेश के भागों को देखने लगे। पञ्चवटी उन्हें बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षित करने लगी। इतने में शम्बूक ने आकर निवेदन किया कि भगवान् अगस्त्य, मुझसे आपका आगमन सुनकर, कहते हैं कि लोपामुद्रा तथा अन्य सब महर्षि आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आप दर्शन देकर उन्हें सत्कृत करें।

राम ने अगस्त्य की आज्ञा स्वीकार कर ली। अब दोनों उधर चले गये।

(३)

तमसा नदी ने मुरला को शीघ्रता से जाते देखकर पूछा—सखी मुरला! तुम व्याकुल-सी क्यों हो?

मुरला—भगवती तमसा। भगवान् अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने नदी-श्रेष्ठ गोदावरी से यह कहने के लिए मुझे भेजा है—'तुम जानती ही हो कि वधू का त्याग कर देने से राम का शोक, गम्भीर स्वभाव के कारण, हृदय में अव्यक्त महान् व्यथा से—बन्द पात्र में उबाले जाने के समान—कैसा भीषण है। और उस दीर्घ शोक के सन्ताप से अब राम अत्यन्त क्षीण हो गये हैं। उन्हें देखकर मेरा हृदय काँपता-सा है। अब राम लौटते हुए अवश्य ही पञ्चवटी में स्त्री के साथ रहने के स्वच्छन्द विहारों के साक्षी प्रदेश को देखेंगे।

सहज गम्भीर राम के लिए स्थान स्थान पर, पूर्व-स्मृति से उत्पन्न क्षोभ और शोकावेग के कारण, अनिष्ट का भय है। भगवती गोदावरी! तुम सावधान रहना। जब कभी राम मूर्च्छित हों तब तुम शीतल जल कणों में युक्त, कमल-पराग से सुवासित, वायु प्रेरित कर उन्हें प्रसन्न करना।

तमसा—यह उदारता उनके स्नेह के योग्य ही है। राम के सञ्जीवन का उपाय तो प्रथम से ही प्रस्तुत है। सुना है, पहले वाल्मीकि के तपोवन के निकट जब लक्ष्मण सीता-देवी को त्यागकर चले गये, तब प्रसव-वेदना के अत्यधिक दुःख के कारण वे गङ्गाजी में कूद पड़ीं। तब वहाँ उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए। पृथ्वी और गङ्गादेवी, अनुग्रह कर, उन्हें रसातल ले गईं और दूध छोड़ देने पर दोनों शिशुओं को गङ्गादेवी ने प्राचेतस् महर्षि को स्वयं समर्पण कर दिया।

मुरला यह सुनकर विस्मय से कहने लगी—ऐसे महात्माओं का दुःख भी परम अद्भुत हो जाता है, जहाँ गङ्गा आदि जैसे जन उपकार करने को प्रस्तुत होते हैं।

तमसा ने आगे कहा—अब शम्बूक के वृत्तान्त से राम के जनस्थान में आने की सम्भावना को सरयू के मुख में सुनकर भगवती भागीरथी, जो शङ्का लोपामुद्रा ने स्नेह से की थी वही शङ्का करके, सीता के साथ किसी गृह-कार्य के ब्याज से गोदावरी को देखने आई हैं। इसी कारण भगवती भागीरथी ने सीता से कहा है—बेटी यज्ञात्मजा! आज ही चिरञ्जीव

कुश-लव की बारहवीं वर्ष-गाँठ है। सो अपने पुरातन ससुर मनु के राजवंश के प्रवर्त्तक पापनाशक सूर्यदेव की अपने हाथों चुने हुए पुष्पों से पूजा करो। मेरे प्रभाव से तुम्हें, वनदेवता भी, पृथ्वी पर चलते न देखेंगे, मनुष्यों की तो बात ही क्या? उन्होंने मुझे आज्ञा दी है कि तमसा! जानकी तुमसे अत्यन्त प्रेम करती है, सो तुम्हीं इसकी सखी बनो। अतः मैं आज्ञा पालन के लिए उपस्थित हूँ।

मुरला यह वृत्तान्त जानकर लोपामुद्रा से कहने चली गई।

उधर एक ओर सीता पुष्प चुन रही थीं। वहाँ तमसा भी पहुँच गई।

इसी समय एक ओर से शब्द हुआ—विमानराज! यहीं ठहर जाओ।

यह सुनकर सीता चौंक पड़ीं। फिर हर्ष और क्षोभ से वे कहने लगीं—अहो! यह शब्द कहाँ से मुझ अभागिनी को तुरन्त आश्वासन दे रहा है। यह तो स्वामी का ही शब्द है।

तमसा—सुना है कि तपस्या करते हुए शूद्र को दण्ड देने के लिए इक्ष्वाकु-वंशी राजा जनस्थान में आये हैं।

सीता—सौभाग्य से वे राजधर्म में दत्तचित्त हैं।

सीता ने उधर देखा तो क्षीणशरीर स्वामी को पहचानकर वे मूर्च्छित हो गईं।

उधर, उसी ओर, राम ने कहा—इस पञ्चवटी के दर्शन से आज, हृदय में प्रज्वलित दुःखाग्नि के धूम से पीड़ित हुआ-

सा, मोह पहले मुझे व्याप्त कर रहा है। फिर व्याकुलता से जानकी को पुकारते हुए वे मूर्च्छित हो गये।

सीता इस समय अचेत हो गई थीं। वे राम को मूर्च्छित होते देखकर, अत्यन्त दुःखित हो, विलाप करने लगीं। उन्होंने तमसा से पति की जीवन-रक्षा के लिए प्रार्थना की।

तमसा—तुम्हारे हाथ का स्पर्श उनको प्रिय है। तुम्हारे स्पर्श से मङ्गल होगा।

तमसा के कहने से सीता, पास जाकर, राम का स्पर्श करने लगीं। राम सचेत हो गये। वे सोचने लगे कि यह क्या है। यह तो निःसन्देह वही स्पर्श है जो पहले से परिचित है।

अब राम बैठकर कहने लगे—क्या मुझ पर प्रिय सीता ने अनुग्रह नहीं किया है?

ऐसा कहकर राम उन्हें खोजने लगे।

सीता—भगवती तमसा! मैं पीछे हटी जाती हूँ। यदि मुझे देख लेंगे तो बिना आज्ञा के निकट होने से महाराज मुझ पर अधिक क्रोध करेंगे।

तमसा—बेटी! भागीरथी के वर के प्रभाव से तुम तो वनदेवताओं के लिए भी अदृश्य हो।

सीता को ढूँढते हुए राम करुणा से पुकारने लगे—हा! प्रिय जानकी! तू यहाँ भी कहीं नहीं है।

सीता ने सोचा कि अकारण त्याग देने पर भी इनके इस प्रकार दर्शन से मेरा हृदय न जाने कैसा हो गया है।

राम ने सीता को न पाकर कहा—अथवा मेरी प्रियतमा यहाँ कहाँ ? अवश्य ही यह निरन्तर चिन्ता की चतुराई से उत्पन्न हुआ भ्रम है।

इस समय वनदेवी वासन्ती भी राम के पास आ गई।

कदम्ब-वृक्ष पर मोरनी के साथ षड्ज ध्वनि करता हुआ, सीता का अत्यन्त प्रिय, मोर वासन्ती ने राम को दिखाया। उसका सीता से ताली द्वारा नचाये जाने का स्मरण राम को भी आ गया। उन्हें यह भी स्मरण आया कि इस कदम्ब को भी सीता ने सींचकर बढ़ाया है।

वासन्ती ने अब राम को शिलातल पर बैठा कर कहा—यह वही शिलातल है जहाँ सीता के साथ आप शयन करते थे। इन हरिणों ने अब तक इसे नहीं छोड़ा है, क्योंकि यहाँ पर बैठी सीता बहुधा इन्हें घास खिलाती थी।

यह दृश्य देखने में असमर्थ हो राम रोने लगे।

सीता—सखी वासन्ती! मुझे और महाराज को यह दिखाकर तुमने क्या किया? हा शोक! वही स्वामी हैं, वही पञ्चवटी है, वही प्रिय सखी वासन्ती है, वही विविध स्वच्छन्द विहारों के साक्षी गोदावरी के वनस्थान हैं, वही अपनी सन्तान के समान मृग, पक्षी और वृक्ष हैं और वही मैं हूँ। फिर मुझ मन्दभागिनी के देखते हुए भी सब कुछ वह नहीं है। संसार में ऐसा परिवर्तन!

वासन्ती ने, विषय बदलने के विचार से, कहा—

"महाराज! लक्ष्मण तो कुशल से हैं न?" परन्तु राम ने यह प्रश्न नहीं सुना। वे तो सीता की चिन्ता में व्याकुल थे।

वासन्ती ने फिर कहा—महाराज! मैं पूछती हूँ कि कुमार लक्ष्मण तो सकुशल हैं न?

राम ने सोचा—'महाराज' सम्बोधन-पद प्रेम-भाव से शून्य है, लक्ष्मण के विषय में ही, आँसुओं से स्खलित अक्षरों में, कुशल प्रश्न किया गया है। सो मेरा अनुमान है कि यह सीता का वृत्तान्त जानती है। उन्होंने अब प्रकट रूप में वासन्ती से कहा—हाँ, कुमार कुशल से हैं।

अब राम रोने लगे।

वासन्ती—राजन्! इतने कठोर क्यों हो?

सीता—सखी वासन्ती! तुम ऐसा क्यों कहती हो? ये स्वामी सबके प्रियपात्र हैं, विशेष कर मेरी प्रिय सखी के।

राम—लोग सहन नहीं करते।

वासन्ती—क्यों?

राम—जो कुछ भी है वही जानते हैं।

तमसा—तब डाँट उचित है।

वासन्ती—हे कठोर! तुम्हें यश प्रिय है। इससे और घोर अयश क्या होगा? मृगनयनी का वन में क्या हुआ? नाथ! शोक है। कहो, तुम क्या समझते हो?

यह उपालम्भ सुनकर सीता ने कहा कि सखी वासन्ती!

तुम्हीं अत्यन्त कठोर हो जो प्रदीप्त महाराज को इस प्रकार प्रदीप्त करती हो।

तमसा—प्रेम और शोक इसको कहते हैं।

राम—मैं यहाँ क्यों सोचूँ ? गर्भभार से आलसी भय-भीत, एक वर्ष के मृग-शावक के समान विलोल-दृष्टिवाली, उसकी मृणाल के समान मृदु, प्रकाशमयी देहलतिका को हिंसक पशुओं ने अवश्य नष्ट कर डाला है।

सीता—स्वामी ! मैं जीवित हूँ।

'जानकी कहाँ है', कहकर राम रोने लगे। सीता व्याकुल हो गई।

तमसा—बेटी ! यह उचित ही है, क्योंकि पूरे भरे हुए तालाब का बह जाना ही ठीक है। शोक से क्षुब्ध हृदय प्रलाप से स्थिर होता है।

हृदय के आवेग से राम फिर कहने लगे—आह ! बड़ा कष्ट है। घोर उद्वेग से क्षुब्ध हृदय क्यों नहीं फट जाता ! यह विकल शरीर मोह को प्राप्त होता है परन्तु चेतनता को नहीं छोड़ता। मन का सन्ताप शरीर को दग्ध करता है, भस्म नहीं कर देता। मर्मस्थलों को काटनेवाला दुर्भाग्य प्रहार तो करता है, जीवन को नहीं काट देता।

राम को इस प्रकार शोक-विह्वल देखकर वासन्ती ने कहा—भूतकाल के विषय में महाराज धैर्य रक्खें।

राम—धैर्य कैसा ? देवी को छोड़े यह बारहवाँ वर्ष है। 'सीता' नाम भी लुप्त हो गया और राम अभी जीते हैं।

इन वचनों से सीता मोहित हो गई। कहने लगीं कि मैं मन्दभागिनी फिर भी स्वामी को क्लेशदायिनी हुई।

राम तीव्र शोक के सन्ताप से मूर्च्छित हो गये।

सीता अपने लिए उन्हें बारम्बार मूर्च्छित होते देखकर व्याकुलता में स्वय मूर्च्छित हो गई।

तमसा ने सीता को आश्वासन देकर कहा—फिर तुम्हारा हस्त स्पर्श ही राम के सञ्जीवन का उपाय है।

सीता ने शीघ्र राम के पास जाकर उनको स्पर्श किया। राम पुन सचेत होकर कहने लगे—अकस्मात् फिर वही सस्पर्श मुझे जीवित करता है। आँखें बन्द किये हुए ही वे कहने लगे—सखी वासन्ती! जानकी फिर मिल गई।

वासन्ती—महाराज! वे कहाँ हैं ?

राम ने स्पर्श-सुख का अनुभव करके कहा—देखो, यह सामने ही है।

वासन्ती—अरे! इन मर्मच्छेदी कठोर प्रलापों से, प्रिय सखी के दु ख से दग्ध हुई, मुझ मन्दभागिनी को फिर क्यों जलाते हो ?

"वासन्ती! प्रलाप कैसा ? यह उसका वही हिम के समान मनोहर, कोमल लवली-लता के समान सुशीतल हाथ मैंने प्राप्त कर लिया है।" यह कहकर राम ने सीता का हाथ पकड़ लिया।

सीता ने हाथ छुडा लिया।

राम—हाय! अनर्थ हो गया। उसका कर-पल्लव मेरे जड हाथ से सहसा छूट गया। फिर सब ओर देखकर वे कहने लगे—हा! क्या वह यहाँ नहीं है? वैदेही अवश्य कठोर है।

सीता ने यह सुनकर कहा कि मैं सचमुच कठोर हूँ, जो आपको इस दशा में देखकर भी जीवित हूँ।

राम ने फिर कहा—तुम कहाँ हो! रानी! प्रसन्न हो जाओ। मुझे इस प्रकार त्यागना तुम्हे उचित नहीं।

सीता—स्वामी! यह विपरीत ही है।

वासन्ती—महाराज! शान्त हूजिए। महान् भ्रम को रोकिए। मेरी प्रिय सखी सीता यहाँ कहाँ?

राम—सचमुच वह नहीं है, अन्यथा तुम भी उसे क्यों न देख सकतीं? यह स्वप्न ही है, पर मैं सोया हुआ नहीं हूँ। राम को निद्रा कहाँ? यह वही भ्रम है, जो अनेक बार कल्पना से बना है और जो बारम्बार मुझे पीडा देता है।

सीता—मुझ कठोर ने ही स्वामी को छला है।

राम—वासन्ती! राम का मिलना मित्रों को दुःख का ही कारण है। कितनी देर तक तुम्हे रुलाऊँ? लो, मुझे जाने की आज्ञा दो।

सीता ने उद्वेग से तमसा के गले लगकर कहा—भगवती तमसा! क्या स्वामी जा रहे हैं?

अब सीता मूर्च्छित हो गई।

तमसा—बेटी! धीरज धरो। हम भी, चिरञ्जीव कुश और लव की वर्षगाँठ के मङ्गल-कार्य के लिए भागीरथी के चरणों के समीप जा रही हैं।

सीता—भगवती! कृपा करो, क्षण भर मैं इन दुर्लभ स्वामी को देख लूँ।

राम—और अब अश्वमेध के लिए मेरी सहधर्मिणी

सीता ने काँपते हुए कहा—स्वामी? वह कौन?

राम—सीता की सुवर्ण प्रतिमा है।

यह सुनकर सीता ने दीर्घ निःश्वास लेकर, आँखों में आँसू भर के, कहा—अब आप यथार्थ में मेरे स्वामी हैं। मेरे परित्याग की लज्जा का शल्य आपने निकाल दिया है।

राम—वहीं मैं उसे देखकर जलपूर्ण नेत्रों को शीतल करूँगा।

सीता ने इस समय कहा—वह धन्य है जो स्वामी से इतना मान पाती है, और जो स्वामी का मनोरञ्जन करती हुई उनकी आशा का कारण बनी है।

यह सुनकर तमसा ने सीता को गले लगाकर मुस्कराहट और स्नेह से कहा—अरी बेटी! इस प्रकार अपनी स्तुति आप करती है।

सीता ने लज्जित होकर सिर झुका लिया। तमसा उन्हें अपने साथ लेकर चलने लगी। राम के चरण-कमलों में प्रणाम करके सीता मूर्च्छित हो गई। तमसा ने उन्हें सचेत किया।

राम विमान-राज पर चढकर विदा हुए।

(४)

एक दिन अनेक अतिथियों की विशिष्ट सत्कार की सामग्री से भगवान् वाल्मीकि का आश्रम रमणीय हो रहा था। इन गुरुजनों के आने से शिष्यों को छुट्टी मिल गई। ऋष्यशृङ्ग ऋषि के आश्रम से, अरुन्धती के साथ महाराज दशरथ की स्त्रियों को लिये हुए, भगवान् वशिष्ठ यहाँ पधारे थे। इनके आने से पहले राजर्षि जनक भी यहाँ आ चुके थे। सीता देवी की वैसी विपत्ति को सुनकर राजर्षि जनक वानप्रस्थी हो गये थे। इधर कुछ वर्षों से वे चन्द्र-द्वीप के तपोवन में तपस्या कर रहे थे। अब वे अपने पुराने मित्र वाल्मीकि को देखने आये थे।

भगवान् वशिष्ठ ने अरुन्धती-द्वारा कहलवाया कि महारानी कौशल्या स्वयं जाकर राजा जनक से मिलें। वेद-पारङ्गत राजर्षि जनक इस समय वाल्मीकि और वशिष्ठ से मिलकर, आश्रम के बाहर, वृक्ष के नीचे बैठे थे। वे सीता की ही चिन्ता कर रहे थे—हाय। माता। देवयज्ञ से उत्पन्न सीता। तेरी

भाग्य-लिपि का ऐसा परिणाम है जिसमें लज्जा के कारण इच्छानुसार रो भी नहीं सकता।

फिर गृष्टि कञ्चुकी भगवती अरुन्धती और कौशल्या को जनक के पास पहुँचाने गया। कौशल्या को देखकर जनक कहने लगे—हा! महाराज दशरथ की धर्मपत्नी कौशल्या दुःख से कैसी हो रही हैं! कौन विश्वास करेगा कि ये वही हैं?

परन्तु कौशल्या को देखकर शीघ्र ही एक और विचार उठा। कहने लगे—यह दशा-परिवर्तन का दूसरा पाप है। जो व्यक्ति मुझे पहले मूर्तिमय महोत्सव सा दीख पड़ा था उसी का दर्शन, क्षत पर क्षार के समान, मुझे असह्य हो गया है।

उधर जनक को देखकर कौशल्या का दुःख उमड़ आया। वे कहने लगीं—ऐसे समय में मिथिलाधीश को देखकर एक साथ ही सब दुःख प्रकट हो गये हैं। मैं तो आधार-हीन हृदय को स्वस्थ रखने में असमर्थ हूँ। प्रिय वधू के इस प्रकार उत्पीडित होने पर उस राजर्षि को मुँह कैसे दिखाऊँ?

प्रणाम आदि के अनन्तर जनक ने कञ्चुकी गृष्टि से पूछा—प्रजापालक की माता क गृह में तो कुशल है?

गृष्टि ने मन में कहा कि हमें सब प्रकार से, अति निष्ठुरता से, उलहना दिया गया है। फिर जनक से कहा—राजर्षि! चिरकाल से राम के मुखचन्द्र को न देख पाने के कारण शोक-सन्तप्त महारानी को दुःखित करना आपको उचित नहीं। राम पर भी कोई दैवी कोप था, इसी से सब ओर घृणित अपवाद

फैलानेवाले क्षुद्र प्रजाजन अग्निशुद्धि को स्वीकार नहीं करते थे। तभी तो यह दारुण कर्म करना पड़ा।

जनक ने यह सुनकर क्रोध में कहा—आह! हमारी सन्तान का परिशोधन अग्नि करे? शोक है। राम द्वारा तिरस्कृत होने पर भी इस प्रकार कह रहे मनुष्य से हम पुनः तिरस्कृत हुए हैं।

अरुन्धती ने साँस लेकर कहा—यह ठीक है। बेटी सीता के लिए 'अग्नि' शब्द सर्वथा व्यर्थ है, 'सीता' कहना ही पर्याप्त है। वह तीनों लोकों के लिए पूजनीय है।

इस दुःख की स्मृति से व्याकुल होकर कौशल्या कहने लगीं—अहो! मेरी पीड़ा पुनः प्रकट होती है।

अब कौशल्या मूर्च्छित हो गईं। यह देखकर जनक, अपने उपालम्भ देनेवाले वचनों से, लज्जित हुए। उन्हें तुरन्त प्रिय मित्र दशरथ की मित्रता ने दबा लिया। उन्होंने शीघ्र ही अपने कमण्डलु से जल के छींटे दिये। कौशल्या सचेत होते ही जानकी की चिन्ता में विलाप करती हुई कहने लगीं—पुत्री जानकी! कहाँ हो? बेटी! फिर मेरे पास आओ। मेरी गोदी को सुशोभित करो। महाराज सदा यही कहा करते थे कि यह रघुकुल के राजाओं के लिए वधू है, हमारे लिए तो जनक की पुत्री ही है। पुत्री जानकी क्या करूँ? वज्रलेप के बने बन्धन से स्थिर मेरा पापी जीवन मुझ अभागिनी को नहीं छोड़ता।

अरुन्धती ने आश्वासन देते हुए कहा—राजपुत्री। समय-समय पर आँसुओं को रोकना भी चाहिए। क्या तुम्हें उस बात का स्मरण नहीं है जिसे तुम्हारे कुलगुरु ने ऋष्यशृङ्ग के आश्रम में कहा था? उन्होंने कहा था न कि है तो यह अनर्थ ही, किन्तु इसका परिणाम अच्छा होगा।

परन्तु कौशल्या की सब आशाएँ नष्ट हो चुकी थीं, वे कहने लगीं—भगवती! मेरा मनोरथ लुप्त हो गया।

अरुन्धती—राजपुत्री! क्या तुम यह समझती हो कि ये वाक्य मिथ्या थे? ऐसा मत समझो। वही होगा।

इस समय एक ओर से कोलाहल हुआ। कुछ बालक खेलते-कूदते इधर आ पहुँचे। कौशल्या को एक बालक, आकृति में, राम के सदृश दीख पड़ा। अरुन्धती ने मन में सोचा कि, भागीरथी के कथनानुसार, यह इसका कर्णामृत है। इस बालक को देखकर गृष्टि कञ्चुकी ने कहा—अवश्य यह कोई क्षत्रिय बालक है। जनक का भी यही विचार था।

कुमार की पीठ पर दो तरकस थे वह मृगछाला धारण किये हुए था। उसकी छाती पर भस्म का पवित्र चिह्न था। मौर्वी मेखला बँधी थी और वस्त्र मँजीठ में रँगे हुए थे। उसके हाथ में धनुष और अक्षसूत्र तथा माला से आवेष्टित पीपल का डण्डा था।

राजर्षि जनक को इसके विषय में जानने की उत्कण्ठा हुई। उसे बुलाने के लिए राजर्षि ने गृष्टि को भेजा।

वह कुमार, गृष्टि के साथ, आ गया। उसने सामने आकर कहा—यह मैं, लव, प्रणाम करता हूँ।

सबने उसे आशीर्वाद दिया। पहले अरुन्धती ने उसे गोद मे बैठाकर अपना मनोरथ पूर्ण किया। फिर कौशल्या ने उसे गोदी मे बैठाया और कहने लगीं—अहो। यह बालक सब प्रकार से राम के केवल शरीर मे ही नहीं, स्वर से भी राम के सदृश है। इसका शरीर-स्पर्श भी वैसा ही है। फिर उसकी ठुड्डी उठाकर कौशल्या जनक से, आँखो में आँसू भरकर, कहने लगीं—राजर्षि। ध्यान देने पर क्या आप नहीं देखते कि इसका मुख वधू के मुख-चन्द्र के सदृश है?

जनक ने भी इस सम्मति का अनुमोदन किया। वे कहने लगे—इस कुमार में सीता और राम दोनो का पूर्ण प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है। आकृति, द्युति, वाणी, विनय और भाव-भङ्गी—सब कुछ वैसा ही है। हा दैव। मेरा चञ्चल मन टेढ़े मार्गों से क्यो भाग रहा है?

अब कौशल्या ने लव से पूछा—पुत्र। तुम्हारी माता है? तुम्हें पिता का स्मरण है?

लव—नहीं।

कौशल्या—तो तू किसका पुत्र है?

लव—भगवान् वाल्मीकि का।

कौशल्या—पुत्र। और कुछ कहने योग्य हो तो कहो।

लव—मैं और कुछ नहीं जानता।

इस समय एक ओर से शब्द हुआ—अरे सैनिको। कुमार चन्द्रकेतु आज्ञा देते हैं कि कोई आश्रम की सीमा के भीतर न जावे।

चन्द्रकेतु का नाम सुनकर अरुन्धती और कौशल्या प्रसन्न हुईं।

लव—यह चन्द्रकेतु कौन है?

जनक—दशरथ के पुत्र राम-लक्ष्मण को जानते हो?

लव—वही न, जो रामायण के पात्र हैं।

जनक ने कहा—तो क्या यह नहीं जानते कि लक्ष्मण का पुत्र चन्द्रकेतु है?

लव—चन्द्रकेतु तो उर्मिला का पुत्र और मिथिला के राजर्षि का दौहित्र है।

जनक ने रामायण में इसकी अभिज्ञता देखकर कहा—यदि तुम रामायण की कथा से ऐसे अभिज्ञ हो तो बताओ कि राजा दशरथ के पुत्रों की सन्तान के क्या नाम हैं और वे किस-किस स्त्री से उत्पन्न हैं।

लव—यह कथा भाग हमने या और किसी ने पहले नहीं सुना।

जनक—तो कवि ने क्या रचा ही नहीं?

लव—रचा तो है परन्तु प्रकट नहीं किया। उन्होंने इसका एक सरस भाग, अभिनय के लिए, रचा है और उस हस्तलिखित ग्रन्थ को महर्षि ने नाट्यकार भरत मुनि के पास

भेजा है कि वे अप्सराओं-द्वारा प्रयोग करें। कुछ शिष्यों के हाथ वह पुस्तक भरत मुनि के आश्रम को भेजी गई है। उनके साथ, विपत्ति के निवारण के लिए, धनुष-बाण हाथ में लिये मेरा भाई भेजा गया है।

कौशल्या—पुत्र! तुम्हारे भाई भी है?

लव—हाँ। उनका नाम कुश है।

कौशल्या—वह ज्येष्ठ होगा?

लव—हाँ, प्रसव-क्रम से ज्येष्ठ कहे जाते हैं। हम दोनों यमज हैं।

जनक—कथा का अन्तिम भाग क्या है?

लव—प्रजा के मिथ्या अपवाद के कारण उद्विग्न हुए राजा से निर्वासित, देवयज्ञ से उत्पन्न, पूर्ण गर्भवती, अकेली सीतादेवी को वन में छोड़कर लक्ष्मण लौट गये।

यह सुनकर कौशल्या और जनक शोक के कारण कुछ कहने लगे।

लव ने अरुन्धती से पूछा—ये दोनों कौन हैं?

अरुन्धती—ये कौशल्या हैं, ये जनक हैं।

लव ने आदर, खेद और कुतूहल के साथ उन्हें देखा।

इस समय कुछ भयभीत बालक वहाँ आ गये। वे लव से बोले—"आश्रम में कोई घोड़ा आया है। आओ चलो।" इतना कहकर वे लव की मृगछाला और उसका

हाथ खींचने लगे। अरुन्धती और जनक ने भी इस जाने की आज्ञा दे दी।

लव ने अश्व को देखकर कहा—यह यज्ञ का अश्व है। इसके कवच धारी रक्षक सौ, दण्डधारी रक्षक सौ और तूणीर-धारी रक्षक भी इतने ही हैं। विश्वास न हो, तो इन्हीं लोगों से पूछ लो।

बालकों ने चिल्लाकर कहा—अरे! रक्षकों से घिरा हुआ यह अश्व क्यों घूम रहा है?

उत्तर मिला कि यह अश्व अथवा वीर घोषणा की पताका सात लोकों के अद्वितीय वीर दशग्रीव-कुल के शत्रु की है।

लव को ये शब्द उत्तेजक से प्रतीत हुए। वे कहने लगे—तो क्या पृथ्वी क्षत्रिय-हीन है जो ऐसा कहते हो?

इसके उत्तर में शब्द हुआ—महाराज का विरोधी क्षत्रिय कहाँ है?

लव ने क्रोध के साथ उत्तर दिया—भले ही वे तुम्हारे महाराज हों। यहाँ भय किस बात का है? मैं तुम्हारी पताका लिये जाता हूँ।

अब लव ने बालकों से कहा कि अश्व को ढेलों से मार-कर तपोवन में ले जाओ। वहाँ इसे मृगों के बीच विचरने दो।

इस समय क्रोध और दर्प से व्याप्त एक सैनिक ने आकर इन्हें चपलता पर डाँटा। शेष शिष्यों ने कहा भी कि "इस

अश्व से हमें क्या प्रयोजन है ? आओ, लौट चलें।" परन्तु लव उत्तेजित हो गये थे। सैनिकों के शस्त्र चमकते देखकर उन्होंने भी अपना धनुष खींच लिया।

(५)

लव ने अश्व के रक्षकों को बाणों की घोर वर्षा से व्याकुल कर दिया। युद्ध का समाचार पाकर कुमार चन्द्रकेतु भी सुमन्त्र-परिचालित रथ पर धनुष हाथ में लिये विस्मय, हर्ष और सम्भ्रम से व्याप्त हुए वहाँ आ पहुँचे। लव की बाण-वर्षा से विस्मित होकर वे कहने लगे—यह वीर बालक कौन है ? रघुवंश के किसी अप्रसिद्ध कुमार के समान यह तपस्वी कुमार अकेला ही चारों ओर सेना पर तीक्ष्ण बाणों की वृष्टि करके मुझे विस्मित कर रहा है।

अकेले उस वीर की ओर सब सैनिकों को अग्रसर होते देखकर कुमार चन्द्रकेतु लज्जित हुए। सुमन्त्र ने भी कहा—वत्स ! ये सब सैनिक मिलकर भी उसका कुछ नहीं कर सकते।

अपने आश्रित जनों का संहार देखकर कुमार चन्द्रकेतु शीघ्र ही उधर चले गये। परन्तु उनके पहुँचते-पहुँचते सब ओर से सैनिकगण पीछे हट रहे थे। कुमार ने सुमन्त्र से पूछा कि दूतों ने इसका क्या नाम बताया है। सुमन्त्र ने कहा—लव नाम है।

चन्द्रकेतु ने अब लव को ललकारकर कहा—अरे महाबाहु लव ! इन सैनिको से तुम्हें क्या काम ? मैं आ गया, मेरी ओर आओ, तेज मे तेज को शान्त करो।

लव दर्प से इधर आकर कहने लगे—धन्य ! राजकुमार ! तुम सचमुच ही इक्ष्वाकु-वंशी हो। अत मैं तुम्हारे पास आ गया हूँ।

इधर लव द्वारा पराजित सैनिक फिर लौटकर युद्ध की इच्छा से पास आ गये।

लव—अच्छा जृम्भकास्त्र से सेना को स्तम्भित करता हूँ।

सेना को जृम्भकास्त्र से मोहित देखकर सुमन्त्र और चन्द्रकेतु दोनों विस्मित हो गये।

सुमन्त्र—इसे जृम्भकास्त्रों की प्राप्ति कहाँ से हुई ?

चन्द्रकेतु—भगवान् वाल्मीकि से प्राप्त हुए होंगे। कृशाश्व के अतिरिक्त ऐसे दूसरे लोग भी स्वय मन्त्रद्रष्टा हो सकते हैं जिन्हें अतिशय वृद्धि को प्राप्त हुए सत्त्व गुण का प्रकाश प्राप्त होता है।

सैनिको से अवकाश पाकर लव फिर चन्द्रकेतु की ओर आये। दोनो से दर्शन मात्र से, परस्पर अनुराग-सा हो गया।

लव को देख सुमन्त्र के आँसू आ गये। वह कहने लगा—हृदय ! क्यों मिथ्या कल्पना करता है ? मनोरथ के बीज को तो दैव ने पहले ही नष्ट कर दिया। जो लता पहले ही छिन्न हो गई उसमे पुष्पोत्पत्ति कहाँ से होगी ?

लव को पैदल देखकर चन्द्रकेतु रथ से उतरने लगे। उन्होंने कहा—शास्त्रकार कहते हैं कि 'रथी पैदलों से युद्ध नहीं करते'।

उन्हें रथ से उतरे देखकर लव ने कहा—कुमार! आप रथ पर ही शोभित रहें। बस, अधिक आदर को छोड़िए।

चन्द्रकेतु—तो आप भी दूसरे रथ को भूषित करें।

लव—अपनी वस्तुओं का उपयोग करने में आप आगा-पीछा क्यों करते हैं? हम तो वनवासी हैं, रथ पर चलने का हमें अभ्यास ही नहीं।

इस पर सुमन्त्र ने कहा—वत्स! दर्प और सौजन्य के उचित आचरण करना तुम जानते हो। यदि राजा राम तुम्हें देख लें तो उनका हृदय स्नेह से द्रवीभूत हो जाय।

लव—श्रीमान्! वह राजर्षि सुजन सुना जाता है। हम भी ऐसे यज्ञ के विघ्नकारी नहीं हैं। इस लोक में कौन उस राजा का सम्मान नहीं करता? क्या करें, अश्व-रक्षकों ने उद्धत वचनों से सब क्षत्रियों पर प्रचण्ड आक्षेप कर मेरे मन को विकृत कर दिया।

चन्द्रकेतु ने मुस्कराकर कहा—क्या आपको तात के प्रताप का उत्कर्ष असह्य है?

लव—असह्य हो या न हो। मैं पूछता हूँ कि क्या क्षत्रियों के शौर्य आदि धर्म एक ही स्थान में सरक्षित हैं।

सुमन्त्र—अवश्य तुम इक्ष्वाकु-वंशी महाराज राम को नहीं जानते। तुमने सैनिकों का संहार करके सचमुच परा-

क्रम दिखाया है, परन्तु जामदग्न्य के विजेता को ऐसा कहना उचित नहीं।

लव ने हँसकर कहा—महाशय! राजा को 'जामदग्न्य का विजेता' बताने में उसकी क्या महत्ता है? ब्राह्मणों का वीर्य वाणी में है, क्षत्रियों का भुजाओं में। शस्त्रधारी "ब्राह्मण जामदग्न्य" पर विजय प्राप्त कर राजा ने कौन-सा बड़ा काम किया? रघुपति के चरित और महिमा को कौन नहीं जानता? वे गुरुजन हैं, उनके चरित विचारणीय नहीं। क्या कहा जाय? सुन्द की स्त्री का नाश करने पर भी वे लोक में यशस्वी और महान् माने जाते हैं। खर के साथ युद्ध में वे, बिना मुख मोड़े ही, तीन पद पीछे हट गये थे, और बालि के वध में उन्होंने जो छल किया था वह भी सबको विदित है।

अब तो चन्द्रकेतु को क्रोध आ गया। वे कहने लगे—आह! तात की निन्दा-द्वारा मर्यादा-भङ्ग करनेवाले! तुम बहुत चपलता कर रहे हो।

लव—अरे! मुझ पर भौंहें तान रहे हो?

दोनों प्रतिद्वन्द्वी कुमार युद्ध के योग्य स्थान पर खड़े हो गये।

(६)

लव और चन्द्रकेतु का युद्ध आरम्भ हो गया। इन सूर्य-वंशी कुमारों के पराक्रम देखकर विद्याधर मोहित हो गये। कुमार चन्द्रकेतु ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया। उनसे

आकाश विद्युल्लता के समान पीतवर्ण हो गया। अग्नि की शिखाएँ गिरने लगीं। लव ने तब वारुणास्त्र का प्रयोग किया। निरन्तर गिरती हुई सहस्रों वर्षा-धाराओं से आग्नेयास्त्र शान्त हो गया। चन्द्रकेतु ने वायव्यास्त्र चला दिया। सब नष्ट हो गये।

इसी समय राम शम्बूक का वध करके लौट रहे थे। उन्होंने शीघ्रता से हाथ ऊँचा करके, पटके का छोर हिलाकर दूर से ही मधुर वचनों से युद्ध रोकवा दिया। उनका शब्द सुनकर चन्द्रकेतु और लव ने युद्ध बन्द कर दिया।

चन्द्रकेतु ने प्रणाम किया और राम ने उन्हें स्नेह से गले लगाकर कुशल पूछी।

चन्द्रकेतु—अद्भुत पराक्रमवाले प्रियदर्शन लव के मिलने से कुशल है। मैं निवेदन करता हूँ कि आप इस प्रशस्त महावीर पर मुझ जैसी, अथवा और भी अधिक कृपा करें।

लव को देखकर राम कहने लगे—सौभाग्य से यह वत्स का अति गम्भीर तथा शुभ आकृतिवाला मित्र ऐसा है मानो लोकों की रक्षा के लिए अस्त्रवेद ने शरीर धारण किया हो, वेद-रक्षा के लिए क्षात्र-धर्म्म ने शरीर का आश्रय लिया हो, शक्तियों का जैसे समुदाय हो, अथवा गुणों का सञ्चय हो, या जगत् की पवित्र वस्तुओं के निर्माण की राशि प्रकट होकर उपस्थित हुई हो।

उधर लव ने भी राम को देखकर कहा—अहो! इस महापुरुष का प्रभाव तथा आकृति पवित्र है। उन्होंने चन्द्रकेतु से पूछा—ये कौन हैं?

चन्द्रकेतु—ये ज्येष्ठ तात हैं।

यह सुनकर लव ने सहर्ष कहा—क्या रघुनाथ? सौभाग्य से आज शुभ दिन है जो मुझे इनके दर्शन हुए। फिर विनय और कौतुक से राम को देखकर कहा—तात! वाल्मीकि का शिष्य लव आपको प्रणाम करता है।

राम ने लव को स्नेह से गले लगा लिया।

राम के ऐसे व्यवहार से लज्जित होकर लव कहने लगे—तात! मेरी मूर्खता को क्षमा कीजिए।

राम—इसने क्या अपराध किया है?

चन्द्रकेतु—अश्वरक्षकों से आपके प्रताप की घोषणा सुनकर पराक्रम प्रकट किया है।

राम—यह तो क्षत्रियों का अलङ्कार है। दूसरों का तेज न सहन करना तो तेजस्वियों का स्वभाव ही है।

चन्द्रकेतु ने फिर कहा—तात! असहिष्णुता भी इसी वीर को शोभा देती है। देखिए, इस प्रिय मित्र के प्रयुक्त किये जृम्भकास्त्र से हमारी सेना निश्चल और निःस्तब्ध पड़ी है।

राम ने लव को अस्त्र के उपसहार की आज्ञा दी। लव ने ध्यान से अस्त्र शान्त कर दिया।

राम—वत्स ! ये प्रयोग और उपसहार के रहस्य-युक्त अस्त्र गुरु-परम्परा में परिमित रहते हैं। कुमार को इनका ज्ञान कहाँ से हुआ ?

लव—हमें ये अस्त्र स्वय अधिगत हुए हैं।

राम ने सोचा कि सब कुछ सम्भव है। यह किसी प्रकृष्ट पुण्य की ही महिमा होगी। फिर वे लव से पूछने लगे—तुमने 'हम' क्यों कहा ?

लव—हम दो भाई है।

राम—तुम्हारा दूसरा भाई कहाँ है ?

इस समय एक ओर से किसी के आने का शब्द सुनाई दिया। चिरञ्जीव लव के, राजा की सेना के साथ, युद्ध का समाचार पाकर कुश इधर ही आ पहुँचे। उसकी आकृति अपने समान देखकर राम ने पूछा—यह कौन है ?

लव ने बताया कि ये मेरे ज्येष्ठ भ्राता कुश हैं। भरत मुनि के आश्रम से लौटे हैं।

राम ने उन्हें बुलाने को कहा।

लव ने भाई को प्रणाम किया। कुश ने पूछा—चिरञ्जीव ! यह युद्ध कैसा है ?

लव—कुछ नहीं, आप क्रोध न करें। ये महाराज राम है। हमसे स्नेह करते हैं और आपसे मिलने को उत्कण्ठित हैं।

कुश—क्या वही रामायण के नायक, वेद के रक्षक राम ?

कुश ने पास आकर राजा को प्रणाम किया। राम ने आशीर्वाद देकर उसे गले लगा लिया। उनके शरीर में अमृत सिञ्चन का सञ्चार सा हुआ।

इस समय राम के मस्तक पर धूप पड रही थी। सब लोग शालवृक्ष की छाया में बैठ गये। राम ने इन कुमारों को देख-कर सोचा कि ये रघुकुल कुमारों के सदृश हैं। इनकी आकृति और इनका स्वर सब कुछ मेरे सदृश है। ध्यान से देखा तो उन्हें सीता का सादृश्य भी देख पडा। वे सोचने लगे कि यह वही वाल्मीकि के निवास का वन है जहाँ सीता को त्यागा था और इन कुमारों की आकृति भी सीता से मिलती जुलती है। अस्त्र जो इन्हें स्वय अधिगत हुए हैं सो चित्र दर्शन के समय अस्त्रों के लिए मेरी आज्ञा के प्रभाव से ऐसा हुआ है। मैंने पहले आचार्यों के विषय मे भी नहीं सुना कि ये अस्त्र गुरु के उपदेश बिना किसी को प्राप्त हुए हो। हृदय का यह असीम सुख मेरे प्रफुल्ल आत्मा को विश्वास देता है। मैंने यह भले प्रकार जान लिया था कि सीता का गर्भ दो भागों मे विभाजित था।

इन विचारों से राम की आँखो मे आँसू आ गये। वे तापसी कुमारो से कहने लगे—सुना है कि सूर्यवश की प्रशस्ति भगवान् वाल्मीकि की रामायण सरस्वती-देवी का प्रवाह है। मैं उसका अश सुनना चाहता हूँ।

कुश ने रामायण-गान आरम्भ ही किया था कि सीता की स्मृति से राम का दुःख बढ गया। इतने मे एक ओर से सुनाई पडा कि इस प्रकार स्वरप शोभायुक्त (मलिन) रघुनाथ की महिमा देखकर, पहले मूर्च्छित हुए जनक के सचेत होने पर, माताएँ मूर्च्छित हो गई हैं।

सब लोग व्याकुल होकर उधर चले गये।

(७)

भगवान् वाल्मीकि ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, पौर-जानपद की प्रजा, सुरासुर, चराचर सृष्टि को अपने प्रभाव मे बुलाया। उन्होंने अप्सराओ को अपने नाटक का अभिनय करने के लिए निमन्त्रण दिया था। गङ्गा-तट पर रङ्गभूमि बनी थी। सब दर्शकगण यथोचित स्थानों पर बैठ गये।

इसके अनन्तर नाटक के सूत्रधार ने आकर निवेदन किया—सुनो। यथार्थवादी भगवान् वाल्मीकि चराचर जगत् से कहते हैं कि हमने जो यह आर्ष दृष्टि से देखकर, करुण तथा अद्भुत रस से युक्त, पवित्र रचना की है उसे ध्यान देकर सुनो।

इसी समय एक ओर से शब्द हुआ—हा आर्यपुत्र! हा कुमार लक्ष्मण! मैं अकेली हूँ, नि सहाय हूँ, मेरा प्रसव-काल समीप है, इस घोर जगल में मुझ निराश को हिंसक जीव खाना चाहते है। हा! मैं दुर्भागिनी अपने आपको गगा में फेंकती हूँ।

सूत्रधार ने ये शब्द सुनकर बताया कि पृथ्वी की पुत्री, राजा की रानी, महावन में त्यागी हुई, प्रसव का समय आने पर गङ्गाजी में कूदती हैं।—इतना कहकर सूत्रधार चला गया।

अब सीता को आश्रय दिये हुए पृथ्वी और भागीरथी ने, गोद में एक-एक शिशु लिये हुए, प्रवेश किया। दोनों देवियों ने सीता को आश्वासन देते हुए कहा—कल्याणी! भाग्य से तेरी वृद्धि हुई है। जल के मध्य तेरे दो रघुवश-कुमार उत्पन्न हुए हैं।

सचेत होकर सीता ने पूछा—देवी! आप और ये कौन हैं?

पृथ्वी—ये तुम्हारे श्वशुरकुल की देवी भागीरथी हैं।

सीता ने भागीरथी को प्रणाम किया। "सच्चरित्र के उचित कल्याण धन को प्राप्त हो" ऐसा भागीरथी ने आशीर्वाद देकर कहा—ये तुम्हारी माता पृथ्वी देवी हैं।

सीता ने व्याकुल होकर कहा—हाय माता! तुम्हें मुझे ऐसी दुर्दशा में देखना था! पृथ्वी देवी उन्हें आलिङ्गन कर व्यथा से मूर्च्छित हो गई। भागीरथी ने दोनों को आश्वासन दिया। सचेत होकर पृथ्वी देवी ने कहा—सीता की माता होकर मैं कैसे धैर्य धरूँ? एक तो चिरकाल तक राक्षसों के बीच रहकर इसने दुःख पाया, दूसरे इसको इस समय दुःसह कष्ट है।

भागीरथी—जीव के निकट फलवाले भाग्य के द्वार बन्द करने में कौन समर्थ है?

पृथ्वी—भागीरथी! रामचन्द्र को क्या यह उचित था कि बाल्यकाल में, विवाह में, ग्रहण किये हुए हाथ का कुछ विचार न करें? उन्होंने न तो मेरा कुछ ध्यान किया, न जनक का न अग्नि का और न गर्भावस्था का ही।

भागीरथी—भगवती वसुन्धरा! तुम संसार की शरीर रूप हो, बिना जाने जामाता पर क्यों कुपित हो? लोक में घोर अपयश फैल रहा था, लङ्का द्वीप में जो अग्नि-शुद्धि हुई थी उस पर प्रजा कैसे विश्वास करे? प्रजा-रञ्जन का कार्य इक्ष्वाकुवंशियों की पैतृक सम्पत्ति है। उसी के अनुरोध से राम को यह कठोर कर्त्तव्य करना पड़ा है।

पृथ्वी—देवी! मैं तुम्हारे ऊपर सदा प्रसन्न हूँ किन्तु पुत्री का शोकावेग मुझे दुःसह है। यह बात नहीं कि मैं सीता के लिए राम का स्नेह न जानती होऊँ।

सीता ने रोते हुए हाथ जोड़कर कहा—माता! मुझे अपने अङ्गों में विलीन कर लो।

भागीरथी—शान्त होओ, तुम सहस्र वर्षों तक जीवित रहो।

पृथ्वी—बेटी! इन दो पुत्रों को देखो।

सीता—मैं तो अनाथ हूँ, इनसे क्या?

यह सब अभिनय देखकर राम अति व्याकुल हो रहे थे। अब वे कहने लगे—हृदय! तू वज्रमय है।

भागीरथी—पुत्री, सनाथ होकर भी तुम अनाथ कैसे?

इस समय एक ओर से कोलाहल हुआ। सारा आकाश प्रज्वलित हो उठा। शस्त्रों के साथ जृम्भक-अस्त्र प्रकट हुए और फिर शब्द हुआ—सीतादेवी! तुमको नमस्कार हो। चित्र-दर्शन के समय जैसा रघुनन्दन ने कहा था उसके अनुसार हम तुम्हारे पुत्रों के आश्रित हैं।

पृथ्वी और भागीरथी—बेटी! प्रसन्न होओ। तुम्हारे पुत्र अब राम के तुल्य हो गये।

सीता—देवियो! इनके क्षत्रियोचित कर्म कौन करेगा?

भागीरथी—बेटी! तुम्हें इसकी चिन्ता क्यों है? दूध छोड़ देने पर मैं इनको भगवान् वाल्मीकि के अर्पण कर दूँगी। वही इनका जात कर्म करेंगे। जनक-वश और रघु-वश दोनों के गुरु जैसे वशिष्ठ और अङ्गिरा हैं वैसे ही वाल्मीकि हैं।

राम—देवी ने ठीक सोचा।

लक्ष्मण—भाई, मैं सत्य कहता हूँ कि इन बातों से वे कुमार कुश और लव जान पड़ते हैं।

राम—वत्स! इसी कारण मेरा हृदय प्रसन्न है।

अब पृथ्वी ने सीता से कहा—आओ, पुत्री! रसातल को पवित्र करो।

सीता ने भी कहा—माता! मुझे तुरन्त अपनी गोदी में समा लो। मुझमें शक्ति नहीं कि जीवलोक-द्वारा किये गये परिवर्तनों को सहन कर सकूँ।

परन्तु पृथ्वी देवी ने कहा—जब तक तुम दूध पिलाती

हो, तब तक इन शिशुओं का पालन करो। इसके पश्चात् जो इच्छा हो, वही करना। इसके उपरान्त सीता, देवियो के साथ, चली गई।

अब "हा प्रिये! तू पृथ्वी मे समा गई।" इतना कहकर राम, सीता को पुकारते हुए, मूर्च्छित हो गये।

इस समय गङ्गा के जल में, मन्थन के समान, हलचल हुई। देवताओं से अन्तरिक्ष व्याप्त हो गया। गङ्गा और पृथ्वी के साथ सीता जल में से निकली। दोनों देवियों ने सीता को अरुन्धती की रक्षा मे सौंप दिया।

सीता को साथ लेकर अरुन्धती सबके सामने आईं। अरुन्धती ने सीता से कहा कि प्रिय हस्त स्पर्श से राम को चैतन्य कर दो। सीता ने राम को स्पर्श करते हुए कहा—स्वामी! उठिए।

सीता के स्पर्श से राम स्वस्थ हो गये। वे सीता को देखकर, हर्ष और विस्मय से, कहने लगे—अरे, ये क्या महारानी! अरुन्धती, और ऋष्यश्रृङ्ग तथा शान्ता के साथ सब सुप्रसन्न गुरुजन!

अरुन्धती—वत्स! ये गङ्गाजी भगीरथ-गृह की देवी हैं।

भागीरथी—जगत्पति राम! चित्रदर्शन के समय, मुझसे की हुई, अपनी प्रार्थना का स्मरण करो। तुमने कहा था—माता! सीता के कल्याण के लिए सावधान रहना।

अब अरुन्धती ने कहा—ये तुम्हारी सास पृथ्वी देवी हैं।



सीता का पाताल प्रवेश

पृथ्वी ने कहा कि मेरी पुत्री को त्यागने के समय आपने कहा था—देवी वसुन्धरा ! प्रशंसनीय पुत्री जानकी की रक्षा करो। सो मैंने तुम्हारा वचन पूर्ण कर दिया।

"तो क्या आप देवियों ने मुझ अपराधी पर भी कृपा की ?" कहकर राम ने इन्हे प्रणाम किया।

अरुन्धती ने अब पुरवासियो से, सीता को ग्रहण करने के सम्बन्ध में, सम्मति माँगी। इस समय सब प्राणियों ने सीता को प्रणाम किया। लोकपालों और सप्तर्षियो ने पुष्पवृष्टि की।

अरुन्धती ने अब राम से कहा—राम ! यज्ञ में सुवर्ण की मूर्त्ति के स्थान पर तुम पुण्यप्रकृति, धर्मचारिणी प्रिया को धर्मानुसार नियुक्त करो।

राम ने यह आज्ञा शिरोधार्य की।

लक्ष्मण ने सीता से कहा—महारानी ! यह निर्लज्ज लक्ष्मण प्रणाम करता है।

सीता—वत्स ! इस प्रकार चिरकाल तक जिओ।

वाल्मीकि ने इस समय कुश और लव को आगे करके कहा—कुमार कुश लव ! ये रघुपति तुम्हारे पिता हैं, लक्ष्मण चाचा हैं, सीतादेवी माता हैं। ये राजर्षि जनक तुम्हारे नाना हैं।

राम और सीता ने कुमारों को हृदय से लगा लिया। इसी समय मधुरेश्वर लवण का नाश कर शत्रुघ्न भी आ गये। प्रेम और हर्ष का समुद्र उमड उठा।

---

(१०) वेणी-संहार

(१)

बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पाण्डवों ने पूरी कर दी। अब दुर्योधन को उनका राज्य लौटा देना चाहिए था, परन्तु उसने ऐसा करना स्वीकार न किया। युद्ध प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। युद्ध-रूपी प्रलयाग्नि को शान्त करने के लिए श्रीकृष्ण ने सन्धि कराने का भार स्वयं अपने ऊपर लिया। वे सन्धि कराने के लिए, पाण्डवों की ओर से, कौरवों के पास गये।

युधिष्ठिर की सन्धि की इच्छा सुनकर भीम को अत्यन्त क्रोध हुआ। उनके हृदय को दुर्योधन के नाना प्रकार के अत्याचार वेधने लगे। भोजन में विष देना, लाख के घर में जलाने का प्रयत्न करना, द्यूत क्रीडा में धोखा देना, भरी सभा में केशाकर्षण और वस्त्र हरण द्वारा द्रौपदी को अपमानित करना आदि घटनाएँ भीम कब भूल सकते थे? सहदेव के शान्त करने पर भी उनके क्रोध की ज्वाला प्रदीप्त हो उठी।

भीम कहने लगे—कौरवों के साथ होनेवाली सन्धि को मैं, जरासन्ध की छाती की नाईं, विदीर्ण कर दूँगा। तुम लोग मेल करो।



द्रौपदी चीरहरण

(१०) वेणी-संहार

(१)

बारह वर्ष के वनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास की प्रतिज्ञा पाण्डवों ने पूरी कर दी। अब दुर्योधन को उनका राज्य लौटा देना चाहिए था, परन्तु उसने ऐसा करना स्वीकार न किया। युद्ध प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। युद्ध-रूपी प्रलयाग्नि को शान्त करने के लिए श्रीकृष्ण ने सन्धि कराने का भार स्वयं अपने ऊपर लिया। वे सन्धि कराने के लिए, पाण्डवों की ओर से, कौरवों के पास गये।

युधिष्ठिर की सन्धि की इच्छा सुनकर भीम को अत्यन्त क्रोध हुआ। उनके हृदय को दुर्योधन के नाना प्रकार के अत्याचार बेधने लगे। भोजन में विष देना, लाख के घर में जलाने का प्रयत्न करना, द्यूत क्रीडा में धोखा देना, भरी सभा में केशाकर्षण और वस्त्र हरण द्वारा द्रौपदी को अपमानित करना आदि घटनाएँ भीम कब भूल सकते थे? सहदेव के शान्त करने पर भी उनके क्रोध की ज्वाला प्रदीप्त हो उठी।

भीम कहने लगे—कौरवों के साथ होनेवाली सन्धि को मैं, जरासन्ध की छाती की नाईं, विदीर्ण कर दूँगा। तुम लोग मेल करो।

सहदेव ने नम्रता से कहा—भाई, इतना क्रोध करने मे कदाचित् राजा आपके ऊपर खिन्न हो जायँ।

भीम ने व्यंग्य से कहा—राजा खिन्न होंगे? क्या उन्हें खेद का ज्ञान है? राजसभा मे द्रौपदी की दुर्दशा देखकर तो वे टस से मस न हुए, बारह वर्ष वल्कल पहनकर वनों मे किरातों के साथ रहे, और अज्ञातवास के समय विराट-नगर में गुप्त रहकर उन्होंने अकर्त्तव्य काम किये, परन्तु उन्हे न तो कभी दुःख हुआ, न रोष। अब वे मेरे ऊपर क्रोध करेंगे किन्तु कौरवों पर अब भी नहीं। सो सहदेव, तुम जाकर मेरी ओर से राजा से निवेदन कर दो कि मैं, समय अधिक व्यतीत होने पर, क्रोध से उद्दीप्त होकर कहता हूँ—आज मैं आपके आज्ञोल्लङ्घन के पाप में डूबा रहूँगा और आपके आज्ञाकारी भाइयों की निन्दा का पात्र बनूँगा। क्रोध से चलायमान, रक्त मे लाल गदा घुमाते हुए—कौरवों को मारते समय—आज के दिन न तुम मेरे ज्येष्ठ भ्राता हो और न मैं तुम्हारा आज्ञाकारी हूँ। जाओ, उनसे यही निवेदन कर दो। मैं भी शस्त्रगृह में शस्त्र लेने जाता हूँ।

भीम क्रोधवश तो थे ही। वे शस्त्रगृह के बदले द्रौपदी के भवन में चले गये।

सहदेव—भाई! यह तो द्रौपदी का प्रासाद है।

द्रौपदी का प्रासाद सुनकर भीम प्रसन्न हुए और सहदेव को भी साथ ले गये। उस समय वहाँ द्रौपदी न थीं। भीम पृथ्वी-तल पर ही बैठ गये।

सहदेव—भाई। यह आसन बिछा है। इस पर बैठकर 'कृष्णागमन' (द्रौपदी के आने) की प्रतीक्षा करो।

'कृष्णागमन' से भीम ने कृष्ण के आने का तात्पर्य समझकर सहदेव से पूछा—किस शर्त पर श्रीकृष्ण सन्धि करने के लिए वहाँ गये हैं?

सहदेव—पाँच ग्राम मिलने की शर्त पर।

भीम के तो होश उड़ गये। वे बोले—अजातशत्रु का तेज इतना क्षीण हो गया। मेरा हृदय काँप रहा है। क्या किया जाय? जो अत्युग्र क्षात्रतेज इन महाराज ने संग्रह किया था वह सब इन्होंने पाँसों से खेलते हुए निःसन्देह गँवा डाला।

इस समय द्रौपदी दीर्घ निःश्वास लेती हुई, आँखों में आँसू भरे, वहाँ आ गई। उन्हें वैसे देखकर सहदेव ने समझ लिया कि आज अवश्य भाई की क्रोधाग्नि प्रचण्ड होगी। भीम अपने क्रोध और चिन्ता में इतने मग्न थे कि द्रौपदी-कृत अभिवादन भी न सुन सके। वे अपनी धुन में ही बोलने लगे—"जो अत्युग्र क्षात्रतेज इन्होंने संग्रह किया था वह सब पाँसों से खेलते हुए गँवा डाला।"

द्रौपदी भीम को क्रुद्ध देखकर प्रसन्न हुई और उनका वार्तालाप सुनने लगी।

भीम ने फिर क्रोध और तिरस्कार से कहा—क्या? पाँच ग्राम लेकर सन्धि? क्या मैं क्रोध से संग्राम में धृतराष्ट्र के सौ

पुत्रों को न मारूँगा ? क्या दुःशासन के हृदय का रक्त-पान न करूँगा अथवा क्या गदा से सुयोधन की जङ्घाएँ न तोड़ूँगा ? इस मूल्य पर तुम्हारे राजा भले ही सन्धि कर लें।

ये उत्तेजना-पूर्ण वचन सुनकर द्रौपदी प्रसन्न हुई। उन्होंने समझा कि अब मेरे अपमान का प्रतिकार शीघ्र होगा।

सहदेव ने भीम को शान्त करने के अभिप्राय से कहा—आप क्या महाराज के सन्देश का गूढार्थ नहीं समझे ?

भीम—इसमें गूढार्थ कौन-सा है ?

सहदेव—राजा युधिष्ठिर ने सुयोधन को कहला भेजा है कि इन्द्रप्रस्थ, वृकप्रस्थ, जयन्त, वारणावत और कोई अन्य पाँचवाँ ग्राम दे दे।

भीम के इसका तात्पर्य पूछने पर सहदेव ने बताया कि पाँचवें ग्राम का नाम न लेकर केवल चार ग्रामों का ही नाम लेने से उनसे सम्बन्ध रखनेवाली आपत्तियों का—अर्थात् विषयुक्त भोजन, लाक्षागृह-दाह, द्यूत-क्रीडा तथा देश-निर्वासन आदि घटनाओं का—स्मरण कराया है। ऐसा करने से लोक में महाराज की स्वबन्धुओं के साथ युद्ध करने में उदासीनता प्रकट होगी और कौरवों की सन्धि न करने की इच्छा भी दिखेगी।

भीम ने ऐसी बातों को निरर्थक समझा। उन्होंने कहा—कौरवों से सन्धि न करने की इच्छा उसी समय प्रकट कर दी थी जब हमने वन जाने के समय सारे कौरव कुल का नाश करने की प्रतिज्ञा की थी। इस संसार में भी धृतराष्ट्र के कुल

का क्षय क्या तुम्हारे लिए लज्जादायक है। मूढ़! क्रोध में इस लोक में शत्रुकुल का क्षय तो तुम्हें लज्जित करता है परन्तु सभा में पत्नी का केशाकर्षण लज्जित नहीं करता?

इस समय द्रौपदी ने मन में ही कहा कि नाथ! इन्हें लज्जा कहाँ? तुम भी भूल न जाना।

यह समझकर कि द्रौपदी अभी नहीं आई, भीम संग्राम में जाने की शीघ्रता में बोले—वत्स! द्रौपदी अभी तक नहीं आई?

सहदेव—भाई, द्रौपदी तो बड़ी देर से यहाँ खड़ी हैं। आपने देखा नहीं।

द्रौपदी को देखकर भीम ने कहा—देवी! क्रोधवश मैंने तुम्हें आते नहीं देखा। क्रोध मत करना।

द्रौपदी—नाथ! मुझे आपके उदासीन होने पर क्रोध आता है न कि कुपित होने पर।

भीम—यदि ऐसा है तो जान लो कि तुम्हारे तिरस्कार का प्रतिकार हो गया।

भीम ने द्रौपदी को पास बैठा लिया, उन्हें उद्विग्न देखकर पूछा—आज तुम उद्विग्न क्यों हो?

द्रौपदी ने दासी को नये पराभव का निवेदन करने को कहा।

दासी कहने लगी—कुमार! आज तो महारानी का, केशाकर्षण आदि के तिरस्कार से भी अधिक, अपमान हुआ है। आज माता कुन्ती और सुभद्रा आदि सपत्नियों सहित महारानी गान्धारी की चरण-वन्दना के लिए, गई थीं। लौटते

हुए भानुमती ने देख लिया। तब उसने इनकी ओर दृष्टि करके और कुछ हँसकर, सगर्व कहा—द्रौपदी। सुना है कि वे पाँच ग्राम माँगते हैं। सो अब भी तुम्हारे केश क्यों नहीं बँधे ?

यह सुनकर भीम जल-भुन गये। पूछने लगे—तब द्रौपदी ने क्या कहा ?

दासी ने कहा—मैं तो साथ थी। रानी के चुप रहने पर मैंने कहा—"हे भानुमती। तुम्हारे केश बिना खुले हमारी रानी के केश कैसे बाँधे जा सकते हैं ?"

भीम को यह उत्तर सन्तोषजनक प्रतीत हुआ। उन्होंने दासी को धन्यवाद दिया और द्रौपदी से कहा—दुःख मत करो, मैं अल्प समय में ही गदा से दुर्योधन की जङ्घा तोड़कर, रक्त से भरे हाथों से, तुम्हारी वेणी गूँथूँगा।

द्रौपदी ने उत्तेजित होकर कहा—नाथ। आपके कुपित होने पर क्या दुष्कर है ? पर आपके भाई यह कार्य स्वीकार करें तब तो ?

उत्तेजित होकर सहदेव ने भी भीम का साथ देना स्वीकार कर लिया।

इस समय युधिष्ठिर के कञ्चुकी जयन्धर ने आकर निवेदन किया कि पाण्डवों के पक्षपात से क्रोधित होकर दुर्योधन ने कृष्ण भगवान् को वन्दी करने की इच्छा की थी। तब उन्होंने अपना विश्वरूप दिखलाकर, अपने तेज से, कौरवों

को मूर्च्छित कर दिया। अब महाराज आपको शीघ्र देखना चाहते हैं।

अब तो सन्धि की आशा सर्वथा जाती रही। युद्ध की तैयारी आरम्भ हो गई। युधिष्ठिर भी अब युद्ध के लिए सहमत हो गये थे। युद्ध की तैयारी देखकर भीम प्रसन्न हुए।

(२)

महाभारत का युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों पक्षों के सहस्रों योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए। भीष्म पितामह ने भी शर-शय्या ग्रहण की। अब कौरवों के सेनापति द्रोणाचार्य हुए। उन्होंने ऐसा व्यूह रचा जिसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता था। परन्तु कौरव-दल का संहार करता हुआ अभिमन्यु व्यूह में प्रवेश कर गया। जयद्रथ आदि कई वीरों ने निःसहाय अभिमन्यु पर आक्रमण किया। अन्त में वह मारा गया। अभिमन्यु का वध सुनकर दुर्योधन को असीम हर्ष हुआ। वह, जयद्रथ प्रभृति वीरों का सत्कार करने के लिए, युद्धभूमि में जाने लगा। जाने से पहले उसने भानुमती से मिलना चाहा। उसने कञ्चुकी विनयन्धर को यह जानने के लिए भेजा कि भानुमती इस समय कहाँ है।

विनयन्धर को ज्ञात हुआ कि वे सासों की चरण वन्दना में निवृत्त होकर इस समय बालोद्यान में बैठी हैं। यह सूचना पाकर वह दुर्योधन को कहने के लिए वापस चला

आया। मार्ग मे चलते-चलते वह दुर्योधन के भविष्य के लिए शङ्का करने लगा। उस दुर्योधन का व्यवहार अनुचित प्रतीत होता था। भीष्म जैसे योद्धा की मृत्यु के सामने बालक अभिमन्यु का वध क्या प्रसन्नता का कारण हो सकता था।

भानुमती की सूचना पाकर दुर्योधन, विनयन्धर के साथ बातचीत करता हुआ, बालोद्यान की ओर चल पडा। दुर्योधन के जयद्रथ आदि को सत्कृत करने के विषय में विनयन्धर ने कहा—यह द्रोणाचार्य, कर्ण अथवा जयद्रथ के शस्त्रों के प्रभाव के आगे कौन सा दुष्कर कार्य है ? फिर प्रशसा कैसी ?

दुर्योधन—विनयन्धर ! तुम कहते हो कि अकेले बालक का धनुष जब बहुत से योद्धाओ ने तोड डाला तब वह मारा गया। सो यहाँ कौरवो की क्या प्रशसा ? मूढ ! देखो, शिखण्डी को आगे करके वृद्ध भीष्म के मारने पर जैसी प्रशसा पाण्डवों की हुई वैसी ही हमारी होगी।

विनयन्धर ने लज्जित होकर कहा—महाराज ! मेरा तात्पर्य यह नहीं था। किन्तु मैंने पहले आपके पराक्रम मे बाधा देखी नहीं थी। इसी कारण ऐसा कहा।

दुर्योधन—सुनो, युद्ध में अपने बल से सेवकों और भाई-बन्धुओ सहित दुर्योधन का पाण्डुपुत्र शीघ्र ही नाश करेगा।

विनयन्धर—परमात्मा न करे। महाराज ! आपने 'पाण्डुपुत्र का' कहने के बदले 'दुर्योधन का' उलटा कह डाला।

अब वे बालोद्यान में पहुँच गये, जहाँ भानुमती बैठी थी। दुर्योधन ने विनयन्धर को युद्ध के लिए रथ सज्जित कराने को भेज दिया और स्वयं भानुमती की ओर बढ़ा।

उधर भानुमती अपनी सखियों के साथ बालोद्यान में बैठी, रात में देखे स्वप्न के विषय में, बातचीत कर रही थी। सखी ने आश्वासन देते हुए कहा—रानीजी! इस स्वप्न मात्र के देखने से, अभिमानी महाराज की पटरानी होकर, धीरज छोड़कर क्यों ऐसी दुःखित हो रही हो ?

भानुमती—सखी! करूँ क्या, परन्तु मुझे यह स्वप्न अतीव अशुभ जान पड़ता है।

सखी—प्रिय सखी! यदि ऐसा है तो वह स्वप्न सुनाओ जिससे हम उसके दोष-निवारण का उपाय करें।

स्वप्न सुनाने से पहले भानुमती मन में सारे स्वप्न का सिंहावलोकन करने लगी।

इस समय भानुमती मन में स्वप्न की पुनरावृत्ति करके बोली—हाँ सखी, स्मरण आ गया। मैं आज प्रमदावन में बैठी थी कि मेरे आगे एक दिव्य नकुल ने सौ सर्पों को मार डाला।

सखियाँ—तब फिर ?

इसी समय दुर्योधन भी वहाँ पहुँच गया। उन्हें कुछ मन्त्रणा करते देखकर वह छिपकर उनकी बातचीत सुनने लगा।

भानुमती—सखी! तब मैं दिव्यरूपी अति सुन्दर नकुल को देखकर उसके दर्शन के लिए उत्कण्ठित हो गई।

जयद्रथ की माता—वे उद्दीप्त क्रोधवाले वीर, पुत्र और बन्धु आदि की मृत्यु से अपने प्राणों की अपेक्षा न करके, इधर-उधर फिरते हैं।

यह सुनकर दुर्योधन हँस पडा और कहने लगा—पाण्डवों का क्रोध ससार में विख्यात है। जब भरी सभा मे द्रौपदी के केश और वस्त्र खींचे गये तब क्या गाण्डीवधारी अर्जुन वहाँ न थे? क्या यह अवसर क्षत्रिय युवा के लिए क्रोध दिखाने का न था?

जयद्रथ की माता—अर्जुन ने कहा है कि प्रतिज्ञा पूर्ण न हुई तो प्राण त्याग दूँगा।

अब तो दुर्योधन प्रसन्न होकर कहने लगा—यदि ऐसा है तो आनन्द के स्थान पर आप दुःख क्यों करती हैं? समझ लीजिए कि भाइयों सहित युधिष्ठिर नष्ट हो गये। सुनिए माताजी! सौ कुरु-पुत्रों के परिवार के कारण अधिक महिमा-वाले, कृपाचार्य द्रोणाचार्य कर्ण अश्वत्थामा आदि वीरों के कारण द्विगुणित शक्तिवाले, प्रसिद्ध विक्रमी जयद्रथ का नाम ले सकने की भी अर्जुन या अन्य किसी में सामर्थ्य है? क्या आप अपने पुत्र के पराक्रम को नहीं जानतीं? युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव की तो कुछ गिनती नहीं, अर्जुन और भीम में से भी सिन्धुराज जयद्रथ के बाणों को सहने में कौन समर्थ है? दुःशासन के हृदय के रुधिर-पान की अथवा गदा द्वारा दुर्यो-धन की जङ्घाएँ तोडने की भीम की प्रतिज्ञाओं में से कोई पूर्ण हुई, जो यह भी पूर्ण होगी?

दुर्योधन इस प्रकार दु:शला और जयद्रथ की माता को आश्वासन देकर स्वयं युद्ध-क्षेत्र को चला गया। वह चाहता था कि अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकने पर अर्जुन स्वयं ही प्राण त्याग करे तो अत्युत्तम है।

(३)

अर्जुन ने युद्ध में अपूर्व वीरता दिखाई, उन्होंने दिन का अन्त होते-होते जयद्रथ को मार डाला। धृष्टद्युम्न भी द्रोण के केश खींचकर उन्हें मारने लगे।

इसी समय एक ओर से क्रुद्ध हुआ अश्वत्थामा, नङ्गी तलवार लिये, आ रहा था। उसका ध्यान युद्धभूमि में उठे हुए कोलाहल की ओर खिच गया। वह सोचने लगा कि अवश्य मेरे पिता ने—अर्जुन, सात्यकि अथवा भीम से उत्तेजित होकर—अपने शिष्यों के प्रति मोह त्यागकर यथोचित शक्ति दिखाना आरम्भ किया है। ऐसा विचार कर अश्वत्थामा स्वयं भी उधर चल पडा। मार्ग में भागती हुई सेना को वह आश्वासन देने लगा। परन्तु द्रोण के सारथी ने आकर उसे बताया कि द्रोणाचार्य का देहान्त हो गया। यह सुनकर अश्वत्थामा मूर्च्छित हो गया। चेत होने पर वह कुछ समय तक विलाप करता रहा। इसके अनन्तर सारथी से पूछने लगा—शौर्य के समुद्र मेरे पिता का देहान्त कैसे हुआ? क्या भीम ने गुरु-दक्षिणा के रूप में मेरे पिता को गदा से मार डाला, अथवा



धृष्टद्युम्न द्वारा द्रोण-वध

दुर्योधन इस प्रकार दु शला और जयद्रथ की माता को आश्वासन देकर स्वय युद्ध-क्षेत्र को चला गया। वह चाहता था कि अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सकने पर अर्जुन स्वय ही प्राण त्याग करे तो अत्युत्तम है।

(३)

अर्जुन ने युद्ध मे अपूर्व वीरता दिखाई, उन्होंने दिन का अन्त होते-होते जयद्रथ को मार डाला। धृष्टद्युम्न भी द्रोण के केश खींचकर उन्हें मारने लगे।

इसी समय एक ओर से क्रुद्ध हुआ अश्वत्थामा, नङ्गी तलवार लिये, आ रहा था। उसका ध्यान युद्धभूमि में उठे हुए कोलाहल की ओर खिच गया। वह सोचने लगा कि अवश्य मेरे पिता ने—अर्जुन, सात्यकि अथवा भीम से उत्तेजित होकर—अपने शिष्यों के प्रति मोह त्यागकर यथोचित शक्ति दिखाना आरम्भ किया है। ऐसा विचार कर अश्वत्थामा स्वय भी उधर चल पडा। मार्ग मे भागती हुई सेना को वह आश्वासन देने लगा। परन्तु द्रोण के सारथी ने आकर उसे बताया कि द्रोणाचार्य का देहान्त हो गया। यह सुनकर अश्वत्थामा मूर्च्छित हो गया। चेत होने पर वह कुछ समय तक विलाप करता रहा। इसके अनन्तर सारथी से पूछने लगा—शौर्य के समुद्र मेरे पिता का देहान्त कैसे हुआ? क्या भीम ने गुरु-दक्षिणा के रूप मे मेरे पिता को गदा से मार डाला, अथवा

अर्जुन ने उनका वध किया, अथवा कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र द्वारा उनके प्राण हरण किये ?

सारथी—जब तक वे शस्त्र-अस्त्र से सुसज्जित थे, भला उनके सामने ये क्या फटक सकते थे ? शोक-सन्तप्त होकर उन्होंने जब शस्त्र त्याग दिये तब शत्रु ने यह घोर कर्म किया।

अश्वत्थामा ने शोक का कारण पूछा तो सारथी ने बताया कि सत्यवादी युधिष्ठिर ने जब स्पष्ट रूप से कहा कि 'अश्वत्थामा मारा गया'—और अस्पष्ट रूप से कहा 'हाथी या मनुष्य' तब आचार्य ने 'हाथी या मनुष्य' नहीं सुना। उन्होंने युधिष्ठिर के वचन को सत्य मानकर अस्त्र और आँसू एक साथ गिरा दिये।

यह जानकर कि पिता ने मेरे लिए प्राण खो दिये, अश्वत्थामा को और भी शोक हुआ और वह मूर्च्छित हो गया।

इस समय अश्वत्थामा को ढूँढते हुए कृपाचार्य भी वहाँ आ गये। सचेत होने पर अश्वत्थामा रोता हुआ युधिष्ठिर को धिक्कारते हुए कहने लगा—युधिष्ठिर! तुमने आजन्म कभी झूठ नहीं कहा। तुम किसी से द्वेष नहीं करते हो, इस कारण अजातशत्रु कहलाते हो। परन्तु मेरे भाग्य के दोष से पिता, गुरु और श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिए तुम्हारे वे सब गुण कैसे एकदम नष्ट हो गये ?'

फिर मामा कृपाचार्य को देखकर अश्वत्थामा की शोकाग्नि और बढ़ गई। क्षण भर के लिए भी उसे जीवन भारी हो गया, परन्तु इसी समय एक ओर से शब्द सुनाई दिया कि 'धृष्टद्युम्न

द्रोणाचार्य का सिर काटकर जा रहा है, कोई बदला क्यों नहीं लेता ?' अश्वत्थामा उत्तेजित होकर कहने लगा—हा पिता ! हा पुत्र-प्रेमी ! मुझ अभागे के लिए शस्त्र त्याग देने पर आप क्षुद्र पुरुष से इस प्रकार तिरस्कृत हुए ! जब युद्धभूमि में सबसे आगे खड़े होकर शोक-सन्ताप के कारण आपने शरीर त्याग दिया तब कुत्ता, कौआ अथवा द्रुपद का पुत्र कोई भी उसे स्पर्श कर सकता था। हे दुरात्मा पाञ्चाल-कुल-कलङ्क ! पिताजी के शस्त्र त्याग देने पर क्या तुमने यह नहीं जाना था कि अश्वत्थामा धनुर्बाण लिये आता है ? ओह युधिष्ठिर ! युधिष्ठिर ! अजातशत्रु, अमिथ्यावादी, धर्मपुत्र ! मेरे पिता ने तुम्हारा या तुम्हारे भाइयों का क्या अपकार किया था ? अथवा उस अलीक-प्रकृतिवाले कुटिलचेता को क्या कहना ? अर्जुन, सात्यकि, भीम, माधव ! तुम लोगों को क्या यह उचित था कि सुरलोक, असुरलोक तथा नरलोक में धनुर्धारी वृद्ध ब्राह्मण जगद्गुरु मेरे पिता के सिर को नीच धृष्टद्युम्न से स्पर्श किये जाते समय तुम सब उपेक्षा करते रहे ! अथवा ये सब पातकी हैं। इनका क्या ? जिसने भी यह महापातक देखा, किया, कराया या इसमें अनुमति दी—कृष्ण, भीम, अर्जुन सहित—उन सबके रुधिर-मांस से मैं दिशाओं को बलि दूँगा।

कृपाचार्य ने भी उसे उत्तेजित करने के लिए कहा—वत्स ! भारद्वाज के तुल्य बाहुबलवाले, दिव्यास्त्र समूह में निपुण, तुम क्या नहीं कर सकते ?

अश्वत्थामा ने उत्तेजित होकर फिर कहा—ओह दुष्ट पाण्डवो। क्षत्रियो। पिता के सिर का स्पर्श होने पर प्रज्वलित अग्नि के समान परशुवाले राम ने जो कर्म किया था वह क्या तुमने नहीं सुना ? क्या आज क्रोधान्ध अश्वत्थामा अपने शत्रुओ का रक्त-मांस हिंसक जीवों को खाने के लिए देने मे असमर्थ है ?

कृपाचार्य—वत्स ! तुम्हारे बिना इस भयानक तिरस्कार-रूपी अग्नि से कौन रक्षा कर सकता है ? इसका बदला अवश्य लेना चाहिए। मेरी इच्छा है कि तुम युद्धक्षेत्र में जाकर सेनापति-पद पर अभिषिक्त हो जाओ।

अश्वत्थामा—यह परवश और निरर्थक है।

परन्तु कृपाचार्य के कहने-सुनने पर अश्वत्थामा ने स्वीकार कर लिया और दोनों दुर्योधन के पास गये।

उधर कर्ण और दुर्योधन दोनो बातचीत कर रहे थे। द्रोणाचार्य का युद्ध मे अस्त्र-त्याग करना दुर्योधन को बहुत अखरा। वह कहता था—भाई-बन्धुओं के मारे जाने पर किसी तेजस्वी पुरुष को अपने अस्त्र-द्वारा बदला लेना चाहिए। पुत्र की मृत्यु सुनकर अस्त्र ग्रहण करने के बदले अस्त्र त्याग देने का कारण मेरी समझ मे नहीं आता। अथवा, प्रकृति दुस्त्यज है। इस कारण शोक-विह्वल होकर उन्होंने क्षत्रियों के क्रूर धर्म को छोड दिया और ब्राह्मणोचित कोमलता स्वीकार कर ली।

कर्ण ने इस पर और ही रङ्ग चढाया। उसने कहा—द्रोण का अभिप्राय यह था कि अश्वत्थामा को पृथ्वी के राज्य

पर अभिषिक्त करूँगा। अब उसके न होने से वृद्ध ब्राह्मण का शस्त्र ग्रहण व्यर्थ था। इस कारण उसने अस्त्र त्याग दिये।

दुर्योधन को भी यह विचार उचित जँचा। कर्ण ने इस विचार की पुष्टि के लिए कहा—सब कहीं ऐसा ही प्रसिद्ध है कि द्रुपद ने बालकपन में ही, इसका अभिप्राय समझकर, इसे अपने राज्य में नहीं रहने दिया था।

इतने में कृपाचार्य और अश्वत्थामा दोनों वहाँ पहुँचे। उन्हें देखकर दुर्योधन आसन से उतर पड़ा। उसने कृपाचार्य को प्रणाम किया और अश्वत्थामा के पिता की मृत्यु पर शोक प्रकट किया।

इसके अनन्तर कृपाचार्य ने दुर्योधन से कहा—द्रोणपुत्र ने बड़ा भारी बोझ उठाने का निश्चय किया है। मेरे विचार में सेनापति-पद पर इन्हें अभिषिक्त कर देना चाहिए।

दुर्योधन ने कृपाचार्य की सम्मति की प्रशंसा कर निवेदन किया कि मैं यह पद कर्ण को पहले ही दे चुका हूँ।

इस पर कृपाचार्य ने कहा—ऐसे अतुल अपमान के शोक-सागर में डूबे हुए इन अश्वत्थामा की, कर्ण के कारण, उपेक्षा करनी उचित नहीं। इन अश्वत्थामा से भी वही शत्रु-दमन का कार्य होगा। यदि आप इन्हें सेनापति न बनायेंगे तो इन्हें निस्सन्देह दुःख होगा।

अश्वत्थामा—कुरुराज। क्या अब भी भले बुरे के विचार का समय है? आज आप सारी रात शयन करेंगे और प्रातः-

काल स्तुतियो द्वारा कठिनता से जगाये जायँगे। आज ही यह भूमि केशव, पाण्डवों और सोमको से रहित हो जायगी। आज ही मेरे वाहुबल द्वारा युद्ध का अन्त हो जायगा। अनेक राजाओ क बोझ से पृथिवी भी हलकी हो जायगी।

इस पर कर्ण मुस्कराया। वह बोला—कहना सहज है, करना कठिन। कौरव-सेना में ऐसा करने मे समर्थ अनेक वीर हैं।

अश्वत्थामा—कर्ण! हाँ, यह ठीक है कि कुरुसेना में यह कार्य करने में समर्थ अनेक वीर हैं। परन्तु दु ख से अभिभूत होकर मैंने ऐसा कहा है, न कि किसी पर कटाक्ष करने के अभिप्राय से।

कर्ण—मूढ! जो दु खी होता है वह आँसू बहाता है और जो क्रोधित होता है उसे युद्ध में जाना ही उचित है, न कि इस प्रकार के प्रलाप करना।

अश्वत्थामा को अब क्रोध आ गया। उसने कर्ण को नीच सूत, राधेय आदि शब्दों से सम्बोधित कर कहा—तू मुझ पर आक्षेप करता है। तू मुझ दु खित को रोना ही औषध बताता है, न कि शस्त्र-ग्रहण। देख! क्या मेरे शस्त्र तेरे शस्त्रों की नाई शाप से शक्तिहीन हैं? मैं क्या तेरे समान युद्ध से भाग आया हूँ? मैं क्या सूत-वश में उत्पन्न हुआ हूँ जो केवल राजाओ की स्तुतिप्रशसा अथवा वशावलियो का वर्णन करना ही जानता हूँ? सो मे नीच से किये गये अपमान का बदला, शस्त्रों से न चुकाकर, आँसुओं से क्यों चुकाऊँ?

अब तो कर्ण भी उत्तेजित होकर बोला—रे वाचाल, वृथा शस्त्रग्राही, अनाड़ी बालक! मेरे अस्त्र शाप से शक्तिहीन हों चाहे न हों, किन्तु पाञ्चालों के भय से, तेरे पिता के समान, त्यागे तो नहीं गये।

इस पर अश्वत्थामा के क्रोध की सीमा न रही। वह बोला—अरे सारथि कुल-कलङ्क! शस्त्र ज्ञान-शून्य! तू मेरे पिता का भी तिरस्कार करता है! वे भीरु थे या वीर, इस चर्चा को छोड़, उनका बाहु-प्रताप तो तीनों लोकों में विख्यात है। सब जानते हैं कि उन्होंने दिन-प्रति दिन युद्धभूमि में क्या-क्या कार्य किये हैं। उनके शस्त्र त्याग का कारण युधिष्ठिर की सत्यवादिता है। कायर! तू उस समय कहाँ भाग गया था?

कर्ण ने मुस्कराकर कहा—मैं कायर हूँ और तेरा पिता वीरता की मूर्त्ति! मूढ! शस्त्र-त्याग करने पर भी वीर जन, निःशस्त्र ही, शत्रुओं का सामना करते हैं। तेरा पिता तो अधिक समय तक, अबला की नाईं, राजाओं के सामने निरुद्यम बैठा रहा, तब उसका सिर काटा गया।

अश्वत्थामा क्रोध से काँपने लगा और बोला—दुरात्मन्, राजवल्लभ, वाचाल, नीच सूत, असम्भव प्रलाप करनेवाले! किसी कारण शोकार्त्त होकर अथवा कायरता के कारण, जैसा कि तू कहता है, मेरे पिता ने द्रुपद के पुत्र का हाथ नहीं रोका। परन्तु भुजबल के गर्व से उद्धत तेरे सिर पर मैं यह पैर रखता हूँ, रोक।

सन का सा व्यवहार दुर्योधन के साथ भी न करे। सारथी ने एक सरोवर के किनारे, वट-वृक्ष के नीचे, रथ ठहरा दिया। जहाँ कमलों से सुवासित शीतल वायु के झोंके आ रहे थे। वायु का प्रभाव चन्दन-लेप की ही तरह था। वहाँ रथ ठहराकर सारथी, कौरवो के विपक्षी, भाग्य को धिक्कारने लगा।

जब दुर्योधन की मूर्च्छा टूटी तब वह, दु शासन का ध्यान कर, स्वय कहने लगा कि जब तक दुर्योधन जीता है तब तक भीम की क्या शक्ति है कि वह प्रतिज्ञा को पूर्ण कर सके। दु शासन। भय मत करो। वत्स। मैं आ रहा हूँ। फिर सारथी से कहने लगा कि अरे सारथी। दु शासन के निकट रथ ले चल। परन्तु जब उसे विदित हुआ कि दु शासन का अन्त हो चुका तब वह पुन मूर्च्छित होकर गिर पडा। सचेत होने पर विलाप करने लगा। विलाप करते-करते वह फिर अचेत हो गया।

इस समय सुन्दरक नाम का एक आहत सैनिक, दुर्योधन को खोजता हुआ, वहाँ आ गया। चेत होने पर दुर्योधन ने उसे देखकर कर्ण की कुशल पूछी।

सुन्दरक—देव। शरीर-मात्र से कुशल है। मनोरथ सहित उनका रथ भग्न हो गया है।

दुर्योधन—व्यर्थ क्यो व्याकुल करते हो? स्पष्ट कहो।

सुन्दरक—कुमार वृषसेन की मृत्यु हो गई।

यह सुनकर दुर्योधन फिर मूर्च्छित हो गया। चेत होने पर उसने पूछा—कर्ण का क्या समाचार है?

सुन्दरक ' अधिक समय तक रो-धोकर कर्ण फिर युद्ध के लिए डट गये हैं। वस्त्र का एक टुकड़ा फाड़कर, अपने शरीर से निकलते हुए रक्त से, उन्होंने यह पत्र आपको लिखा है।" अब सुन्दरक ने दुर्योधन को पत्र दे दिया।

दुर्योधन ने पत्र पढा। उसमें लिखा था—स्वस्ति। महाराज दुर्योधन को गले लगाकर युद्धभूमि से कर्ण निवेदन करता है कि आप इस प्रकार मेरा सत्कार करते थे कि 'अस्त्रों के प्रयोग में यह निपुण है, इसके समान युद्ध में और कोई पुरुष नहीं है, यह मुझे भाइयों से अधिक प्रिय है, इससे पृथा के पुत्र पराजित होंगे।' किन्तु दु शासन के शत्रु भीम को मैं नहीं मार सका। अब आप दु ख का प्रतिकार या तो अपने भुज-बल से करें अथवा आँसुओं से।

यह पत्र पढकर दुर्योधन और भी दु खी हुआ। उसने व्याकुल होकर सुन्दरक से पूछा—अब कर्ण क्या कर रहे हैं?

सुन्दरक—अपना कवच उतारकर, मरने के लिए सज्जित होकर, अर्जुन के साथ युद्ध के लिए इच्छुक हैं।

यह सुनकर दुर्योधन सहसा क्षुब्ध सा हो उठा। रथ में बैठकर वह कर्ण के पास जाने का उद्यत हुआ। सुन्दरक को भी वहाँ भेज दिया। अभी वह जाने ही लगा था कि गान्धारी और धृतराष्ट्र वहाँ आते दिखाई पड़े। साथ में सारथी सञ्जय

था। दुर्योधन बड़े असमञ्जस में पड़ा। वह सोचता था कि प्रातःकाल हम दोनों भाई—दुःशासन और मैं—माता-पिता को प्रणाम कर युद्ध-भूमि को गये थे। अब बिना दुःशासन के उनसे किस प्रकार मिलूँ? मुझे बड़ी लज्जा आती है।

(५)

वट-वृक्ष के नीचे लज्जा से सिर झुकाये बैठे दुर्योधन को सञ्जय ने देख लिया। वह धृतराष्ट्र और गान्धारी को वहाँ ले आया। पास पहुँचकर धृतराष्ट्र और गान्धारी ने दुर्योधन को गले लगा लिया। उसे युद्ध रोक देने के लिए गान्धारी समझाने लगी। उन्होंने कहा कि हम नेत्रहीनों के तुम्हीं आश्रय हो। तुम चिरञ्जीव रहो। राज्य अथवा विजय से हमें क्या काम?

परन्तु दुर्योधन इस विचार पर सहमत न हुआ। उसने कहा—माताजी! आप जैसी क्षत्रियाणी को ये वचन नहीं सोहते। अवश्य पुत्र-शोक ने ही आपकी यह दशा कर दी है। सौ पुत्रों के मारे जाने पर तो आपने चिन्ता नहीं की और अब मुझ अभागे की रक्षा करना चाहती हो?

सञ्जय—महाराज! क्या यह कहावत असत्य है कि कुएँ में घड़ा गिर जाय तो उसमें रस्सी न फेंक देनी चाहिए।

दुर्योधन—"जब कार्य ही नहीं तब उसकी सामग्री से क्या काम? जब भाई ही नहीं रहे तब अब मेरी प्राण-रक्षा से क्या लाभ?" इतना कहकर दुर्योधन रोने लगा।

अब धृतराष्ट्र ने भी दुर्योधन को युद्ध से मना करके कहा—बेटा! इस समय जो युधिष्ठिर माँगें वह देकर सन्धि कर लो।

परन्तु दुर्योधन न माना। कहने लगा—पिताजी! पुत्र-नाश के कारण मेरी माता अथवा मूढ सञ्जय भले ही यह कहे परन्तु आपको भी यह मोह! अथवा पुत्र-नाश से हार्दिक व्यथा तीव्र हो गई है। पिताजी! जब मेरे सौ भाई जीवित थे तब तो मैंने सन्धि का प्रस्ताव स्वीकार ही नहीं किया, अब, सबका नाश कराकर, अपनी रक्षा के लिए पाण्डवों से कैसे सन्धि कर सकता हूँ? आत्माभिमानी के लिए यह लज्जा की बात है। एक बात और भी है। सञ्जय सुनो, शत्रु से हीन-दीन किये जाने पर राजा लोग उसके साथ सन्धि करते हैं। जब दुःशासन का देहान्त हो गया और पाण्डव वैसे ही हैं तब वे सन्धि क्यों करेंगे?

धृतराष्ट्र—वत्स! यद्यपि ऐसा ही हो तथापि युधिष्ठिर, मेरी प्रार्थना से, सब कुछ स्वीकार कर लेंगे। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की है कि यदि मेरा एक भी भाई मारा जायगा तो मैं जीवित न रहूँगा। और युद्ध तो छल-कपट-युक्त होता है अतः वे अपने भाइयों की मृत्यु के लिए शङ्कित होंगे। वे तो चाहे जब सन्धि का प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए उद्यत हो जायँगे।

सञ्जय और गान्धारी ने भी इस विचार का समर्थन किया। परन्तु दुर्योधन का हठ कौन हटा सकता था?

दुर्योधन—जब युधिष्ठिर ने केवल एक भाई के लिए ऐसी प्रतिज्ञा की है तब मैं सौ भाइयो के मारे जाने पर भी जीवित रहूँ ! दु शासन का रक्त पान करनेवाले भीम को मैं, गदा-द्वारा, टुकडे-टुकडे कर क्यो न फेंक दूँ ?

दु शासन की मृत्यु का स्मरण आने पर गान्धारी शोकाकुल हो गई । वे कहने लगीं—हा अभागिनी गान्धारी ! सौ वीरो की जननी ! तूने सौ दु ख उत्पन्न किये हैं, न कि सौ पुत्र ।

धृतराष्ट्र ने भी कहा—वत्स ! भाग्य हमारे प्रतिकूल है ! तुम स्वाभिमान का त्याग नहीं करते । गान्धारी और मैं किसका आश्रय ग्रहण करें ? यदि तुम्हारा ऐसा ही निश्चय है तो गुप्त रूप से शत्रु के मारने का उपाय करो ।

यह सुनकर दुर्योधन, विस्मित होकर, बोला—मेरे भाई तो रण में प्रत्यक्ष मारे गये हैं । नि सन्देह शत्रु गुप्त रूप से मारने योग्य नहीं ।

इस समय भारी कोलाहल सुन पडा । सारथी शल्य, कर्ण का खाली रथ लेकर, जाता हुआ दिखाई दिया । वृत्तान्त जानने के लिए दुर्योधन ने अपना सारथी शल्य के पास भेजा । सारथी ने आकर सूचना दी कि कर्ण मारे गये । यह सुनकर दुर्योधन मूर्च्छित हो गया । दुखिया गान्धारी और धृतराष्ट्र ने पुत्र को आश्वासन दिया । दुर्योधन सचेत होकर कहने लगा—"जब मेरे प्राणों से प्रिय मित्र कर्ण ही मारे गये तब

मुझे श्वास लेने भी लज्जा आती है। दुःशासन आदि सब से प्रिय कर्ण को जिसने मारा है उसके कुल का नाश मैं युद्ध में करूँगा।" इतना कहते हुए दुर्योधन रोने लगा।

गान्धारी—बेटा, इन आँसुओं को जरा रोको।

धृतराष्ट्र—वत्स। आँसुओं को पोंछ लो।

परन्तु दुर्योधन बोला—मेरे लिए प्राण न्योछावर करते हुए कर्ण को तो आप लोगों ने नहीं रोका, अब उसके लिए आँसू गिराने से भी मुझ नीच को रोकते हैं।

धृतराष्ट्र—सारथी। हमारे कुल का अन्त करनेवाला यह असम्भव कार्य किसने किया?

सञ्जय—सुना है कि जब कर्ण का रथ-चक्र कीचड़ में धँस गया तब अर्जुन ने, कृष्ण की प्रेरणा से, उनके प्राण हर लिये।

यह सुनकर दुर्योधन का शोक और क्रोध दोनों बढ़ गये। शोक से उत्पन्न हुई दुःसह अग्नि उसको जलाने लगी। उसने कहा कि जब मरना निश्चित ही है तब युद्ध में प्राण-त्याग करना श्रेष्ठ है।

यह विचार सुनकर धृतराष्ट्र रो पड़े, दुर्योधन को गले लगाकर बोले—वत्स। इन पाण्डवों के साहसयुक्त कार्यों में संशय होता है। भीम का ध्यान आने पर मेरा हृदय पिघल जाता है। हे मानी पुत्र। तुम्हारा युद्ध निष्कपट है और पाण्डवों का छल-युक्त। हाय। मैं मरा।

गान्धारी—तुम क्या उसी भीम के साथ युद्ध करना चाहते हो जिसने मेरे सौ पुत्रों को नष्ट किया है ?

'अच्छा, तो कर्ण के घातक अर्जुन के ही साथ सही।" इतना कहकर दुर्योधन ने सारथी को रथ लाने की आज्ञा दी। दुर्योधन ने अपनी अश्रु-धारा द्वारा ही अपने आपको सेनापति-पद पर अभिषिक्त कर लिया।

इस समय सहसा कोलाहल हुआ। रथ पर बैठे हुए दो पुरुष, दुर्योधन की खोज में, इधर ही आ निकले। ये भीम और अर्जुन थे। इन्हें यहाँ आते जानकर गान्धारी और धृतराष्ट्र डर गये। कुछ पास आकर भीम ने ललकारकर कहा—अरे दुर्योधन के अनुचरो! तुम्हारा राजा दुर्योधन कहाँ है? वह कर्ण का मित्र और सौ भाइयों में ज्येष्ठ भ्राता कहाँ है? वह द्यूत-छल का कर्त्ता, लाक्षा-गृह का जलानेवाला, द्रौपदी के केश और वस्त्र खींचनेवाला अभिमानी, जिसके पाण्डव दास हैं, कहाँ है? हम यहाँ क्रुद्ध भाव से नहीं आये, हम तो उससे मिलने आये हैं।

इन वचनों से धृतराष्ट्र डर गये। दुर्योधन ने अपने सारथी द्वारा कहलवा दिया कि मैं यहाँ हूँ।

सारथी ने जाकर कह दिया—महाराज यहाँ माता-पिता के साथ वट-वृक्ष के नीचे बैठे हैं।

यह सुनकर भीम और अर्जुन दोनों, गुरुजनों को प्रणाम करने के लिए, आगे बढ़े। अन्यथा यह शिष्टाचार के विरुद्ध होता। अर्जुन ने पास आकर कहा—जिस पर आपके

पुत्रों ने विजय की आशा बाँध रक्खी थी और जिसके बल पर गर्वित होकर उन्होंने सारे संसार को तृणवत् समझ लिया था, उसी कर्ण को मारनेवाला मध्यम पाण्डव आप दोनों माता-पिता को प्रणाम करता है।

भीम ने भी कहा—जिसने सारे कौरवों को पीस डाला, जो दुःशासन के रक्त-पान से मतवाला हो रहा है और जिसने दुर्योधन की जङ्घाएँ तोड़ने की प्रतिज्ञा की है वह भीम सिर झुकाकर प्रणाम करता है।

ये वचन धृतराष्ट्र को अखरे। वे बोले—अरे दुरात्मा वृकोदर! यह सब तूने अकेले नहीं किया। क्षत्रिय होकर भी क्यों अपनी श्लाघा करता है। इन प्रशंसासूचक वचनों से तू क्यों मुझे दुःखी करता है?

दुर्योधन को भी क्रोध आ गया। वह बोला—अरे वायु के पुत्र! वृद्ध राजा के सामने तू अपने जघन्य कर्म की इस प्रकार प्रशंसा क्यों करता है? द्रौपदी के केश मेरी आज्ञा से खींचे गये थे। अन्य राजाओं के वध में क्या प्रयोजन? मुझे बिना जीते दर्प करना उचित नहीं।

अब दुर्योधन भीमसेन पर झपट पड़ा। धृतराष्ट्र ने हाथ पकड़कर उसे बैठा लिया। भीम को भी क्रोध आ गया। वे दुर्योधन को भला-बुरा कहने लगे। दुर्योधन भी इनकी बातों का वैसे ही कटु और तीक्ष्ण उत्तर देता गया। यदि सूर्यास्त के समय युधिष्ठिर की युद्ध बन्द करने की आज्ञा न होती तो

दोनों का युद्ध अनिवार्य था। युद्ध बन्द करने की आज्ञा सुन-कर भीम और अर्जुन अपने विश्राम-स्थान को लौट गये।

इतने में कर्ण की मृत्यु का सवाद पाकर अश्वत्थामा दुर्यो-धन के पास जाकर बोला—कर्ण ने सुखद वचन कहकर युद्ध-क्षेत्र मे जैसा यश प्राप्त किया उसे आपने सुना होगा। अब द्रोण-पुत्र अपना धनुष ताने हुए, शत्रु सहार के लिए उद्यत होकर, आता है। प्रतिकार के लिए आप दु ख न करें।

अश्वत्थामा से दुर्योधन ने, अनादर के भाव से, कहा—कर्ण के मरने के पश्चात् युद्ध करने का तुम्हारा निश्चय था। सो अब मेरा भी अन्त देख लो। मुझमें और कर्ण में क्या अन्तर है ?

इस उत्तर से अश्वत्थामा को दुर्योधन का, कर्ण के प्रति, पक्षपात प्रत्यक्ष हो गया। वह उठकर चला गया।

धृतराष्ट्र ने कहा भी कि अश्वत्थामा को साथ ले लो, परन्तु दुर्योधन ने उनकी एक न सुनी। धृतराष्ट्र ने अश्व-त्थामा का क्रोध शान्त करने के लिए सञ्जय को भेजा। रथ लेकर दुर्योधन युद्धभूमि में चला गया। धृतराष्ट्र और गान्धारी मद्रराज शल्य के विश्रामस्थान को गये।

(६)

द्रौपदी और युधिष्ठिर चिन्तित बैठे थे। भीष्म पितामह, द्रोण, कर्ण, शल्य आदि की मृत्यु से युधिष्ठिर ने अपना कार्य

प्राय: समाप्त ही समझा था। परन्तु भीम की नई प्रतिज्ञा ने सबके प्राणों को सङ्कट में डाल दिया। भीम की नई प्रतिज्ञा सुनकर दुर्योधन कहीं छिप गया था। उसका पता न चलता था। युधिष्ठिर ने विवश होकर उसे खोजने के लिए सर्वत्र दूत भेजने की आज्ञा दी ही थी कि पाञ्चालक वहाँ आ गया। उसने सूचना दी—दुर्योधन मिल गया है। भीम के साथ उसका युद्ध हो रहा है।

युधिष्ठिर और द्रौपदी ने उसके मिलने का पूर्ण वृत्तान्त सुनना चाहा। पाञ्चालक कहने लगा—महाराज! जब आपने मद्रराज शल्य का नाश कर दिया, सहदेव ने गान्धार-कुल को अपनी शस्त्राग्नि में दग्ध कर दिया, धृष्टद्युम्न ने अवशिष्ट सेना को तितर-बितर कर दिया और कृपाचार्य, कृतवर्मा तथा अश्वत्थामा युद्धक्षेत्र से हट गये तब भीम की भयानक प्रतिज्ञा के भय से दुष्ट दुर्योधन, किसी अज्ञात स्थान में, कल तक के लिए छिप गया। तब भीम और अर्जुन कृष्ण द्वारा सञ्चालित रथ पर चढ़कर उसे ढूँढने लगे। परन्तु सब प्रयत्न निष्फल रहा। भीम और अर्जुन—वरञ्च कृष्ण तक—निराश हो गये और भाग्य की चिन्ता करने लगे। सौभाग्य से, भीम के परिचित एक आखेटक ने आकर सूचना दी—"कुमार! इस विशाल सरोवर के तट पर, उसमें प्रवेश करनेवाले, दो पुरुषों के पद-चिह्न हैं। उनमें से एक तो स्थल पर लौट आया है, किन्तु दूसरा नहीं लौटा। अब कुमार इस पर स्वयं विचार

कर ले।" यह सुनकर हम सब तुरन्त वहाँ गये। तट पर पहुँचने पर वासुदेव ने, पद-चिह्न देखकर, कहा कि ये सुयोधन के ही पद-चिह्न हैं। वह जलस्तम्भिनी विद्या जानता है। उस विद्या के प्रभाव से वह जल मे ही रह सकता है। सो वह अवश्य तुम्हारे भय से सरोवर में छिपा हुआ है।

कृष्ण का यह कथन सुनकर भीम ने सरोवर का जल मथ डाला और गरजकर कहा—अरे वृथा बकवादी, मिथ्या पौरुषाभिमानी, पाञ्चाल-पुत्री के केश खींचनेवाले महापातकी, नीच धार्तराष्ट्र। तू समझता है कि निर्मल चन्द्रवश में तेरा जन्म हुआ है। तूने अभी तक गदा धारण कर रक्खी है। सुरा के समान दु शासन का उष्ण रक्त पान करनेवाले मुझको तू शत्रु समझता है। दर्पान्ध। तू कृष्ण के प्रति भी उद्धत चेष्टा करता है। अब मेरे भय से कीचड में छिपकर बैठा है।

अब दुर्योधन सरोवर से ऊपर निकलकर बोला—रे भीम। तू क्या यह सोचता है कि दुर्योधन तुझसे डरकर छिप रहा है? मूढ। बिना पाण्डु-पुत्रों का वध किये खुले स्थान में विश्राम करने में लज्जा आने के कारण मैं सरोवर में आ गया था।

दुर्योधन अब जल से बाहर निकलकर पृथ्वी पर, गदा फेंककर, बैठ गया। आसपास अपने दल के वीरों के शवों को गीधों, कौओ और शृगालों आदि द्वारा घिरे हुए देखकर वह दीर्घ नि श्वास लेने लगा। बन्धुओ और मित्रों के नष्ट

हो जाने पर, और एक भी कौरव न दीख पडने पर, दुर्योधन का कलेजा दहल गया।

दुर्योधन की यह दशा देखकर भीम ने कहा—अब तेरा, बन्धुओ के नाश का, शोक करना वृथा है। यह चिन्ता मत कर कि तू अकेला है और हम पॉच भाई है। हम पॉचो मे से जिसको तू अपने योग्य समझता हो उससे युद्ध कर।

यह सुनकर दुर्योधन ने भीम के साथ युद्ध करना स्वीकार किया। अब भीम और दुर्योधन युद्ध करने लगे।

मुझे भगवान् कृष्ण ने आपके पास यह सन्देश देकर भेजा है कि भीम और दुर्योधन का युद्ध हो रहा है। आप निश्चय जाने कि आपके मार्ग के कण्टक अब दूर हो गये। सो शुभ उत्सव की तैयारी कीजिए। अब आपके राज्याभिषेक मे कुछ सन्देह नही।

द्रौपदी—त्रिलोकी के स्वामी का कथन अन्यथा कैसे हो सकता है।

युधिष्ठिर ने भी यही सोचकर जयन्धर को बुलाया और भीम की विजय-कामना के लिए उत्सव मनाने की आज्ञा दी। फिर पाञ्चालक को, प्रिय सूचना लाने के कारण, पारितोषिक देने को कहा।

पाञ्चालक को साथ लेकर जयन्धर चला गया।

अब द्रौपदी ने युधिष्ठिर से एक प्रश्न किया। उसने पूछा—महाराज। स्वामी भीम ने उस दुष्टात्मा से यह क्यो

कहा कि हम पाँचों में से किसी एक के साथ युद्ध करो। यदि उसने नकुल या सहदेव के साथ युद्ध करने को कहा होता तो घोर विपत्ति आ पडती।

युधिष्ठिर—कृष्ण। जरासन्ध का घातक भीम यह जानता है कि ग्यारह अक्षौहिणी सेना तथा बन्धु-बान्धवों के नष्ट हो जाने पर, शरीर मात्र बचने से, कहीं निरभिमान और शस्त्र-त्यागी होकर, सुयोधन तपोवन में न चला जाय या पिता से कहकर सन्धि की प्रार्थना न कर बैठे। क्योंकि वैसा होने पर सब शत्रुओं के सहार की प्रतिज्ञा कैसे पूर्ण होती? और युद्ध में सुयोधन किसी भी पाण्डव का सामना नहीं कर सकता। भीम के साथ इसके गदायुद्ध की ही मैं सम्भावना देखता हूँ। यह ठीक है कि रण मे क्रोध से गदा घुमाते हुए भीम के सदृश कोई नहीं है, पर दुर्योधन गदा-युद्ध मे वैसा ही निपुण है जैसे दिव्य बलराम। मेरे भाई का कल्याण हो, मुझे दुर्योधन के साथ उसके युद्ध की सम्भावना है, न कि औरों के साथ।

इस समय एक ओर से शब्द आया कि मैं प्यासा हूँ, कोई जल और छाया दे। यह सुनकर युधिष्ठिर ने उस पुरुष को बुलवा भेजा। वह सामने आकर खडा हो गया और मन में कहने लगा कि मैं (मुनि के वेष में) चार्वाक राक्षस हूँ। दुर्योधन का मित्र हूँ। अब पाण्डवों को छलने के लिए घूम रहा हूँ।

युधिष्ठिर ने मुनि को प्रणाम किया और उसके लिए जल मँगवा दिया।

जल-पान करके मुनि जब शान्त हो गया तब युधिष्ठिर ने उससे, इतने परिश्रान्त हो जाने का, कारण पूछा।

चार्वाक–मुनियों को कौतुक देखने की इच्छा स्वाभाविक ही है। इसी कारण मैं कौरव-पाण्डवों का युद्ध देखने के लिए कुरुक्षेत्र में घूम रहा था। आज शरद्-ऋतु का तीक्ष्ण ताप था। इस कारण अर्जुन और दुर्योधन का गदा-युद्ध बिना पूरा देखे ही चला आया हूँ।

यह सुनकर जयन्धर ने कहा—मुनि। ऐसा नहीं, 'भीम और सुयोधन का युद्ध' कहो। परन्तु चार्वाक ने कहा कि बिना वृत्तान्त जाने मुझसे ऐसा क्यों कहते हो?

अब युधिष्ठिर ने भी पूछा—आपने 'भीम और दुर्योधन का' क्यों नहीं कहा?

चार्वाक—वह तो हो चुका।

यह सुनकर युधिष्ठिर और द्रौपदी दोनों मूर्च्छित हो गये। जयन्धर ने जल के छींटे दिये। सचेत होकर युधिष्ठिर और द्रौपदी ने फिर पूछा—मुनि। क्या कहते हो? भीम और सुयोधन का गदा युद्ध हो चुका?

चार्वाक ने अब जयन्धर से पूछा—ये दोनों कौन हैं?

जयन्धर ने बताया कि ये महाराज युधिष्ठिर हैं और यह पाञ्चालराजपुत्री। यह जानकर राक्षस कहने लगा कि अब तो मुझ क्रूर ने दारुण-वृत्तान्त आरम्भ कर दिया है।

यह वचन सुनकर द्रौपदी फिर मूर्च्छित हो गई। युधिष्ठिर ने आँखों में आँसू भरकर पूर्ण वृत्तान्त पूछा।

चार्वाक—सुनिए, जिस समय भीम और दुर्योधन का भयानक गदा-युद्ध हो रहा था . ..।

इस समय द्रौपदी सचेत होकर सहसा उठकर बोली—हाँ, फिर?

चार्वाक—तब बलराम वहाँ आ पहुँचे। उनके सामने गदा-युद्ध देर तक होता रहा। अपने शिष्य के लिए प्रेम-प्रेरित होकर बलराम ने सुयोधन को कुछ सङ्केत कर दिया। उस सङ्केत से कुरुश्रेष्ठ ने दु शासन का बदला ले लिया।

यह सुनकर द्रौपदी और युधिष्ठिर फिर मूर्च्छित हो गये। पुन सचेत होकर उन्होंने शेष वृत्तान्त पूछा।

चार्वाक—तब भीम के वीरगति पाने पर अश्रुधारा को पोछकर, भ्रातृ-शोक से गाण्डीव धनुष फेंककर, अर्जुन ने सन्धि की इच्छा करनेवाले कृष्ण के रोकने पर भी भाई के हाथ से नवरक्त से रँगी हुई गदा ले ली और सुयोधन के ललकारने पर उससे युद्ध प्रारम्भ कर दिया। फिर गदा-प्रहार से अर्जुन की मृत्यु अवश्यभावी जानकर बलराम, अर्जुन के चिर-पक्षपाती, कृष्ण को प्रयत्न से रथ में बैठाकर द्वारका चले गये। तब मैं ।

युधिष्ठिर और द्रौपदी से अब आगे का वृत्तान्त न सुना गया। भीम के लिए प्रेम से उनका हृदय उमड आया। उनके

वीर कार्यों का स्मरण करके वे रोने लगे। द्रोपदी भीमसेन को, वेणी के बाँध देने की, प्रतिज्ञा का स्मरण कराने लगीं और अनेक विलाप करती हुई उनके साथ जलने को उद्यत हुई। उन्होंने युधिष्ठिर से चिता बनाने के लिए कहा और निवेदन किया कि आप शत्रु के प्रति, क्षत्रिय-कुल के उचित कर्त्तव्य का पालन करें अथवा जो चाहे सो करें।

युधिष्ठिर ने उत्तेजित होकर कहा—गदा-युद्ध करके अर्जुन का अनुकरण करूँगा। विजय से अब क्या लाभ ?

यह सुनकर राक्षस ने विचित्र चाल चली। वह कहने लगा—राजन्। यदि विजय की इच्छा नहीं है तो कहीं प्राण त्याग दो। वहाँ जाना व्यर्थ है।

यह सुनकर जयन्धर से बिना कुछ कहे न रहा गया। वह कहने लगा—तुम्हें धिक्कार है, तुम्हारा हृदय तो पिशाच का-सा है।

राक्षस को सन्देह हुआ कि कहीं इसने मुझे पहचान तो नहीं लिया। परन्तु प्रकट रूप से बोला—जयन्धर। अर्जुन और सुयोधन का गदा युद्ध आरम्भ हो ही गया है और मैं दोनों के गदा-सञ्चालन-कौशल को जानता हूँ। शोक विह्वल राजर्षि और कुछ अप्रिय न सुनने पावे, इस कारण मैंने ऐसा कहा है।

युधिष्ठिर ने भी यही उचित समझा। उन्होंने भीम और अर्जुन का स्वागत करने के लिए चिता में भस्म होकर प्राण-विसर्जन करने का निश्चय कर लिया। किसी सेवक से

इतना साहस न था कि आज्ञा देने पर भी ईंधन एकत्र करे। युधिष्ठिर ने स्वय चिता बनानी आरम्भ की।

अपना मनोरथ पूर्ण हुआ जानकर राक्षस चला गया।

इसी समय एक ओर से कोलाहल हुआ और शङ्खध्वनि सुनाई पड़ी। और कुछ अनिष्ट-सवाद सुनने से पहले ही ये दोनों चिता की ओर चल पडे।

युधिष्ठिर ने बुद्धिमतिका से कहा—माता से कह देना कि लाक्षागृह से बचानेवाला पाण्डव ससार मे नहीं है। यह कहकर वे जयन्धर से बोले—तुम सहदेव के पास जाओ और सहदेव तथा नकुल से कहो कि वे दोनों, हमारे कुल को पिण्ड और जल देने के लिए, जीवित बने रहे। और यदि अर्जुन लौट आवें तो उनसे कहना कि बलराम यद्यपि तुम्हारे भाई की मृत्यु के कारण हैं तो भी वे कृष्ण के भाई हैं, इसलिए तुम उन पर क्रोध न करना। यदि तुम जीवित रहो तो वन में जाकर निवास करना, न कि क्षत्रिय-रीति का अनुकरण।

चलते समय द्रौपदी ने बुद्धिमतिका दासी-द्वारा माता को यह सन्देश भेजा—जो बक, हिडिम्बा, किर्मीर, जटासुर, जरासन्ध के विजेता हैं, वे भीम मेरा पक्षपात लेने के कारण परलोक पधार गये।

मरने से पहले द्रौपदी ने दासी बुद्धिमतिका-द्वारा अपनी सास को यह सन्देश भेजा कि उत्तरा गर्भवती है। उसकी

सावधानी से रक्षा कीजिएगा। इसके द्वारा परलोक को गये श्वशुर आदि को जल-तर्पण प्राप्त होगा।

इस समय अग्नि जलने लगी। युधिष्ठिर ने पहले पूर्वजों के निमित्त जलाञ्जलि प्रदान की, फिर भीम के लिए। द्रौपदी ने भी भीम के लिए जलाञ्जलि अर्पित की।

इस समय युधिष्ठिर की दाहिनी आँख फड़कने लगी। उन्हें सन्देह हुआ कि भीम शीघ्र मिलेगा।

इसी समय एक ओर से कोलाहल सुनाई दिया। जयन्धर ने आकर निवेदन किया कि रक्त से रँगे हुए वस्त्रों-सहित यह नीच कुरु, द्रौपदी की खोज में, इधर-उधर देखता हुआ आ रहा है।

युधिष्ठिर अब अर्जुन और सुयोधन के गदा-युद्ध का परिणाम समझ गये। वे अर्जुन के शोक से मूर्च्छित हो गये। द्रौपदी भी, स्वयंवर में जीतनेवाले, अर्जुन का नाश जानकर मूर्च्छित हो गई। युधिष्ठिर सचेत होकर अर्जुन के लिए विलाप करने लगे।

उधर उस रक्त से रँगे हुए वस्त्रोंवाले व्यक्ति को पास आते देख जयन्धर ने द्रौपदी को चिता पर पहुँचाकर अपना भी प्राण त्याग देने का विचार किया। परन्तु इसी समय कोलाहल अधिक बढ़ गया। कोई द्रौपदी को पुकार-पुकारकर खोज रहा था। जयन्धर भयभीत हो गया। परन्तु युधिष्ठिर में बल का पुनः सञ्चार हुआ। वे उस व्यक्ति को

ललकारकर कहने लगे—अरे कुरु-कुल-कलङ्क। इधर आ, मैं तेरा दर्प चूर करूँ।

यह सुनकर हाथ में गदा लिये, रुधिर से लथपथ, वह व्यक्ति वहाँ पहुँचा। युधिष्ठिर, द्रौपदी तथा जयन्धर में से कोई भी उसे न पहचान सका। युधिष्ठिर ने तो रक्षा के लिए धनुर्बाण माँगा। द्रौपदी चिता पर चढने लगीं। उस व्यक्ति ने द्रौपदी को पकडने की इच्छा की। युधिष्ठिर उत्तेजित होकर उसकी भर्त्सना करने लगे। परन्तु इस समय जयन्धर ने, उस व्यक्ति को पहचानकर, कहा कि महाराज! धोखा हो गया था। ये तो चिरञ्जीव भीमसेन हैं जो सुयोधन के रुधिर से रक्त-वर्ण वस्त्रों के कारण पहचाने नहीं जाते। दासी ने भी द्रौपदी से कहा कि आपके स्वामी भीमसेन अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए आपको खोज रहे हैं।

अब सबकी शङ्का जाती रही। युधिष्ठिर ने आँसू पोंछकर भीम को पहचान लिया। वे भी आकर युधिष्ठिर के चरणों पर गिर पडे।

युधिष्ठिर—वत्स! आँसुओं से आँखें भर जाने के कारण मैं तुम्हें पहचान नहीं सका था। सो अब बताओ कि अर्जुन जीवित है न।

भीम—समस्त रिपुपक्ष का संहार करके भीम और अर्जुन जीवित हैं।

अब तो युधिष्ठिर और द्रोपदी को असीम हर्ष हुआ।

भीम ने रुधिर-रञ्जित हाथों से द्रौपदी की वेणी गूँथ दी।

कृष्ण और अर्जुन भी आ पहुँचे। कृष्ण ने युधिष्ठिर का अभिनन्दन किया। अर्जुन ने ज्येष्ठ भ्राता को प्रणाम किया।

कृष्ण—इस समय व्यास, वाल्मीकि, परशुराम आदि महर्षि, धृष्टद्युम्न आदि सेनापति, नकुल सहदेव सहित मागध, मत्स्य, यादव—पवित्र जल के कलशों को कन्धे पर उठाये हुए—युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के लिए उपस्थित हैं। मैं भी, यह जानकर कि आपको दुष्ट चार्वाक राक्षस ने ठग लिया है, अर्जुन-सहित शीघ्र आया हूँ। नकुल ने चार्वाक को दण्ड दे दिया है।

अब भगवान् कृष्ण के सामने युधिष्ठिर का राज्याभिषेक, समारोह के साथ, किया गया। पाण्डवों ने जो-जो प्रतिज्ञाएँ की थीं वे सब पूर्ण हो गई।

---

(११) रत्नावली

(१)

महाराज उदयन प्राचीन समय में वत्स देश के प्रसिद्ध राजा थे। कौशाम्बी इनकी राजधानी थी। राजा प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता इनकी पटरानी थी। स्वामि-भक्त यौगन्धरायण इनका प्रधान मन्त्री था।

मन्त्री यौगन्धरायण ने एक दिन एक पद सुना—

"द्वीपान्तर से, उदधि गर्भ से, अन्य दिशा से लाकर,
होकर दैव प्रसन्न मिलाता है संयोग मधुरतर॥"

इस पद के आशय से यौगन्धरायण भी सहमत था। उसने कहा—नहीं तो कहाँ तो सिद्ध के वचन पर विश्वास करके माँगी हुई सिंहलेश्वर की कन्या, कहाँ समुद्र में जहाज टूट जाने पर उक्त राजकुमारी का लकड़ी के तख्ते को प्राप्त करना, कहाँ कौशाम्बी के व्यापारी की सिंहलदेश से लौटते हुए उस समय उपस्थिति, और रत्नमाला की पहचान से उस राजकन्या का यहाँ तक लाया जाना। फिर कुछ सोच-कर यौगन्धरायण ने कहा—इसे रानी वासवदत्ता के हाथ में सादर सौंपकर ठीक ही किया है, क्योंकि मैंने सुना है कि बाभ्रव्य कञ्चुकी भी सिंहलेश्वर के अमात्य वसुभूति के साथ

किसी प्रकार समुद्र में तैरकर, कोशल देश के नाश के लिए जाते हुए रुमण्वान् से मिल गये हैं। अब तो महाराज उदयन के सब मनोरथ प्राय पूर्ण ही हैं।

उधर राजभवन के ऊपर इसी समय राजा उदयन 'मदन-महोत्सव' देखने आ गये। उनके साथ मित्र वसन्तक था। राजभवन के नीचे प्रजाजन राग-रङ्ग में उन्मत्त थे। केसर के चूर्ण तथा गन्ध-द्रव्य आदि के उडाये जाने से कौशाम्बी नगरी चारों ओर से पीली हो रही थी। फुहारे और पिचकारियों से एक-दूसरे पर रङ्ग की वर्षा की जा रही थी। गुलाल उड़ाये जाने से अन्धकार-सा छा रहा था।

इस दृश्य को राजा और वसन्तक प्रसन्नता से देख रहे थे कि मदनिका दासी ने जाकर महाराज से कहा—महारानी निवेदन करती हैं कि आज मकरन्द उपवन में जाकर, रक्त अशोक के नीचे स्थापित, भगवान् कामदेव की मैं पूजा करूँगी। अत महाराज मेरे साथ वहाँ रहें।

महाराज ने प्रसन्न होकर कहलवा दिया कि मैं मकरन्द उपवन में आता ही हूँ। दासी चली गई।

अब राजा उदयन और वसन्तक मकरन्द उपवन की ओर गये। थोडी देर में रानी वासवदत्ता और सखी काञ्चनमाला भी मकरन्द उपवन में आ पहुँचीं। चन्दन, माला आदि लिये सागरिका और अन्य दासियाँ साथ थीं। काञ्चनमाला ने रानी का ध्यान, राजा की लगाई हुई निरन्तर फूलों से

शोभित, माधवी लता की ओर आकृष्ट किया। इसके पास ही नवमालिका लता थी जिसको अकाल-पुष्पों की प्राप्ति की इच्छा से महाराज प्रतिदिन देखने जाया करते थे।

रानी ने रक्त अशोक के नीचे पूजा की सामग्री लाने को कहा। सागरिका ने कहा—महारानी! यह सब तैयार है।

सागरिका को देखकर वासवदत्ता ने मन में कहा कि सखियो का अज्ञान तो देखो! जिनकी दृष्टि से यत्नपूर्वक छिपाई जाती है उन्हीं के सामने यह विद्यमान है। यह विचार कर रानी ने कहा—सखी सागरिका! आज 'मदन-महोत्सव' मे सखियों के लगे रहने से तुम सारिका को क्यो छोड आई हो? शीघ्र जाओ। पूजा की सब सामग्री काञ्चनमाला को दे दो।

काञ्चनमाला को पूजा की सामग्री सौंपकर सागरिका चली गई और सोचने लगी कि सारिका तो मैंने सुमङ्गता को साप दी थी। मुझे यह देखने का कौतूहल है कि पितृगृह म भगवान् अनङ्गदेव जैसे पूजे जाते है वैसे ही यहाँ भी पुजते हैं अथवा अन्य प्रकार से। यह विचार कर वह, अदृश्य रूप से, उत्सव देखने लगी और भगवान् कामदेव की ही पूजा के लिए पुष्प भी चुनने लगी।

उधर रानी ने काञ्चनमाला से रक्त अशोक के नीचे भगवान् कामदेव को स्थापित करने के लिए कहा। काञ्चन-माला ने वैसा ही कर दिया। नूपुर-शब्द अब बन्द हो गया।

इसमें वसन्तक ने समझा कि रानी अशोक वृक्ष के नीचे पहुँच गईं।

राजा उदयन और वसन्तक भी रक्त अशोक के पास आ गये। रानी ने महाराज को आसन पर बैठाया और भगवान् कामदेव की पूजा करने के लिए अशोक की ओर हाथ बढाया। पूजा करके रानी ने, पुष्प चन्दन लेकर, महाराज का पूजन किया।

सागरिका जब पुष्प चुन चुकी तो सिन्धुवार वृक्ष के पीछे छिपकर कामदेव की पूजा देखने लगी। उसने पूजा देखकर कहा—कैसे प्रत्यक्ष भगवान् कामदेव ही पूजा को ग्रहण कर रहे है! हमारे पिता के अन्त पुर मे तो चित्रलिखित कामदेव पूजे जाते है। सो मैं भी यहाँ बैठकर इन पुष्पों से भगवान् कामदेव को पूजती हूँ।

अब सागरिका ने उनके लिए पुष्प फेंककर कहा—भगवान् कामदेव! प्रणाम है। आपका दर्शन मुझे अब लाभदायक हो। दर्शनीय को देख लिया।

फिर औरों की दृष्टि से बचने के लिए सागरिका भवन की ओर जाने लगी तो उसी समय, वैतालिक-द्वारा गाई हुई, राजा की स्तुति सुन पडी। सागरिका लौट आई और उत्सुकता से महाराज को देखकर कहने लगी कि ये तो राजा उदयन हैं जिन्हे पिता ने मेरा दान किया है। फिर दीर्घ नि श्वास लेकर कहने लगी कि पर-सेवा से दूषित मेरा जीवन, इनके दर्शन से, सफल हो गया।

अब सन्ध्या का समय देखकर राजा और रानी वासवदत्ता आदि सब राजभवन को जाने के लिए चले। सागरिका भी शीघ्रता से राजभवन को जाने लगी। उसके हृदय में यही खेद था कि वह महाराज के दर्शन यथेच्छ न कर सकी।

(२)

रानी वासवदत्ता की एक सखी सुसङ्गता थी। इसका सागरिका पर अधिक प्रेम था। एक दिन सागरिका सारिका को सुसङ्गता के हाथ सौंप गई। उसे देर तक न आते देख सुसङ्गता चिन्तित होकर उसे ढूँढने लगी। निपुणिका से उसे विदित हुआ कि उसने व्याकुल सी सागरिका को चित्रपट, कूँची और रङ्गों का डिब्बा लिये कदली गृह को जाते देखा है। सुसङ्गता ने कदली गृह में जाकर देखा कि सागरिका, बड़े अनुराग से, कुछ अङ्कित कर रही है। सागरिका ने इसे आते नहीं देखा। उसकी दृष्टि से बचकर सुसङ्गता देखने लगी कि वह क्या अङ्कित कर रही है। महाराज का चित्र देखने पर उसे आश्चर्य्य हुआ। वह मन में कहने लगी कि धन्य। सागरिका धन्य। अथवा सरोवर को छोड़कर राजहंसी अन्यत्र नहीं जाती।

उधर सागरिका की आँखों में आँसू भरे हुए थे। वह मन में कहने लगी कि मैंने यह बना तो लिया है। परन्तु निरन्तर टपकते हुए आँसुओं से मेरी दृष्टि इसे देखने में असमर्थ है।

अब सागरिका ने मुख ऊँचा करके आँसू पोंछे तो सुसङ्गता को देखकर वस्त्र से रङ्ग का डिब्बा छिपा लिया और मुस्कराकर कहा—कौन ? प्रिय सखी सुसङ्गता ! आओ, बैठो।

सुसङ्गता ने पास बैठकर चित्र छीन लिया और पूछा—सखी ! यह क्या बनाया है ?

सागरिका ने लज्जा से कहा—'मदन-महोत्सव' के दिन भगवान् कामदेव—

सुसङ्गता ने हँसकर कहा—धन्य तेरी निपुणता। यह चित्र अपूर्ण-सा क्यो जान पडता है ? मैं भी इसे रति सहित किये देती हूँ।

कूँची लेकर सुसङ्गता ने, रति के बहाने, पूर्ण सागरिका का चित्र बना दिया।

इस चित्र को देखकर सागरिका ने क्रोध से कहा—सुसङ्गता ! मेरा चित्र क्यो अङ्कित कर दिया ?

सुसङ्गता ने हँसकर कहा—सखी ! अकारण क्यो कोप करती हो ? जैसे तुमने कामदेव को चित्रित किया है, वैसे मैंने भी रति अङ्कित कर दी है।

सागरिका ने समझ लिया कि सखी मुझे ताड गई है। सो वह सुसङ्गता का हाथ पकडकर कहने लगी—प्रिय सखी ! मुझे सचमुच बडी लज्जा है। ऐसा करो जिससे कोई दूसरा इस वृत्तान्त को न जान ले।

सुसङ्गता—सखी। लज्जा मत करो। ऐसे कन्या रत्न की अवश्य ऐसे वर में अभिलाषा होनी चाहिए। तब भी कोई दूसरा इस वृत्तान्त को न जानने पावेगा। परन्तु इस मधा-विनी (सारिका) से सावधान रहना। कहीं इस वार्त्तालाप के शब्द रटकर किसी के आगे न कह दे।

सागरिका को प्रेम में अत्यन्त व्याकुल देखकर सुसङ्गता ने आश्वासन दिया, परन्तु इतने में ही अश्वपालों से छूटा हुआ बन्दर उत्पात मचाता इधर आ निकला। भयभीत सुसङ्गता और सागरिका तमाल वृक्ष की ओट में भाग गईं। चित्रपट वहीं रह गया। बन्दर ने सारिका का पिंजड़ा खोल दिया। वह पिंजड़े से निकल गई।

सारिका को पिंजड़े से निकली देखकर ये शीघ्र ही उसके पीछे गईं। इन्हें भय था कि हमारे वार्त्तालाप के ग्रहण किये हुए कुछ शब्दों को यह किसी के सामने कह न दे।

इनके जाते-जाते वसन्तक इधर आ निकला। वह विस्मित होकर कहने लगा कि श्रीखण्डदास धर्मात्मा। तुम धन्य हो। तुम्हारे द्वारा इस नवमालिका की अभिलाषा पूर्ण होते ही यह ऐसी हो गई कि इसकी निरन्तर पुष्पों के गुच्छों से लदी हुई शाखाएँ रानी वासवदत्ता की माधवी लता पर हँसने-सी लगी हैं।

उधर राजा नवमालिका का वृत्तान्त जानने के लिए उत्सुक हो रहे थे। वसन्तक से मन्त्रौषधि का प्रभाव सुनकर वे साथ चल पड़े। वहाँ उद्यान में पहुँचे तो एक वृक्ष की शाखा

पर बैठी मेधाविनी सारिका बोल रही थी। राजा और वसन्तक ने इसका शब्द सुना।

सारिका ने सुसङ्गता और सागरिका के वार्त्तालाप के जो शब्द सुन थे उन्हीं को वह दुहरा रही थी। वसन्तक ने ध्यान से सुनकर कहा कि मित्र! यह तो कहती है—सुसङ्गता! मेरा चित्र क्यों अङ्कित कर दिया? सखी! अकारण क्यों कोप करती हो? जैसे तुमने कामदेव को चित्रित किया है, वैसे मैंने भी रति अङ्कित कर दी है।

राजा—मित्र! मैं समझता हूँ कि किसी ने अपने हृदयदेव को अनुराग से कामदेव के बहाने अङ्कित कर सखी के सामने छिपा दिया। उस सखी ने भी जानकर चतुरता से उसी को वहाँ पर, रति के बहाने, चित्रित कर दिया।

यह तर्क वसन्तक को भी ठीक जँचा।

फिर दोनों सारिका का शब्द सुनने लगे। सारिका का शब्द सुनकर वसन्तक ने कहा कि मित्र! यह कहती है—सखी! लज्जा मत करो। ऐसे कन्या-रत्न की अवश्य ऐसे वर में अभिलाषा होनी चाहिए। सो मित्र! उस चित्रित कन्या को अवश्य देखना चाहिए। उसने आपको ही काम-देव के बहाने छिपाया है।

अब वसन्तक, ताली बजाकर, जोर से हँस पड़ा। सारिका उड़कर कदली-गृह में चली गई। ये दोनों भी वहाँ पहुँचे। वहाँ वसन्तक की दृष्टि उस चित्रपट पर पड़ गई। उसमें

राजा का चित्र देखकर वसन्तक को विस्मय हुआ। वह राजा से कहने लगा—यह तुम्हारा ही चित्र है। कामदेव के बहाने और कौन भला छिपाया गया है? यह देखो, साथ में कन्या का भी चित्र है।

चित्र देखकर राजा मुग्ध हो गये। उसकी रचना की प्रशंसा करने लगे। इतने में सुसङ्गता और सागरिका वहाँ चित्रपट लेने आ गईं।

वसन्तक का शब्द सुनकर सुसङ्गता ने कहा—सखी! तुम्हारा भाग्य खुल गया। यह तुम्हारा हृदयदेव तुम्हारा ही वर्णन कर रहा है।

सागरिका लज्जा से मुख नीचा करके कहने लगी—परिहास के स्वभाव से मुझे क्यों लज्जित करती हो?

वहाँ फिर शेष वार्त्तालाप सुनकर सुसङ्गता को निश्चय हो गया कि राजा सागरिका के लिए अत्यन्त उत्सुक हो रहे हैं। वह सागरिका से चित्रपट लाने के लिए कहकर राजा के पास चली गई।

उसे देखते ही राजा ने चित्रपट छिपाकर पूछा—सुसङ्गता! तुमने यह कैसे जाना कि मैं यहाँ बैठा हूँ?

सुसङ्गता ने हँसकर कहा—महाराज! केवल आपको ही नहीं, प्रत्युत इस चित्रपट के साथ साथ सब वृत्तान्त को भी मैंने जान लिया है। सो जाकर रानी से निवेदन करती हूँ।

अब सुमङ्गता जाने लगी। वसन्तक ने राजा को उसे पारितोषिक देने की मन्त्रणा दी। राजा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—सुसङ्गता! यह तो निरी क्रीडा है। बिना कारण तुम्हें रानी को कष्ट न देना चाहिए। यह लो अपना पारितोषिक।

राजा ने उसे कर्णाभरण दे दिया। सुसङ्गता ने प्रणाम करके मुस्कराकर कहा—महाराज! आप शङ्का न करें। मैंने भी आपकी प्रसन्नता के लिए यह क्रीडा की है। सो कर्णाभरण से क्या? मेरे लिए तो यही उत्तम पारितोषिक है कि मेरी सखी सागरिका को आप जाकर मना लें जिसका चित्र मैंने बना दिया है और जो इसी कारण मुझ पर रुष्ट है।

राजा ने शीघ्र उठकर कहा—वह है कहाँ?

सुसङ्गता इन्हें अपने साथ लेकर सागरिका के पास गई। उसके कहने से राजा ने सागरिका का हाथ पकड़ लिया।

यह देखकर वसन्तक ने कहा—अरे! यह तुम्हें अपूर्व लक्ष्मी मिली।

राजा—मित्र! सत्य है। यह लक्ष्मी है। यदि इसके हाथ कल्पवृक्ष के पल्लव नहीं हैं तो स्वेद के बहाने यह अमृतरस कहाँ से टपकता है?

सुसङ्गता—सखी! तू बड़ी निष्ठुर है जो महाराज के इस प्रकार हाथ पकड़ने पर भी क्रोध नहीं त्यागती।

सागरिका ने भौंहें चढ़ाकर कहा—अरी सुसङ्गता ! तू अब भी चुप नहीं होती ?

राजा—अजी प्रसन्न हो जाओ । सखियों से इस प्रकार अधिक क्रोध करना ठीक नहीं ।

वसन्तक—यह दूसरी रानी वासवदत्ता है ।

राजा ने चकित होकर सागरिका का हाथ छोड़ दिया । सागरिका और सुसङ्गता भी भयभीत होकर चली गईं ।

राजा ने पूछा—मित्र ! रानी वासवदत्ता कहाँ है ?

वसन्तक—मैं नहीं जानता । मैंने तो अधिक क्रोध देखकर कहा था 'यह दूसरी रानी वासवदत्ता है ।'

राजा—चल मूर्ख । भाग्य से वह किसी प्रकार मिल गई थी, सो तूने मेरे हाथ से खो दी ।

इसी समय अकस्मात् रानी वासवदत्ता, सखी काञ्चन-माला के साथ, आ गईं । वे महाराज की लगाई हुई नव-मालिका के देखने को उत्सुक थीं । महाराज के वार्तालाप का शब्द सुनकर वे उनके पास ही आ पहुँचीं ।

रानी ने राजा को प्रणाम किया । राजा ने वसन्तक स चित्र छिपाने को कहा । उसने काँख में चित्र छिपाकर चादर ओढ़ ली ।

रानी—महाराज ! क्या नवमालिका फूली है ?

राजा—प्रिये ! पहले यहाँ आकर भी हमने, तुम्हारे विल के कारण, उसे नहीं देखा है । आओ, तुम्हारे साथ ही देख

रानी ने राजा की ओर देखकर कहा—आपके मुख के रङ्ग से ही मैंने जान लिया है कि नवमालिका फूल चुकी है। अब मैं न जाऊँगी।

यह सुनकर "अहह! तो हम जीते!" कहकर वसन्तक बाँहे फैलाकर नाचने लगा। नाचते समय उसकी काँख में से चित्रपट गिर पड़ा। काञ्चनमाला ने चित्र उठाकर देखा और रानी को दिखाया। चित्र को देखकर वासवदत्ता ने कहा—काञ्चनमाला! ये तो महाराज हैं और यह है सागरिका। फिर राजा से क्रोध और हास्य से कहा—महाराज! यह किसने बनाया है?

राजा ने वसन्तक की ओर देखा। उसने कहा—महारानी! और कुछ मत सोचिए। 'अपना चित्र कठिनता से अङ्कित किया जाता है।' मेरा यह वचन सुनकर मित्र ने यह चित्र बनाकर अपनी चतुरता दिखाई है।

राजा—वसन्तक का कहना सच है।

वासवदत्ता ने चित्र दिखाकर कहा—तो आपके चित्र के पास जो दूसरा चित्र बना है वह क्या श्री वसन्तक की चतुराई है?

राजा ने मुस्कराकर कहा—रानी! कुछ और शङ्का मत करो। कल्पना करके किसी ऐसी कन्या को अङ्कित कर दिया है जिसे पहले देखा ही नहीं।

वसन्तक—महारानी! यह ठीक है। मैं यज्ञोपवीत की शपथ लेता हूँ। ऐसी स्त्री हमने कभी नहीं देखी है।

काञ्चनमाला ने एकान्त में कहा—महाराज ! ...नर-
न्याय में ऐसा हो सकता है ।
रानी ने एकान्त में कहा—अरी भोली-भाली ! यह ...स-
न्तक है । तू इसकी टेढ़ी बातों को नहीं जानती ।
वासवदत्ता राजा से शिर पीड़ा का बहाना बनाकर जाने
लगीं तो राजा ने उनका अञ्चल पकड़कर कहा—यदि प्रसन्न
हो जाओ कहता हूँ तो क्रोध के न होने पर यह कहना युक्त
नहीं और यदि यह कहूँ कि फिर ऐसा न करूँगा तो अपराध-
स्वीकृति होती है । यदि कहूँ कि मेरा दोष नहीं तो असत्य
मानोगी । मैं नहीं जानता कि क्या कहना चाहिए ।
वासवदत्ता ने तब विनय से अञ्चल छुड़ाकर कहा—
महाराज ! कुछ और मत समझिए । मुझे सचमुच शिर-
पीड़ा व्यथित कर रही है ।
बस, रानी चली गई । उन्हें प्रसन्न करने के लिए
राजा भी राजभवन में गये ।

(३)

वसन्तक ने सुसङ्गता दासी से कहा—सुसङ्गता ! साग-
रिका के अतिरिक्त मेरे मित्र की अस्वस्थता का कारण और
कुछ नहीं है । सो उसका उपाय सोचो ।
सुसङ्गता—आज चित्रपट के वृत्तान्त की शङ्का से साग-
रिका का मेरे हाथ में सौंपकर मुझे जो एकान्त में पारितोषिक

दिया है उसी से सागरिका को रानी के वेष में लेकर मैं, स्वयं काञ्चनमाला का वेष धारण कर, सायङ्काल यहाँ आऊँगी। तुम भी यहीं, चित्रशाला के द्वार पर, प्रतीक्षा करना। फिर माधवी लता-मण्डप में उसके साथ राजा का समागम होगा।

काञ्चनमाला ने इनकी यह मन्त्रणा सुन ली। उसने जाकर रानी से कह दिया।

इधर प्रसन्न होता हुआ वसन्तक राजा के पास पहुँचा। उससे सब वृत्तान्त सुनकर राजा प्रसन्न हुए। अपने हाथ से बाजूबन्द उतारकर उन्होंने पारितोषिक में दे दिया। वे, सायङ्काल के समय, माधवी लता-मण्डप को चल पड़े। अँधेरा छा जाने से मार्ग में, घने वृक्षों के कारण, और भी अन्धकार हो गया था। वहाँ पहुँचकर राजा मरकतमणि की शिला पर बैठ गये। महारानी के वेष में सागरिका को लेने के लिए वसन्तक गया। राजा व्यग्रता से उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।

इसी समय वहाँ रानी वासवदत्ता और काञ्चनमाला आ गईं। ये जब चित्रशाला के द्वार पर पहुँच गईं तब काञ्चनमाला ने सङ्केत से वसन्तक को बुलाया।

प्रसन्नता से पास आकर वसन्तक मुस्कराहट से कहने लगा—सुसङ्गता! तुमने काञ्चनमाला का वेष बहुत ठीक बनाया। सागरिका कहाँ है?

काञ्चनमाला ने रानी की ओर अँगुली उठाई। देखकर वसन्तक ने विस्मय से कहा—ये तो प्रत्यक्ष रानी वासवदत्ता हैं।

वासवदत्ता ने समझा कि क्या मैं पहचान ली गई।

वसन्तक—सागरिका! शीघ्र इधर आओ। पूर्व दिशा में चन्द्रमा का उदय हो रहा है।

वासवदत्ता और काञ्चनमाला उसके साथ राजा की ओर गईं। पास जाकर वसन्तक ने कहा—मित्र! मैं सागरिका को ले आया।

राजा ने प्रसन्न होकर, सहसा उठकर, कहा—मित्र! कहाँ है? कहाँ है?

वसन्तक—यह है।

राजा ने पास जाकर कहा—चन्द्रमुखी प्रिया सागरिका! तुम निःशङ्क होकर सप्रेम वार्त्तालाप करके हमें शान्त करो।

वासवदत्ता केवल आँसू बहाती हुई खड़ी रहीं।

वसन्तक—सागरिका! शान्त होकर महाराज से बातचीत कर लो। नित्य रोष करनेवाली रानी वासवदत्ता के तीक्ष्ण वचनों से अब भी इनके कान पीडित हैं, तुम्हारे मधुर वचनों का प्रस्ताव अब इन्हें सुखी करे।

यह सुनकर वासवदत्ता ने दासी से एकान्त में कहा—काञ्चनमाला! मैं ऐसी कटुभाषिणी हूँ और वसन्तक प्रियवादी है।

वसन्तक—मित्र! देखो, कुपित स्त्री के कपोलों के समान भगवान् चन्द्रमा पूर्व दिशा को प्रकाशित करते हुए उदय हुए हैं।

राजा—प्रिया सागरिका! देखो, तुम्हारे मुख से सर्वस्व कान्ति हरण करके, पर्वत-शिखर पर चढकर, प्रतिकार करने के लिए ऊँचे हाथ (किरणें) किये हुए चन्द्रमा स्थित हैं।

वासवदत्ता ने रोष से घूँघट हटाकर कहा—क्या मैं सागरिका ही हूँ? तुम तो सागरिका के लिए व्याकुल हुए हृदय मे सब कुछ सागरिका-मय देख रहे हो'।

राजा ने व्याकुलता के साथ कहा—वसन्तक! रानी वासवदत्ता यहाँ कैसे आ गई? मित्र! यह क्या?

वसन्तक ने दुःख से कहा—मित्र! और क्या? यह तो हमारे लिए सङ्कट हो गया।

अब राजा बैठ गये। उन्होंने हाथ जोडकर कहा—प्रिये! वासवदत्ता! प्रसन्न हो जाओ।

वासवदत्ता ने राजा की ओर हाथ बढ़ाकर, आँसू रोककर, कहा—महाराज! ऐसा मत कहो। ये शब्द किसी और के लिए हैं।

वसन्तक—महारानी! आप तो उदार हैं। मेरे मित्र के इस अपराध को क्षमा कर दीजिए।

वासवदत्ता—वसन्तक! पहले ही समागम मे विघ्न डालकर अपराध तो मैंने किया है।

"प्रिये! मेरा प्रत्यक्ष दोष देख लिया गया, अब मैं क्या कहूँ? सो यही प्रार्थना है. .।" इतना कहते हुए राजा, रानी

के चरणों पर, गिर पड़े। वे कहने लगे—मैं लज्जित हूँ। तुम्हारे चरण छूता हूँ, मुझ पर कृपा करो।

वासवदत्ता ने राजा को हाथ से हटाकर कहा—स्वामी! उठिए। मैं अवश्य निर्लज्ज हूँ जो आपके इस हृदय को जानकर भी क्रोध करती हूँ। आप सुख से ठहरें। मैं जाती हूँ।

वासवदत्ता जाने लगी तो काञ्चनमाला ने कहा—रानी। प्रसन्न हूजिए। चरणों पर गिरे हुए महाराज को छोड़कर जाने से आपको अवश्य पश्चात्ताप होगा।

वासवदत्ता—हट मूर्ख। यहाँ प्रसन्नता अथवा पश्चात्ताप का कारण कहाँ है? आओ, हम चलती हैं।

राजा ने फिर भी क्षमा माँगी परन्तु रानी चली गई।

चिन्तित राजा कहने लगे—प्रतिदिन अधिक आदर करते रहने से हमारी प्रीति बढ़ी हुई है। ऐसा अकार्य मैंने पहले नहीं किया था। उसी को देखकर वह असहनशील प्रिया अवश्य आज जीवन त्याग देगी, क्योंकि प्रकृष्ट प्रेम का दोष असह्य होता है।

वसन्तक—रुष्ट रानी न जाने क्या करेंगी। क्या जाने, सागरिका जीवित है कि नहीं।

इतने में वासवदत्ता का वेप धारण किये सागरिका आ रही थी। राजा भी रानी वासवदत्ता को प्रसन्न करने के लिए उधर चले।

सागरिका विचार में लीन थी। वह कह रही थी—अच्छा यही है कि फाँसी लगाकर प्राण दे दूँ, सङ्केत के वृत्तान्त को

राजा—प्रिया सागरिका। देखो, तुम्हारे मुख से सर्वस्व कान्ति हरण करके, पर्वत-शिखर पर चढकर, प्रतिकार करने के लिए ऊँचे हाथ (किरणें) किये हुए चन्द्रमा स्थित हैं।

वासवदत्ता ने रोष में घूँघट हटाकर कहा—क्या मैं सागरिका ही हूँ? तुम तो सागरिका के लिए व्याकुल हुए हृदय से सब कुछ सागरिका-मय देख रहे हो।

राजा ने व्याकुलता के साथ कहा—वसन्तक। रानी वासवदत्ता यहाँ कैसे आ गई? मित्र। यह क्या?

वसन्तक ने दुःख से कहा—मित्र। और क्या? यह तो हमारे लिए सङ्कट हो गया।

अब राजा बैठ गये। उन्होंने हाथ जोडकर कहा—प्रिये। वासवदत्ता! प्रसन्न हो जाओ।

वासवदत्ता ने राजा की ओर हाथ बढाकर, आँसू रोक कर, कहा—महाराज। ऐसा मत कहो। ये शब्द किसी और के लिए हैं।

वसन्तक—महारानी। आप तो उदार हैं। मेरे मित्र के इस अपराध को क्षमा कर दीजिए।

वासवदत्ता—वसन्तक। पहले ही समागम में विघ्न डालकर अपराध तो मैंने किया है।

"प्रिये। मेरा प्रत्यक्ष दोष देख लिया गया, अब मैं क्या कहूँ? सो यही प्रार्थना है . ।" इतना कहते हुए राजा, रानी

चरणों पर, गिर पड़े। वे कहने लगे—मैं लज्जित हूँ।
हारे चरण छूता हूँ, मुझ पर कृपा करो।

वासवदत्ता ने राजा को हाथ से हटाकर कहा—स्वामी।
उठिए। मैं अवश्य निर्लज्ज हूँ जो आपके इस हृदय को जान-
कर भी क्रोध करती हूँ। आप सुख से ठहरें। मैं जाती हूँ।

वासवदत्ता जाने लगी तो काञ्चनमाला ने कहा—रानी।
प्रसन्न हूजिए। चरणों पर गिरे हुए महाराज को छोड़कर
जाने से आपको अवश्य पश्चात्ताप होगा।

वासवदत्ता—हट मूर्ख। यहाँ प्रसन्नता अथवा पश्चात्ताप
का कारण कहाँ है? आओ, हम चलती हैं।

राजा ने फिर भी क्षमा माँगी परन्तु रानी चली गई।

चिन्तित राजा कहने लगे—प्रतिदिन अधिक आदर करते
रहने से हमारी प्रीति बढ़ी हुई है। ऐसा अकार्य मैंने पहले
नहीं किया था। उसी को देखकर वह असहनशील प्रिया
अवश्य आज जीवन त्याग देगी, क्योंकि प्रकृष्ट प्रेम का दोष
असह्य होता है।

वसन्तक—रुष्ट रानी न जाने क्या करेंगी। क्या
जाने, सागरिका जीवित है कि नहीं।

इतने में वासवदत्ता का वेष धारण किये सागरिका आ रही
थी। राजा भी रानी वासवदत्ता को प्रसन्न करने के लिए उधर चले।

सागरिका विचार में लीन थी। वह कह रही थी—अच्छा
यही है कि फाँसी लगाकर प्राण दे दूँ, सङ्केत के वृत्तान्त को

जाननेवाली रानी से तिरस्कृत होना ठीक नहीं। सो मैं अशोक वृक्ष के नीचे जाकर जैसी इच्छा है, करूँगी।

मार्ग में उसके चरणों का शब्द सुनकर वसन्तक बोला—"मित्र! चरणों का शब्द सुनाई देता है। कहीं पश्चाताप से पुन रानी न आ गई हों।" यही समझकर राजा भी देखने को आगे बढ़े।

पास से देखकर वसन्तक कहने लगा—यह कौन है? क्या रानी वासवदत्ता हैं? फिर राजा से कहा—मित्र! रक्षा करो। रानी वासवदत्ता फाँसी लगाकर मर रही है।

राजा और वसन्तक दोनों शीघ्र वहाँ गये। राजा ने कण्ठ से फाँसी हटाकर कहा—प्रिये! तुम्हारे कण्ठ मे फाँसी लगने से मेरे भी प्राण कण्ठ में आ गये हैं। सो यह साहस छोडो।

राजा को देखने से विस्मित होकर सागरिका कहने लगी—महाराज! मुझे छोड दीजिए। मैं पराधीन हूँ। मरने को फिर ऐसा अवसर न मिलेगा।

अब सागरिका ने कण्ठ मे फिर फाँसी लगा ली। 'मेरी प्रिया सागरिका' कहकर राजा ने फाँसी हटा दी और उसकी बाँहें अपने गले में डाल लीं।

इतने मे वासवदत्ता और काञ्चनमाला फिर आ गई। वासवदत्ता सोच रही थी कि चरणों मे गिरे हुए महाराज का अनादर करके मैंने निठुर काम किया है। इस विचार से वे अब स्वय महाराज को प्रसन्न करने आई।

वसन्तक इस समय कह रहा था—सागरिका। महा...
... मे बेधड़क बातचीत करो।

वासवदत्ता ने ये वचन सुन लिये। वे काञ्चनमाला से क्रोध करने लगीं—यहाँ सागरिका कैसे आई? पहले सुन लूँ, पीछे वहाँ जाऊँगी।

उधर सागरिका ने राजा को उत्तर दिया—महाराज! इस असत्य दाक्षिण्यता के कारण आप, जीवन में भी प्रियतम, रानी के समीप अपने को क्यों अपराधी बनाते हैं?

राजा—तुम असत्य कहती हो। रानी के प्रति हमारी सेवा उसकी स्वाभाविक कुलीनता के कारण है। वास्तव में प्रेम-बन्धन में बढ़ी हुई अधिक रस-युक्त प्रीति तो तुम्हीं में है।

यह सुनकर वासवदत्ता राजा के पास जाकर कहने लगीं—स्वामी! यह ठीक है, यह तुम्हारे अनुकूल है।

रानी को देखकर राजा ने व्याकुलता से कहा—रानी! मुझे बिना कारण उलहना देना ठीक नहीं। वेष की सदृशता से ठगा हुआ मैं सचमुच ही तुम्हें ही समझकर यहाँ आ गया। क्षमा करो।

अब राजा रानी के चरणों पर गिर पड़े। वासवदत्ता ने क्रोध से कहा—स्वामी, उठिए। अब भी स्वाभाविक कुलीन की सेवा से आप दुःखित क्यों होते हैं?

राजा ने समझ लिया कि इसने यह भी सुन लिया है। सो यह सोचकर कि मैं रानी को प्रसन्न करने में सर्वथा विफल हो गया हूँ, राजा ने सिर झुका लिया।

वसन्तक—महारानी! आपके वेष की सदृशता से ठगा हुआ मैं महाराज को यहाँ इसलिए लाया था कि आप फाँसी लगाकर मर रही हैं। मेरी बातों पर विश्वास न हो तो इस लता-पाश को देख लीजिए।

वासवदत्ता ने सक्रोध कहा—काञ्चनमाला! इसी लता-पाश से इस ब्राह्मण को बाँध ले और इस धृष्ट कन्या को आगे कर ले।

काञ्चनमाला ने, लता-पाश से वसन्तक को बाँधते हुए, कहा—हताश! अब अपनी दुर्नीति का फल भोग।

काञ्चनमाला ने सागरिका को भी आगे कर लिया।

सागरिका ने मन मे कहा कि हाय! मैं पापिन मरने की इच्छा को भी सफल न कर सकी।

राजा यह सब दुःख के साथ देखते रहे। रानी जब इन सब को साथ लेकर चली गई तब वे चिन्ता करते हुए रानी को प्रसन्न करने चले गये।

(४)

प्रिय सखी सागरिका के वियोग मे सुसङ्गता अधिक अधीर हो गई। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। उसे

निष्करुण दैव पर खेद था जिसने ऐसी असामान्य रूप-लावण्यवती स्त्री बनाकर अकारण उसे ऐसी अवस्था को पहुँचा दिया। सागरिका ने जीवन की आशा छोडकर अपनी रत्न-माला किसी ब्राह्मण को देने के लिए सुसङ्गता को सौंप दी थी। वसन्तक को आते देखकर सुसङ्गता ने उसी को रत्न-माला देने का विचार किया।

वसन्तक को इस समय, प्रिय मित्र के अनुरोध से, प्रसन्न की गई रानी वासवदत्ता ने मुक्त कर दिया था। सुसङ्गता ने रोते-रोते पास आकर उससे ठहरने को कहा। उसे देखकर वसन्तक ने कहा—सुसङ्गता! तू रोती क्यों है? सागरिका का तो कुछ अहित नहीं हुआ?

सुसङ्गता—वसन्तक! उस बेचारी को तो रानी वासव-दत्ता ने, उज्जयिनी भेजने का प्रवाद फैलाकर, आधी रात के समय न जाने कहाँ भेज दिया। सागरिका ने, जीवन की आशा छोडकर, यह रत्नमाला मुझे दे दी है। इसे आप स्वीकार कर लें।

यह सुनकर वसन्तक भी रो पडा। कहने लगा—सुस-ङ्गता! ऐसा समाचार सुनकर मेरा हाथ लेने को नहीं बढता।

सुसङ्गता ने हाथ जोडकर उससे रत्नमाला ग्रहण कर लेने की प्रार्थना की।

वसन्तक ने कुछ विचार कर कहा—अच्छा, लाओ। इससे ही मित्र का, सागरिका के विरह का, दुःख करूँगा।

अब वसन्तक ने रत्नमाला ग्रहण कर ली। उसने माला को देखकर आश्चर्य के साथ पूछा—सुसङ्गता! ऐसा अलङ्कार मिला कैसे?

सुसङ्गता—मैंने भी कौतूहलवश यह पूछा था परन्तु सागरिका ने ऊपर को देखकर, दीर्घ निःश्वास लेकर, कहा कि सुसङ्गता! तुम्हें इस बात से क्या प्रयोजन? यह कहकर वह रोने लगी।

यह सुनकर वसन्तक ने अनुमान किया कि साधारण मनुष्य को ऐसी दुर्लभ रत्नमाला कैसे मिल सकती है। अवश्य ही यह उच्च कुल की कन्या होगी।

यह वार्त्तालाप हो रहा था कि सुसङ्गता की दृष्टि, रानी के भवन से स्फटिक-शिला के मण्डप को जाते हुए, महाराज पर पड़ गई। वह वसन्तक को उधर भेजकर स्वयं रानी वासवदत्ता की ओर चली गई।

मित्र वसन्तक को देखकर महाराज प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे गले से लगा लिया।

वसन्तक—मित्र! महारानी ने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया।

राजा—तुम्हारे वेष से ही रानी का अनुग्रह स्पष्ट है। बतलाओ, सागरिका का क्या हुआ।

वसन्तक—सुना है कि वह उज्जयिनी भेज दी गई। यह सूचना मुझे सुसङ्गता से मिली है। उसके द्वारा

मेरे लिए, किसी कारण, नागरिका ने यह रत्नमाला भेजी है।

राजा—और क्या? मुझे धीरज देने के लिए। लाओ मित्र।

रत्नमाला को राजा ने हृदय पर रख लिया। इससे उन्हें कुछ धीरज हुआ। फिर उन्होंने माला मित्र के पहनने को दे दी जिसमें उसे देख-देखकर वे धैर्य रक्खा करें। वसन्तक ने माला पहन ली।

इतने में रुमण्वान् का भानजा विजयवर्मा, कुछ शुभ समाचार सुनाने के लिए, आ गया। विजयवर्मा ने प्रणाम करके कहा—महाराज। सौभाग्य से रुमण्वान् विजयी हुए। महाराज के प्रभाव से कोशल देश जीत लिया गया।

राजा—विजयवर्मा। बतलाओ, कैसे।

विजयवर्मा—महाराज। हमने आपकी आज्ञा पाकर यहाँ से कुछ ही दिनों में अनेक हाथी, घोड़े और पैदलों से दुर्निवार बड़ी सेना ले जाकर विन्ध्य दुर्ग में स्थित कोशलेश्वर के द्वार को रोककर सेना-समावेश करना आरम्भ कर दिया।

राजा—हाँ, तब?

विजयवर्मा—तब कोशलराज ने, दर्प से परिभव को असहन करके, हाथियों की सेना प्रस्तुत की। अस्त्र-शस्त्रों से सिर कट-कटकर गिरने लगे। रक्त की नदियाँ बह निकलीं। अन्त में रुमण्वान् के सैकड़ों तीरों से कोशलेश की मृत्यु हो गई।

राजा ने विजय की सूचना से प्रसन्न होकर विजयवर्मा को, पारितोषिक के लिए, यौगन्धरायण के पास भेज दिया।

इसी समय काञ्चनमाला महाराज के पास आई। उसने निवेदन किया—महाराज! महारानी कहती हैं कि उज्जयिनी से सर्वसिद्धि नाम का ऐन्द्रजालिक आया है। महाराज उसके चमत्कार देख लें।

राजा को भी ऐन्द्रजालिक का चमत्कार देखने का कौतूहल हुआ। उन्होंने उसे शीघ्र बुला लिया और रानी वासवदत्ता को भी बुला भेजा। उसके आ जाने पर राजा ने सर्वसिद्धि से कहा—भद्र! इन्द्रजाल आरम्भ करो।

कुछ समय तक अनेक प्रकार के नाट्य करके ऐन्द्रजालिक ने कहा—आकाश में हरि, हर, ब्रह्मा और इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओं तथा सिद्ध, चारण और देवाङ्गनाओं के समूह को नृत्य करते दिखाता हूँ।

यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ।

वसन्तक ने एकान्त मे कहा—ओह, ऐन्द्रजालिक! इन देवताओं और अप्सराओं के दिखाने से क्या? यदि तू महाराज को प्रसन्न करना चाहता है तो सागरिका को दिखा।

इस समय वसुन्धरा ने आकर सूचना दी—यौगन्धरायण ने निवेदन किया है कि विक्रमबाहु का प्रधान अमात्य वसुभूति, कञ्चुकी बाभ्रव्य के साथ, आया है। आप सुअवसर पर इससे मिल लें। मैं भी, शेष कार्य को समाप्त करके, आता ही हूँ।

यह सुनकर वासवदत्ता ने राजा से कहा—ऐन्द्रजालिक को रहने दीजिए। मामा के यहाँ से प्रधान अमात्य वसुभूति आया है। सो आप पहले उससे मिल लीजिए।

राजा ने ऐन्द्रजालिक से तनिक विश्राम करने को कहा। राजा से एक और खेल देख लेने की प्रार्थना करके ऐन्द्र-जालिक चला गया।

अब वसुन्धरा के साथ वसन्तक वसुभूति और बाभ्रव्य को लिवाने चला गया। वसन्तक ने कहा—आइए अमात्य, आइए।

वसुभूति की दृष्टि वसन्तक की रत्नमाला पर पड़ गई। उसने सोचा कि यह रत्नमाला तो राजा ने राजकुमारी को चलते समय दी थी।

राजा के पास आकर, यथोचित प्रणाम आदि के अनन्तर, सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। राजा ने पूछा—अमात्य वसुभूति। महाराज सिंहलेश्वर तो कुशल से हैं ?

वसुभूति—महाराज। निवेदन करने में असमर्थ हूँ, तब भी मैं मन्द-भाग्य कहता हूँ कि सिंहलेश्वर ने, रानी वासव-दत्ता का अग्नि में जल जाना सुनकर, आपके लिए पहले से माँगी हुई अपनी रत्नावली नाम की कन्या आपको दे दी।

राजा—रानी। तुम्हारे मामा का अमात्य यह क्या असत्य कहता है ?

रानी—क्या जानें, असत्य कौन कहता है।

वसन्तक—फिर क्या हुआ ?

वसुभूति—तब वह यहाँ पहुँचाई जा रही थी कि, जहाज टूट जाने से, समुद्र मे डूब गई।

इतना कहकर रोते हुए वसुभूति ने सिर झुका लिया।

रानी वासवदत्ता की आँखो मे भी आँसू आ गये। वह कहने लगी—हाय! मैं मन्दभागिनी मर गई। हा! बहन रत्नावली! तू कहाँ है? मुझे उत्तर दे।

राजा ने रानी को आश्वासन देते हुए कहा—धीरज रक्खो। दैव की गति दुर्ज्ञेय है। जहाज टूट जाने से डूबे हुए ये लोग निकल आये, यही तुम्हारे लिए दृष्टान्त है।

वासवदत्ता—ऐसा हो सकता है, परन्तु मेरे भाग्य ऐसे कहाँ?

इतने मे कोलाहल हुआ कि अन्तःपुर में अकस्मात् आग लग गई है। सब व्याकुल होकर उधर देखने लगे।

वासवदत्ता—महाराज। मैंने निर्दयता से सागरिका को बेडियाँ डलवा दी है। वही जल रही है। उसकी रक्षा कीजिए।

"सागरिका जल रही है" इतना कहते ही राजा वहाँ जाकर अग्नि मे कूद पडे। वे किसी के रोके न रुके। अब वासवदत्ता भी अग्नि में, स्वामी के पीछे, कूद पडीं। इन्हें अग्नि में प्रवेश करते देखकर वसन्तक भी कूद पडा। वसुभूति और बाभ्रव्य भी अग्नि में प्रविष्ट हुए बिना न रह सके।

राजा को अग्नि में सागरिका दिखाई दी। उसकी रक्षा के लिए राजा उधर बढे। वे सागरिका को गोद मे उठाकर

अग्नि से बाहर लाने लगे। उन्होंने क्षण भर को आँखें बन्द की थीं कि सन्ताप दूर हो गया। आँखें खोलकर देखा तो आश्चर्य के साथ कहने लगे—वह अग्नि कहाँ गई? अन्तःपुर वैसा ही है। वासवदत्ता, वसन्तक, वसुभूति और बाभ्रव्य आदि सब खड़े हैं। स्वप्न मे बुद्धि का भ्रम हो गया था अथवा यह इन्द्रजाल था?

वसन्तक—मित्र! सन्देह मत करो। यह इन्द्रजाल ही है। उस दासी-पुत्र ऐन्द्रजालिक ने कहा था कि मेरा एक खेल और देखना, सो यह वही खेल है।

सागरिका को देखते ही वसुभूति ने पहचान लिया। उसने कहा—महाराज! यह कन्या कहाँ से आई?

राजा—महारानी ही जानती हैं।

वासवदत्ता—मन्त्री! अमात्य यौगन्धरायण ने इसे यह बतलाकर मुझे सौंपा था कि यह समुद्र से प्राप्त हुई है। अत इसका नाम सागरिका पड गया।

राजा ने सोचा कि यौगन्धरायण ने मुझसे कहे बिना कैसे सौंप दिया।

वसुभूति ने बाभ्रव्य से ओट में कहा—वसन्तक के गले की रत्नमाला से और इस कन्या के समुद्र में मिलने से यह स्पष्ट है कि यह सिंहलेश्वर की पुत्री रत्नावली है। फिर प्रकट रूप मे उसने कहा—आयुष्मती हमारी राजपुत्री रत्नावली! तुम इस अवस्था को पहुँची!

सागरिका ने भी वसुभूति को देखकर, आँखों में आँसू भरकर, कहा—क्या ये अमात्य वसुभूति हैं ?

दोनों एक दूसरे को पहचानकर मूर्च्छित हो गये। वासवदत्ता ने व्याकुल होकर कहा—बाभ्रव्य ! क्या यह मेरी बहन रत्नावली है ?

बाभ्रव्य—हाँ, महारानी ! ये वही हैं।

इस समय रत्नावली और वसुभूति सचेत हो गये। वासवदत्ता ने रत्नावली को गले से लगा लिया और राजा से ओट में कहा—महाराज ! मैं अपनी निर्दयता पर अधिक लज्जित हूँ। इसके बन्धन खोल दीजिए।

रानी के कहने से राजा ने सागरिका की बेड़ियाँ खोल दीं।

इतने में यौगन्धरायण भी वहाँ आ पहुँचा। उसने निवेदन किया—महाराज ! मैंने जो कार्य, बिना आपको जताये, किया था उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए।

राजा—बिना जताये क्यों किया ?

यौगन्धरायण—महाराज ! सिंहलेश्वर की इस कन्या के विषय में एक सिद्ध ने कहा था कि जो इसका पाणिग्रहण करेगा, वह सार्वभौम राजा होगा। तब, उसी विश्वास से, मैंने यह कन्या आपके लिए सिंहलेश्वर से बार-बार माँगी। परन्तु उन्होंने, रानी वासवदत्ता के चित्त को खेद न पहुँचाने के लिए, जब न दी तब मैंने प्रसिद्ध कर दिया कि लावाणक

के अग्नि-काण्ड मे रानी जल गई हैं, और सिंहलेश्वर के पास बाभ्रव्य को भी भेज दिया।

राजा—योगन्धरायण! तुमने रानी के हाथों इसे क्या समझकर सौंपा था?

वसन्तक—मित्र! इसका अभिप्राय मैंने समझ लिया। बिना कहे भी जान पड़ता है कि यह अन्त पुर मे रहेगी तो वहाँ आकर महाराज इसे सहज में देख लेंगे।

यौगन्धरायण—हाँ, यही बात है।

राजा—तो ऐन्द्रजालिक के आग लगाने का समाचार भी क्या तुम्हारा ही प्रयोग था?

यौगन्धरायण—राजन्! नहीं तो अन्त पुर मे बँधी हुई इस कन्या के दर्शन आपको कैसे होते, और बिना देखे वसुभूति से इस राजकुमारी की कैसे पहचान होती?

यौगन्धरायण ने अब हँसकर रानी से कहा—और अब पहचानी हुई बहन का रानी जो करना चाहें, करें।

रानी ने हँसकर कहा—मन्त्री! यह क्यो नहीं कहते कि यह रत्नावली इन्हें दे दो।

वसन्तक—महारानी! आपने मन्त्री का अभिप्राय ठीक समझा।

वासवदत्ता ने रत्नावली को अपने आभूषण पहनाकर राजा को सौंप दिया। राजा ने भी उसे सहर्ष ग्रहण कर लिया।

---

(१२) मुद्रा-राक्षस

(१)

महापद्मनन्द और उसके पुत्रों के वध के अनन्तर चन्द्रगुप्त मौर्य को पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठा देने पर भी चाणक्य का क्रोध शान्त नहीं हुआ। वह जानता था कि अमात्य राक्षस को मिलाये विना नन्द वंश का समूल नाश न होगा अथवा चन्द्रगुप्त के राज्य की स्थिरता न होगी। नन्द वंश के प्रति अमात्य राक्षस की दृढ भक्ति पर चाणक्य मुग्ध था। उसे ज्ञात था कि जब तक नन्द-वंश का कोई भी उत्तराधिकारी जीवित रहेगा तब तक राक्षस चन्द्रगुप्त के मन्त्री का पद ग्रहण नहीं करेगा। इसी विचार से नन्द वंश का राजा सर्वार्थसिद्धि, तपोवन में जाने पर भी, मार डाला गया। परन्तु राक्षस ने अब मलयकेतु की सहायता लेकर चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने का निश्चय किया। चाणक्य को इसका कुछ भय न था। वह तो अपनी कुटिल भेद-नीति-द्वारा राक्षस को, परास्त करके, चन्द्रगुप्त का प्रधान मन्त्री बनाना चाहता था।

इसी लिए चाणक्य चिन्ता कर रहा था। वह सोच रहा था कि हमने लोगों में यह अपवाद फैला दिया है कि राक्षस ने हमारे अत्यन्त उपकारी मित्र पर्वतक को विषकन्या-द्वारा

इस कारण मरवा डाला है कि वह चन्द्रगुप्त या पर्वतक दोनों में से एक का नाश करके चाणक्य का अपकार करना चाहता था। इसी पर लोगों का विश्वास कराने के लिए भागुरायण ने एकान्त में भय उत्पन्न कराकर कि तेरे पिता को चाणक्य ने मरवा डाला है, पर्वतक के पुत्र मलयकेतु को भगा दिया है। यदि राक्षस की मन्त्रणा और सहायता पाकर वह आक्रमण करेगा भी तो कौशल से दबा दिया जायगा। परन्तु मैं इसका निग्रह करके पर्वतक के वध-द्वारा उत्पन्न राक्षस की अपकीर्ति को मिटाना नहीं चाहता। मैंने स्वपक्ष तथा परपक्ष में अनुरक्त वा विरक्त पुरुषों का वृत्त जानने के लिए अनेक प्रकार के देश, वेष भाषा और आचार आदि के जाननेवाले नानावेषधारी दूतों को नियुक्त कर दिया है। अमात्य राक्षस के जो मित्र कुसुमपुर में रहते हैं उनके कार्य और चेष्टायें निपुणता से ढूँढ ली जाती है। चन्द्रगुप्त के साथ समृद्ध होनेवाले भद्रभट आदि प्रधान पुरुषों को—स्त्री, मद्य और मृगया आदि में आसक्त बताकर—असन्तोषी प्रसिद्ध करके (स्वकार्य के लिए) मैंने निकाल दिया है। शत्रु-द्वारा नियुक्त विष देनेवालों के प्रतिविधान के लिए अप्रमादी, भक्ति मे परीक्षित, विश्वासपात्र व्यक्तियों को राजा के निकट नियुक्त कर दिया है। और, मेरा सहपाठी इन्दु शर्मा नामक ब्राह्मण ज्योतिषशास्त्र में अधिक निपुण है। उसे मैं नन्द-वंश के वध की प्रतिज्ञा के अनन्तर ही, जैन वेष में, कुसुमपुर लाया था और

सब नन्द-मन्त्रियों के साथ मैंने उसकी मित्रता करा दी थी। विशेषकर राक्षस का उस पर विश्वास उत्पन्न हो गया है। इससे अब महान् कार्य की सिद्धि होगी। इस प्रकार मेरी ओर से कुछ न्यूनता नहीं है।

चाणक्य इस प्रकार चिन्ता कर रहा था कि उसके गृह पर एक गुप्तचर, यम का चित्र हाथ में लिये, आया। शिष्य के साथ हुए वार्त्तालाप से उसे, अपना कोई गुप्तचर जानकर, चाणक्य ने भीतर बुलवा लिया। चाणक्य ने पहचान लिया कि यह निपुणक नाम का दूत है। उससे कहा—भद्र! अपने कार्य के वृत्तान्त का वर्णन करो। क्या प्रजा वृषल में अनुरक्त है?

गुप्तचर—और क्या? आपने प्रजा के विराग के कारणों को हटा दिया है। महाराज चन्द्रगुप्त में प्रजा का दृढ़ अनुराग है। किन्तु तब भी नगर में तीन पुरुष ऐसे हैं जो महाराज चन्द्रगुप्त के वैभव को सहन नहीं करते। वे अमात्य राक्षस के पुराने स्नेही हैं।

चाणक्य ने क्रोध में कहा—यह कहो कि अपना जीवन सहन नहीं करते। भद्र! क्या उनके नाम जानते हो?

गुप्तचर—पहला तो आपके शत्रु-पक्ष का दृढ़ पक्षपाती क्षपणक है।

यह सुनकर चाणक्य ने प्रसन्न होकर मन में कहा कि हमारे शत्रु पक्ष में दृढ़ अनुरक्त क्षपणक!

गुप्तचर ने आगे कहा—उसका नाम जीवसिद्धि है। अमात्य राक्षस द्वारा प्रयुक्त विष-कन्या को यही पर्वतेश्वर-राज के यहाँ पहुँचा आया था।

चाणक्य ने मन में कहा—जीवसिद्धि! वह तो हमारा गुप्तचर है। फिर प्रकट रूप से पूछा—दूसरा कौन है?

गुप्तचर—दूसरा अमात्य राक्षस का प्रिय मित्र कायस्थ शकटदास है।

चाणक्य ने मन में हँसकर कहा—उस पर मैंने, मित्र के व्याज से, सिद्धार्थक को नियुक्त कर दिया है। फिर प्रकट में कहा—हाँ, तीसरे का क्या नाम है?

गुप्तचर—तीसरा भी राक्षस का, अपने हृदय के समान, प्रिय पुष्पपुर-निवासी चन्दनदास सेठ है जिसके गृह में अपने परिवार को छोड़कर अमात्य राक्षस नगर से निकल गया है।

चाणक्य—यह कैसे जाना कि चन्दनदास के गृह में राक्षस अपने परिवार को छोड़ गया है?

गुप्तचर ने एक अँगूठी दी। चाणक्य ने मुद्रा को देखकर ले लिया और उसमें राक्षस का नाम पढ़ा। उसने हर्ष से मन में कहा कि तो कहना चाहिए कि अब राक्षस ही हमारी अँगुली का प्रेमी हो गया है। चाणक्य ने अब गुप्तचर से पूछा—भद्र! अँगूठी किस प्रकार मिली?

गुप्तचर—यमपट को दिखाता हुआ मैं एक दिन चन्दनदास सेठ के घर गया। वहाँ यमपट दिखाकर मैं

गाना आरम्भ कर दिया। तब एक कमरे से पाँच वर्ष का बालक कुतूहल में बाहर निकलने लगा। तब 'हा निकल गया हा निकल गया' यह कोलाहल हुआ। अब थोड़ा-सा द्वार खोलकर एक स्त्री ने उसे, निकलते ही, पकड़ लिया। उस स्त्री के हाथ में, पुरुष की अँगुली के परिमाण की बनी हुई, यह अँगूठी कुमार को रोकने की हड़बड़ी में गिर गई। देहली पर गिरकर उछली हुई यह अँगूठी उसने नहीं देखी। यह मेरे पैरों के पास आकर ठहर गई। मैंने अमात्य राक्षस का नाम अङ्कित देखकर यह आपको भेंट कर दी है।

यह समाचार सुनकर चाणक्य ने उसे विदा किया। अब वह एक पत्र लिखने लगा। सोचने लगा कि यहाँ क्या लिखूँ। इस पत्र से राक्षस को अवश्य जीतना चाहिए।

इतने में राजा की एक दासी ने आकर, जय करके, कहा—श्रीमान्। महाराज चन्द्रगुप्त प्रणाम करते हैं और निवेदन करते हैं कि आपकी आज्ञा हो तो मैं पर्वतेश्वर-राज के पारलौकिक कर्म करना और उनके पहले धारण किये हुए आभूषण ब्राह्मणों को देना चाहता हूँ।

चाणक्य ने दासी से कह दिया—शोणोत्तरा। हमारी ओर से वृषल से कहो कि ठीक है। तुम लौकिक व्यवहारों से परिचित हो सो जैसा चाहो, करो। किन्तु पर्वतेश्वर के पहले धारण किये हुए बहुमूल्य आभूषणों को गुणियों को ही देना चाहिए। सो मैं स्वयं परीक्षित गुणी ब्राह्मणों को भेजता हूँ।

दासी के चले जाने पर चाणक्य ने शिष्य को आज्ञा दी कि विश्वावसु आदि तीन भाइयों से कहो कि वृषल से आभूषण लेकर मुझसे मिलें।

चाणक्य अब फिर पत्र का विषय सोचने लगा। उसने सोचा कि आभूषणों का विषय अन्त में होगा। पहले क्या हो। कुछ सोचकर कहने लगा कि गुप्तचरों से सुना है कि उन म्लेच्छ राजाओं में से पाँच प्रधान राजा राक्षस से परम मित्रता का बर्त्ताव करते हैं। एक तो है कुलूत देश का राजा चित्रवर्मा, दूसरा मलय-राज सिंहनाद, तीसरा काश्मीर-राज पुष्कराक्ष, चौथा सिन्धु-राज सिन्धुसेन और पाँचवाँ पारसिकराज मेघाक्ष।

अब किसी विचार से चाणक्य ने स्वयं लिखना उचित न समझा। उसने शार्ङ्गरव शिष्य को बुलाकर कहा—प्रयत्न से लिखे हुए भी श्रोत्रिय के अक्षर स्पष्ट नहीं होते। सो सिद्धार्थक से कहो कि शकटदास से इन वाक्यों को, बिना किसी श्रीनामे के, पत्र में लिखवाकर मेरी प्रतीक्षा करें। उससे यह न कहे कि चाणक्य लिखवाता है।

कुछ समय के अनन्तर सिद्धार्थक पत्र लेकर आ गया। चाणक्य ने उस पर कोई मुद्रा (मुहर) लगवाकर सिद्धार्थक से कहा—भद्र! तुम्हें किसी भरोसे के कार्य में लगाने की इच्छा है। देखो, पहले वध स्थान में जा᳡कर घातकों को क्रोध से दाहनी आँख दबाकर सकेत

सङ्केत समझकर, भय के व्याज से, इधर-उधर भागे तब शकटदास को वध स्थान से लेकर राक्षस के पास पहुँच जाना। उससे मित्र की प्राण-रक्षा का पारितोषिक ग्रहण करना। कुछ काल राक्षस की ही सेवा करना। फिर शत्रुओं के निकट आने पर अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेना। चाणक्य ने उसके कान में कुछ और कह दिया।

अब शार्ङ्गरव शिष्य को बुलाकर चाणक्य ने आज्ञा दी कि कालपाशिक और दण्डपाशिक को हमारी ओर से कहो कि वृषल आज्ञा करता है—क्षपणक जीवसिद्धि ने राक्षस से प्रयुक्त होकर विष-कन्या के द्वारा पर्वतक को मारा था, इसी दोष की घोषणा कर उसे तिरस्कार-पूर्वक नगर से निकाल दो। और राक्षस-द्वारा नियुक्त किया हुआ यह जो शकटदास नित्य हमारी घात में लगा रहता है उसे भी, यही दोष प्रसिद्ध करके, शूली पर चढा दो, और उसके कुटुम्ब को कारागार में भेज दो।

चाणक्य ने अब अँगूठी और पत्र देकर सिद्धार्थक को विदा किया। शिष्य ने आकर निवेदन किया कि काल-पाशिक और दण्डपाशिक को आज्ञा दे दी। चाणक्य ने अब शिष्य से कहा कि सेठ चन्दनदास को बुला लाओ।

वह सेठ चन्दनदास को बुला लाया। सेठ मन ही मन बहुत भयभीत था। उसे शङ्का थी कि निर्दय चाणक्य सहसा बुला भेजे तो निर्दोषों को भी भय है, फिर मेरे जैसे दोषी का क्या कहना? इसी शङ्का से वह आते समय गृह में

ठहरे हुए धनसेन आदि से कह आया था कि दुष्ट चाणक्य कदाचित् मेरे गृह की तलाशी करेगा। सो सावधानी से स्वामी अमात्य-राक्षस के कुटुम्ब को कहीं सुरक्षित स्थान में ले जाओ। मेरा जो होना है वह हो।

चाणक्य ने चन्दनदास से पहले तो इधर-उधर की बातें की, अन्त में कहा—राजा के साथ प्रजा को भी अविरुद्ध वृत्ति से रहना चाहिए।

चन्दनदास—आर्य, वह कौन अभागा है जो राजा से विरोध करता है?

चाणक्य—पहले आप ही हैं।

चन्दनदास—राम राम! तिनकों का अग्नि के साथ विरोध?

चाणक्य—आपने ही राजा के शत्रु अमात्य राक्षस के कुटुम्ब को अपने गृह में छिपा रक्खा है।

चन्दनदास—आर्य! यह किसी अनभिज्ञ ने आपसे असत्य कह दिया है।

चाणक्य—सेठ! भय मत करो। पिछले राजा के पुरुष, डरे हुए पुरवासियों की इच्छा के विरुद्ध भी, उनके गृहों में अपना कुटुम्ब छोड़कर अन्य देश को चले जाते हैं। सो उसका गुप्त रखना दोष है।

चन्दनदास—सत्य है। उस समय हमारे गृह में अमात्य राक्षस का कुटुम्ब था।

चाणक्य—पहले 'अमात्य' और अब 'था' ये दोनों बातें परस्पर विरोधी है।

चन्दनदास—मेरा इतना ही वाक्छल है।

चाणक्य ने कहा—अरे सेठ! चन्द्रगुप्त के राज्य में छल का काम नहीं है। राक्षस के कुटुम्ब को समर्पण कर दो। निश्छल हो जाओ।

चन्दनदास—आर्य! मेरा निवेदन है कि मेरे गृह में अमात्य राक्षस का कुटुम्ब पहले था। अब नहीं जानता कहाँ गया।

चाणक्य ने मुस्कराकर कहा—कैसे नहीं जानते? अरे सेठ! साँप तो सिर पर है और बूटी पर्वत पर। और यह मत सोचो कि अमात्य राक्षस चन्द्रगुप्त को वैसे ही नष्ट कर देगा जैसे चाणक्य ने नन्दों को नष्ट किया था। यह राजा शत्रुओं को उग्र दण्ड देता है। तुम्हारा राक्षस के कुटुम्ब को छिपाना वह सहन नहीं करेगा। सो दूसरे का कुटुम्ब देकर अपने और स्त्री के जीवन की रक्षा करो।

चन्दनदास—आर्य! क्या मुझे धमकाते हो? गृह में होता तो भी मैं अमात्य राक्षस के कुटुम्ब को न देता। जब है ही नहीं तब क्या?

चाणक्य—चन्दनदास! यह तेरा निश्चय है?

चन्दनदास—हाँ! यह मेरा निश्चय है।

चाणक्य ने मन मे चन्दनदास की प्रशंसा की परन्तु प्रकट में कहा—दुरात्मा! दुष्ट बनिये! तो राजा के क्रोध का भोग।

चन्दनदास—मैं प्रस्तुत हूँ। आप अपने अधिकार के अनुकूल कार्य करें।

चाणक्य ने शिष्य से कहा—दुर्गपाल और विजयपाल इसका धन लेकर स्त्री-पुत्र-सहित इसे बन्दी करें और प्रतीक्षा करें, जब तक मैं वृषल से कहता हूँ। वृषल ही इसे प्राण-हरण का दण्ड देंगे।

चन्दनदास को साथ लेकर शिष्य चला गया। चाणक्य अति प्रसन्न होकर कहने लगा कि अहा! अब मैंने राक्षस को पा लिया। उसकी विपत्ति मे जैसे यह अपने प्राणों का त्याग करता है वैसे ही इसकी आपत्ति में उसको भी अपने प्राण प्रिय न होंगे।

इतने मे गृह के नीचे कोलाहल हुआ। चाणक्य ने शिष्य से कारण जानने को कहा। शिष्य ने आकर निवेदन किया कि मारे जाते हुए शकटदास को वध-भूमि से लेकर सिद्धार्थक भाग गया है।

चाणक्य ने मन में कहा—सिद्धार्थक! तुमने कार्य आरम्भ कर दिया। फिर शिष्य से कहा—क्या बलपूर्वक भाग गया? अच्छा, भागुरायण से कहो कि वह शीघ्र पकड़े।

शिष्य चला गया परन्तु फिर आकर बोला—गुरुजी! खेद है, भागुरायण भी भाग गया है।

चाणक्य ने मन में कहा कि कार्य सिद्धि के लिए जाओ। फिर प्रकट रूप में क्रोध से कहा—वत्स। हमारी ओर से भद्रभट, पुरुपदत्त, डिङ्गरात, वलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष, विजयवर्मा से कहो कि वे शीघ्र ही पीछा करके दुरात्मा भागुरायण को पकड़ें।

शिष्य चला गया और फिर आकर बोला—खेद है, पूरा यत्न ही अस्त-व्यस्त हो गया। वे लोग पहले ही प्रातःकाल भाग गये हैं।

चाणक्य ने मन में कहा कि सबके मार्ग कल्याणमय हों। परन्तु प्रकट में क्रोध से कहा—मैं भद्रभट आदि पापियों को पकड़ मँगाता हूँ। फिर आकाश की ओर देखकर मन में कहा कि दुरात्मा राक्षस! अब कहाँ जायगा? शीघ्र ही तुझे कौशल से पकड़कर वृषल के कार्य में वैसे ही बाँधता हूँ, जैसे वन में हाथी बाँधा जाता है।

(२)

एक दिन राक्षस अधिक चिन्तित बैठा था। नन्द-वंश की स्मृति में उसके नेत्र सजल हो रहे थे। उस नन्द-राज की स्वर्ग में परितुष्टि के लिए वह अब तक नीति द्वारा शत्रुनाश का यत्न कर रहा था। उसने चन्द्रगुप्त को विष आदि देने के लिए और शत्रुपक्ष के समाचार जानने के लिए शकटदास का, धन देकर, वहाँ रख छोड़ा था। प्रतिक्षण शत्रुओं का वृत्तान्त

जानने और उनमें भेद डालने के लिए जीवसिद्धि आदि मित्र थे ही।

इन्हीं बातों पर राक्षस विचार कर रहा था कि मलयकेतु का कञ्चुकी जाजलि वहाँ आ गया। उसने कहा—अमात्य! कुमार मलयकेतु निवेदन करते हैं कि "चिरकाल से आपने शरीर का शृङ्गार करना छोड़ दिया है। इसमें मैं दुखित होता हूँ। यद्यपि सहसा स्वामी के गुण विस्मृत नहीं हो सकते तथापि मेरी प्रार्थना का आदर कीजिए।" जाजलि ने कुछ आभूषण दिखाकर कहा—कुमार ने ये आभूषण अपने शरीर से उतारकर भेजे हैं। आप इन्हें धारण करें।

राक्षस ने शत्रु-नाश से पहले शृङ्गार करने में अनिच्छा प्रकट की। परन्तु जाजलि ने कुमार की पहली प्रार्थना मानने के लिए आग्रह किया। राक्षस ने कुमार की बात मान ली। जाजलि आभूषण पहनाकर चला गया। इतने में द्वार पर जीर्णविष नाम का एक सँपेरा आया। वह अपना खेल दिखाना चाहता था, परन्तु राक्षस ने उसे टालना चाहा। तब सँपेरे ने एक पद लिखकर भेजा—

सकल कुसुम-रस पान करि मधुप रसिक सिरताज।
जो मधु त्यागत ताहि लै होत सबै जग काज॥

यह पद पढ़कर राक्षस ने समझा कि यह तो कुसुमपुर के वृत्तान्त का जानकार मेरा कोई गुप्तचर है। कार्य की व्यग्रता से, और अनेक गुप्तचरों के होने से, मैं भूल गया

था। अब स्मरण आ गया। सँपेरे के वेष में विराध गुप्त होगा।

राक्षस ने अब विराधगुप्त को बुला लिया, अन्य सब लोगों को बाहर भेज दिया। राक्षस ने उससे कुसुमपुर का, चन्द्रगुप्त के नगर-प्रवेश से लेकर, सब वृत्तान्त पूछा।

विराधगुप्त—विषकन्या के द्वारा पर्वतेश्वर के मारे जाने पर उसका पुत्र मलयकेतु भय से भाग गया तो दुष्ट चाणक्य ने ऐसी युक्ति की कि पर्वतक का भाई वैरोचक उस पर विश्वास करने लगा। चन्द्रगुप्त के नगर-प्रवेश के समय चाणक्य ने नगर के सब बढइयों को बुलाकर कहा—ज्योतिषियों के आदेश से, आधी रात में, चन्द्रगुप्त का नन्द-भवन में प्रवेश होगा। सो पूर्व-द्वार से लेकर राजभवन की सजावट करो। तब बढइयों ने कहा कि "पहले ही राजा चन्द्रगुप्त का नन्द-भवन में प्रवेश जानकर बढई दारुवर्मा ने, सोने के तोरण आदि कई पदार्थों से, राजभवन का प्रथम द्वार सजा रक्खा है, सो हमें अब भीतरी सजावट करनी है।" यह जानकर चाणक्य प्रसन्न हुआ कि बिना आज्ञा के ही दारुवर्मा ने राजभवन की सजावट की है। उसने दारुवर्मा की दूरदर्शिता की प्रशंसा करके कहा—दारुवर्मा। तुम शीघ्र ही दूरदर्शिता के योग्य फल पाओगे।

राक्षस ने उद्वेग से कहा—मित्र। चाणक्य कैसे प्रसन्न हो सकता है? मैं दारुवर्मा के प्रयत्न को निष्फल अथवा अनिष्ट फल-दायक समझता हूँ।

जानने और उनमें भेद डालने के लिए जीवसिद्धि आदि मित्र थे ही।

इन्हीं बातों पर राक्षस विचार कर रहा था कि मलयकेतु का कञ्चुकी जाजलि वहाँ आ गया। उसने कहा—अमात्य! कुमार मलयकेतु निवेदन करते हैं कि "चिरकाल से आपने शरीर का शृङ्गार करना छोड़ दिया है। इससे मैं दुखित होता हूँ। यद्यपि सहसा स्वामी के गुण विस्मृत नहीं हो सकते तथापि मेरी प्रार्थना का आदर कीजिए।" जाजलि ने कुछ आभूषण दिखाकर कहा—कुमार ने ये आभूषण अपने शरीर से उतारकर भेजे हैं। आप इन्हें धारण करें।

राक्षस ने शत्रु-नाश से पहले शृङ्गार करने में अनिच्छा प्रकट की। परन्तु जाजलि ने कुमार की पहली प्रार्थना मानने के लिए आग्रह किया। राक्षस ने कुमार की बात मान ली। जाजलि आभूषण पहनाकर चला गया। इतने में द्वार पर जीर्णविष नाम का एक सँपेरा आया। वह अपना खेल दिखाना चाहता था, परन्तु राक्षस ने उसे टालना चाहा। तब सँपेरे ने एक पद लिखकर भेजा—

सकल कुसुम रस पान करि मधुप रसिक सिरताज।
जो मधु त्यागत ताहि लै होत सबै जग काज॥

यह पद पढ़कर राक्षस ने समझा कि यह तो कुसुमपुर के वृत्तान्त का जानकार मेरा कोई गुप्तचर है। कार्य की व्यग्रता से, और अनेक गुप्तचरों के होने से, मैं भूल गया

था। अब स्मरण आ गया। सँपेरे के रूप में विराध गुप्त होगा।

राक्षस ने अब विराधगुप्त को बुला लिया, अन्य सब लोगों को बाहर भेज दिया। राक्षस ने उससे कुसुमपुर का, चन्द्रगुप्त के नगर-प्रवेश से लेकर, सब वृत्तान्त पूछा।

विराधगुप्त—विषकन्या के द्वारा पर्वतेश्वर के मारे जाने पर उसका पुत्र मलयकेतु भय से भाग गया तो दुष्ट चाणक्य ने ऐसी युक्ति की कि पर्वतक का भाई वैरोचक उस पर विश्वास करने लगा। चन्द्रगुप्त के नगर-प्रवेश के समय चाणक्य ने नगर के सब बढ़इयों को बुलाकर कहा—ज्योतिषियों के आदेश से, आधी रात में, चन्द्रगुप्त का नन्द-भवन में प्रवेश होगा। सो पूर्व-द्वार से लेकर राजभवन की सजावट करो। तब बढ़इयों ने कहा कि 'पहले ही राजा चन्द्रगुप्त का नन्द-भवन में प्रवेश जानकर बढ़ई दारुवर्मा ने, सोने के तोरण आदि कई पदार्थों से, राजभवन का प्रथम द्वार सजा रक्खा है, सो हमें अब भीतरी सजावट करनी है।" यह जानकर चाणक्य प्रसन्न हुआ कि बिना आज्ञा के ही दारुवर्मा ने राजभवन की सजावट की है। उसने दारुवर्मा की दूरदर्शिता की प्रशंसा करके कहा—दारुवर्मा। तुम शीघ्र ही दूरदर्शिता के योग्य फल पाओगे।

राक्षस ने उद्वेग से कहा—मित्र। चाणक्य कैसे प्रसन्न हो सकता है? मैं दारुवर्मा के प्रयत्न को निष्फल अथवा अनिष्ट फल-दायक समझता हूँ।

विराधगुप्त—तब चाणक्य ने वैरोचक को चन्द्रगुप्त के साथ एक आसन पर बैठाकर, पहले की प्रतिज्ञा के अनुसार, देश का आधा विभाग कर दिया और प्रजा में घोषणा करा दी कि चन्द्रगुप्त का नन्द-भवन में आज प्रवेश होगा। फिर चाणक्य के आदेश से चन्द्रगुप्त के अनुचरों ने अभिषेक के अनन्तर वैरोचक को, रात्रि के समय, चन्द्रगुप्त की चन्द्रलेखा नाम की हथिनी पर सवार कराके राजमार्गों पर घुमाया। हथिनी पर सवार वैरोचक जब नन्द भवन में प्रवेश करने लगा तब दारुवर्मा ने, उसे चन्द्रगुप्त समझकर, उसके ऊपर गिराने के लिए यन्त्र-तोरण सज्जित किया। चन्द्रगुप्त के मारने के लिए नियुक्त बर्बरक ने सोने के दण्ड के भीतर रक्खी हुई छुरी को खींचने की इच्छा से, सोने की जञ्जीर से लटकते हुए, सोने के दण्ड को हाथ से पकड़ लिया। अब जाँघों पर प्रहार के भय से हथिनी अति वेगवाली अन्य गति से चल पड़ी। पहली गति के अनुसार लक्ष्य से छोड़े हुए यन्त्र-तोरण से, लक्ष्य चूक जाने के कारण, बेचारा बर्बरक महावत मारा गया। तब यन्त्र-तोरण गिराने के कारण अपने मृत्यु-दण्ड की शङ्का कर, तोरण के ऊँचे स्थान पर चढ़े हुए, दारुवर्मा ने पहले ही यन्त्र-तोरण को गिराने-वाली लोहे की कील लेकर बेचारे वैरोचक को मार डाला। फिर वैरोचक के सेवकों ने दारुवर्मा को ढेलों से मार दिया।

यह सुनकर राक्षस की आँखें भर आईं। वह पूछने लगा—अच्छा, उस वैद्य अभयदत्त ने क्या किया?

विराधगुप्त—अमात्य । उसने एक चूर्ण में मिली हुई औषध चन्द्रगुप्त को दी । उसकी परीक्षा करने पर दुष्ट चाणक्य ने, सुवर्ण-पात्र मे वर्ण का विकार पाकर, चन्द्रगुप्त से कह दिया कि 'वृषल ! यह विष मिली औषध न पोना' । वही औषध पिलाकर वैद्य मार डाला गया ।

राक्षस ने दुःख से कहा—अहो ! महान् विज्ञान का ढेर नष्ट हो गया । फिर चन्द्रगुप्त के शयन-गृह के प्रबन्धकर्ता प्रमोदक का क्या हुआ ?

विराधगुप्त—वह तो मूर्ख था । आपसे विपुल धन पाकर वह अधिक व्यय करके भोग-विलास करने लगा । तब यह पूछे जाने पर कि तुम्हारे पास इतना धन कहाँ से आया, वह भिन्न-भिन्न उत्तर देने लगा । इस कारण दुष्ट चाणक्य ने विचित्र रीति से उसे मार डाला ।

राक्षस—क्या यहाँ भी हमें भाग्य ने चोपट कर दिया ? अच्छा, शयनगृह में चन्द्रगुप्त के शरीर पर आक्रमण करने के लिए नियुक्त, राजगृह के भीतर सुरङ्गों में जाकर पहले से ही छिपे हुए, बीभत्सक आदि का क्या वृत्तान्त है ?

विराधगुप्त—अमात्य ! दारुण वृत्तान्त है । शयनगृह में चन्द्रगुप्त के प्रवेश से पहले जा करके ध्यान से देखते हुए दुरात्मा चाणक्य ने किसी दीवार के छिद्र में से चींटियों की पङ्क्ति को अन्न के कण लिये निकलते देखकर सोचा कि इसके भीतर पुरुष रहते हैं । अत उस शयन गृह को चाणक्य ने

जलवा दिया। उसके जलने पर वीभत्सक आदि वहीं भस्म हो गये।

यह सुनकर राक्षस को महान् दु ख हुआ। वह कहने लगा—मित्र! उस दुरात्मा चन्द्रगुप्त का भाग्य देखो। मेरी नीतियाँ चन्द्रगुप्त के विविध कल्याण कर रही हैं। अच्छा फिर क्या हुआ?

विराधगुप्त—तब से लेकर चन्द्रगुप्त की रक्षा के लिए हजार गुना सावधान होकर दुष्ट चाणक्य नगर में रहनेवाले आपके विश्वासपात्रों को इस विचार से ढूँढ-ढूँढकर पकड़ता है कि 'इन्होंने ऐसा किया होगा।' सबसे पहले उसने क्षपणक जीवसिद्धि को तिरस्कारपूर्वक नगर से निकाल दिया है।

राक्षस—किस अपराध से निकाला है?

विराधगुप्त—यह अपराध लगाया कि इसने राक्षस के कहने से, विषकन्या के द्वारा पर्वतेश्वर को मारा है।

राक्षस ने मन में कहा—धन्य कौटिल्य, धन्य! अपना अयश हमारे मत्थे मढ़ दिया और आधे राज्य के लेनेवाले को मार दिया। तुम्हारी एक ही नीति का बीज बहुत फल देता है। फिर प्रकट रूप से कहा—हाँ, फिर?

विराधगुप्त—'तब दारुवर्मा आदि चन्द्रगुप्त के शरीर पर आक्रमण करने की इच्छा से कार्य करते हैं', यह घोषणा करके शकटदास को सूली पर चढ़ा दिया।

यह सुनकर राक्षस अति दु खित हुआ। उसकी आँखों से आँसू उमड़ आये। वह कहने लगा—हमीं

मन्दभाग्य हैं जो नन्द-कुल का नाश होने पर भी जीवन की इच्छा करते हैं।

विराधगुप्त—अमात्य। आप भी तो स्वामी के लिए सिद्धि का यत्न कर रहे हैं।

राक्षस—मित्र। दूसरे मित्र की भी विपत्ति का वर्णन करो। मैं सुनने को प्रस्तुत हूँ।

विराधगुप्त—यह सब देखकर चन्दनदास ने आपके कुटुम्ब को कहीं भेज दिया। तब, माँगने पर भी आपके कुटुम्ब को न देने पर, कुपित चाणक्य ने गृह-सामग्री छीनकर उसे स्त्री-पुत्र-सहित कारागार में डाल दिया।

राक्षस—यह कहो कि स्त्री-पुत्र-सहित राक्षस बाँधा गया।

इसी समय वहाँ शकटदास को लेकर सिद्धार्थक आ पहुँचा। राक्षस ने उसे देखकर सहर्ष गले लगा लिया और पूछा—मित्र शकटदास। तुम यहाँ कैसे?

शकटदास ने सिद्धार्थक की ओर सङ्केत करके कहा—यह प्रिय मित्र सिद्धार्थक, घातकों को भगाकर, मुझे वध-स्थान से लाया है।

राक्षस ने प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को अपने आभूषण उतारकर पारितोषिक में दे दिये।

सिद्धार्थक ने भी सोचा कि यह चाणक्य का आदेश है। सो आभूषण ले लिये और कहा—अमात्य। यहाँ मैं पहले

ही आया हूँ। कोई भी परिचित नहीं है कि जहाँ आपके प्रसाद को रखकर निश्चिन्त हो जाऊँ। सो मेरी यह इच्छा है कि इसे, इस मुद्रा से मुद्रित कर, आपके ही भाण्डार में रख दूँ। जब प्रयोजन होगा, ले जाऊँगा।

राक्षस ने इसमें कुछ दोष न जानकर स्वीकार कर लिया। शकटदास को ऐसा ही करने को कह दिया। शकटदास ने मुद्रा लेकर ओट मे कहा कि अमात्य! आपके ही नाम की यह मुद्रा है।

राक्षस—भद्र सिद्धार्थक! यह मुद्रा तुम्हें कैसे मिली?

सिद्धार्थक—कुसुमपुर में चन्दनदास नाम का जोहरी है। उसके द्वार के समीप मुझे पड़ी मिल गई थी। जो आप इसे ग्रहण कर लें तो आपकी बड़ी कृपा हो।

अब सिद्धार्थक ने अँगूठी दे दी। राक्षस ने कहा—मित्र शकटदास! इस मुद्रा से ही अपना कार्य किया करो।

सिद्धार्थक ने अब प्रार्थना की कि चाणक्य का अहित करके पाटलिपुत्र में जाना कठिन है। सो मैं आपकी ही सेवा मे रहना चाहता हूँ। राक्षस ने यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर शकटदास से कहा कि इसे अब विश्राम के लिए स्थान दो।

शकटदास सिद्धार्थक को लेकर चला गया।

राक्षस ने अब विराधगुप्त से पूछा—क्या चन्द्रगुप्त की प्रजा हमारे प्रयत्न से सहमत है?

विराधगुप्त—अमात्य ! सत्यमत है। लोग आपका अनुगमन ही करते दिखाई देते हैं। सुना है कि मलयकेतु के चले जाने से चन्द्रगुप्त अब चाणक्य पर कुपित है। चाणक्य भी अति गर्व से, बार बार आज्ञा भङ्ग करके, चन्द्रगुप्त के चित्त की पीडा बढाता है।

इस समाचार से राक्षस प्रसन्न हो गया। उसने विराधगुप्त से कहा—मित्र ! तुम इस सँपेरे के वेष मे ही फिर कुसुमपुर जाओ। वहाँ मेरा प्रिय मित्र स्तनकलश, वैतालिक के वेष मे, रहता है। मेरी ओर से उससे कहो कि चाणक्य के आज्ञाभङ्ग करने पर वह उत्तेजक छन्दों मे चन्द्रगुप्त की स्तुति करे और करभक-द्वारा, गुप्त रूप से, परिणाम की सूचना भेजता रहे।

यह आज्ञा पाकर विराधगुप्त चला गया।

इस समय एक पुरुष ने आकर कहा कि ये तीन आभूषण बिक रहे ह। आप इन्हें देख ले। राक्षस ने शकटदास को दाम ठहराकर खरीदने के लिए कह दिया।

(३)

'कौमुदी महोत्सव' का दिन समीप आने पर चन्द्रगुप्त ने उत्सव मनाने की घोषणा की। वे 'कौमुदी-महोत्सव' से अधिक रमणीय हो रहे कुसुमपुर को देखना चाहते थे। नगर-शोभा देखने के लिए वे सुगाङ्ग-प्रासाद पर आये। मार्ग मे वे चिन्ता करते आते थे कि गुरु ने आदेश किया है—कृत्रिम कलह

करके, स्वतन्त्र होकर, कुछ समय के लिए कार्य-प्रबन्ध करना चाहिए।' मैंने कठिनता से इस, पाप के समान, कठिन कार्य को स्वीकार किया है।

अब चारों ओर देखकर चन्द्रगुप्त कहने लगे—"अरे! कुसुमपुर में 'कौमुदी-महोत्सव' नहीं मनाया गया?" फिर उन्होंने कञ्चुकी वैहीनर से पूछा—क्या तुमने हमारी ओर से कुसुमपुर में 'कौमुदी महोत्सव' की घोषणा नहीं की थी?

वैहीनर—मैंने घोषणा तो कर दी थी, परन्तु 'कौमुदी-महोत्सव' रोक दिया गया है।

राजा ने क्रोध से कहा—आह! किसके द्वारा?

वैहीनर—राजन्! इससे अधिक और कुछ निवेदन करने की शक्ति नहीं है।

राजा—क्या चाणक्य ने?

वैहीनर ने बताया कि जीवन की इच्छा रखनेवाला और कौन आपकी आज्ञा के विरुद्ध चलता है।

राजा ने अब वैहीनर को भेजकर चाणक्य को बुला भेजा। आने पर, चन्द्रगुप्त ने आसन से उठकर उसे प्रणाम किया। चाणक्य ने हाथ पकड़कर उसे उठाया और पूछा—वृषल! हमें क्यों बुलाया है?

राजा—आपके दर्शनों से अनुगृहीत होने के लिए।

चाणक्य ने मुस्कराकर कहा—इस विनयभाव को बन्द करो। राजा लोग अधिकारियों को बिना प्रयोजन नहीं बुलाते।

राजा—आर्य ! 'कौमुदी महोत्सव' के रोकने से आपने क्या लाभ सोचा है ?

चाणक्य ने मुस्कराकर कहा—तो उलहना देने को हमें बुलाया है ?

राजा—हरे ! हरे ! कदापि नहीं। निवेदन करने को।

चाणक्य—यदि ऐसा है तो शिष्य को, निवेदन करने के लिए, माननीय पुरुषों की इच्छा का विरोध न करना चाहिए।

राजा—इसमें क्या सन्देह ? किन्तु हमने इसी कारण पूछा है कि आपका कार्य कभी निष्प्रयोजन नहीं होता।

चाणक्य—वृषल ! तुमने ठीक समझा। स्वप्न में भी चाणक्य निष्प्रयोजन चेष्टा नहीं करता। सुनो, अर्थशास्त्र के कर्त्ता तीन प्रकार की सिद्धि का वर्णन करते हैं। राजायत्त, सचिवायत्त और उभयायत्त—सो तुम्हारी सिद्धि सचिवायत्त है। प्रश्न से क्या लाभ ? कार्य तो हमें ही करना है।

यह सुनकर राजा ने क्रोध से मुख फेर लिया। तब वैतालिकों ने कवित्त पढे। एक ने शरद्-वर्णन किया, दूसरे ने कहा—

अहो, जिनको विधि सब जीव सो बढि दीनो जग-राज।
अरे, दान सलिल-धारे सदा जे जीतहिं गजराज॥
अहो, झुक्यो न जिनको मान ते नृपवर जग सिरताज।
अरे, सहहिं न आज्ञा-भङ्ग जिमि दन्तपात मृगराज॥
अरे, केवल बहु गहना पहिरि राजा होय न कोय।
अहो, जासो नहिँ आज्ञा टरे सो नृप तुम सम होय॥

यह सुनकर चाणक्य समझ गया कि यह राक्षस की चाल है। मन मे कहने लगा कि दुरात्मा राक्षस! तुम्हें देख लिया। कौटिल्य सावधान है।

राजा ने वैहीनर से कहा कि दोनों वैतालिकों को सहस्र स्वर्णमुद्रा दो। वैहीनर उठकर जाने लगा तो चाणक्य ने उसे रोक लिया और राजा से कहा—वृषल! अपात्र को इतना अधिक दान क्यो देते हो?

राजा ने क्रोध से कहा—आप सब जगह इसी प्रकार मुझे टोक देते हैं। इस कारण राज्य तो मेरे लिए बन्धन-सा है।

चाणक्य—वृषल! ये दोष तो स्वय कार्य न करनेवाले राजाओ मे होते ही हैं। सो यदि सहन नही करते तो अपना कार्य स्वय देखो।

राजा—मैंने अपना कार्य सँभाला।

चाणक्य—यह हमें स्वीकार है। हम भी अपने कार्य में लगते हैं।

अब राजा ने कहा—यदि ऐसा है तो 'कौमुदी-महोत्सव' के रोकने का प्रयोजन सुनना चाहता हूँ।

चाणक्य ने शोणोत्तरा दासी से कहा कि जाकर अचलदत्त से भद्रभट आदि का लेख्यपत्र माँग ला। दासी ने शीघ्र ही पत्र लाकर दे दिया। चाणक्य ने पत्र पढकर सुनाया—यह लेख्यपत्र उन प्रधान पुरुषों का है जिनका उत्कर्ष तो स्वनामधन्य राजा चन्द्रगुप्त के साथ हुआ है, किन्तु जो यहाँ से वध्य मलयकेतु के

आश्रय मे चले गये हैं। उन विद्रोहियो के नाम ये हैं—गजाध्यक्ष भद्रभट, अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त, महाप्रतीहार चन्द्रभानु का भानजा डिंगरात, राजा का नातेदार महाराज बलगुप्त, राजा का ही कुमारावस्था का सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबल का छोटा भाई भागुरायण, मालवराज का पुत्र लोहिताक्ष और क्षत्रियो में प्रधान विजयवर्मा।

यह सुनकर चन्द्रगुप्त ने कहा—मैं इनके विद्रोही होने का कारण सुनना चाहता हूँ।

चाणक्य—वृषल! सुनो। गजाध्यक्ष भद्रभट और अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त को मैंने स्त्री, मद्य और मृगया मे आसक्त एव हाथियों तथा घोडों के निरीक्षण में असावधान देखकर, अधिकार-च्युत करके, जीवन भर के लिए वृत्ति दे दी। शत्रु मलयकेतु के आश्रित होकर वे वहाँ अपने अपने पद पर नियुक्त हो गये हैं। डिङ्गरात और बलगुप्त अत्यन्त लोभी हैं। वे तुम्हारे दिये हुए वेतन को न्यून मानकर मलयकेतु के यहाँ अधिक वेतन पाने के लोभ से उसके आश्रित हो गये हैं। तुम्हारा कुमार-अवस्था का सेवक राजसेन भी तुम्हारी कृपा से सहसा महान् धन-ऐश्वर्य तथा हस्ति-अश्व पाकर इसलिए मलयकेतु के आश्रित हो गया है कि कहीं यह सब छिन न जाय। दूसरे सेनापति सिंहबल के छोटे भाई भागुरायण ने, उस समय पर्वतक के साथ की गई मित्रता के अनुरोध से, 'तेरे पिता को चाणक्य ने मार डाला है' ऐसा एकान्त में डरवाकर मलयकेतु को भगा

चाणक्य—स्वामी पर दृढ अनुराग तथा चिरकाल तक एक स्थान पर रहने के कारण, स्वभाव को परखनेवाली, नन्दकुल मे अनुरक्त प्रजा का विश्वासपात्र राक्षस है। वह बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, सहायता-सम्पन्न और धनी है। यहाँ नगर में रहकर वह अवश्य कुचक्र रचकर महान् उपद्रव खडे करता। दूर कर देने पर यदि वह बाहर से उपद्रव मचावेगा तो उपायो-द्वारा वश मे कर लिया जायगा। अत यहाँ से उसे, हृदय में बिँधे शल्य के समान, निकालकर दूर कर दिया है।

राजा—आपने उसे बलपूर्वक बन्दी क्यो न कर लिया ?

चाणक्य—वह राक्षस है। बलपूर्वक बन्दी किया जाता तो वह तुम्हारी बहुत-सी सेना का नाश कर देता अथवा स्वय नष्ट हो जाता। ये दोनो ही परिणाम अनुचित होते।

राजा—हम आपकी बातों मे नहीं पा सकते। तो फिर अमात्य राक्षस ही सर्वथा श्रेष्ठ है ?

चाणक्य ने क्रोध से कहा—यह क्यो नहीं कह देते कि "आप श्रेष्ठ नहीं" ? अरे वृपल ! उसने क्या किया है ?

राजा—क्या आप नहीं जानते ? नगर के हस्तगत हो जाने पर भी उसने, जब तक चाहा, हमारे मस्तक पर पैर रखकर निवास किया, और हमारी सेना के जय-घोषणा करने में बलपूर्वक बाधा डाली। अपनी नीति के उत्कर्ष से उसने हमे सम्मोहित कर दिया है, हमें अपने पक्ष के विश्वसनीय पुरुषों पर भी विश्वास नहीं होता।

चाणक्य ने हँसकर कहा—राक्षस न क्या किया है। वृषल ! मैंने तो समझा था कि, नन्द के समान, तुमको उखाड़ कर तुम्हारे बदले उसने भूतल पर मलयकेतु को राजाधिराज नियुक्त कर दिया है ?

राजा—यह और ही किसी ने किया है, न कि आपने।

चाणक्य—किसने ?

राजा—नन्द-कुल के द्वेषी दैव ने।

चाणक्य—दैव को तो मूर्ख लोग मानते हैं।

राजा—विद्वान् भी अभिमानी नहीं होते।

चाणक्य को अब क्रोध आ गया। कहने लगा—वृषल ! सेवक के समान मुझपर शासन करना चाहता है। मेरा यह हाथ, बँधी हुई शिखा को फिर खोलने के लिए बढ़ता है।

अब चाणक्य ने भूमि पर क्रोध से पैर पटका। राजा ने मन में कहा—अरे ! क्या आर्य सचमुच कुपित हो गये।

चाणक्य ने अब कृत्रिम क्रोध को रोककर कहा—वृषल ! इस वाद-विवाद से क्या लाभ ? यदि तुमसे राक्षस श्रेष्ठ जान पड़ता है तो यह शस्त्र उसे दे दो।

बस, चाणक्य ने शस्त्र फेंक दिया। फिर उठ कर आकाश की ओर लक्ष्य कर मन में कहा कि राक्षस ! राक्षस ! यह तुम्हारा कौटिल्य की बुद्धि के जीतने की इच्छा का प्रकर्ष है।

चाणक्य अब चला गया।

राजा ने वैहीनर को बुलाकर प्रजा मे यह घोषणा करवा दी कि आज से चाणक्य का तिरस्कार करके, चन्द्रगुप्त स्वय ही राज्य करेगा।

वैहीनर—सौभाग्य से महाराज अब यथार्थ में महाराज हो गये।

यह वचन सुनकर राजा ने मन मे कहा—हमे ऐसा समझा जाने पर स्वकार्य सिद्धि की कामना करते हुए आर्य चाणक्य सफल हों।

फिर शिर-पीडा कहकर राजा चन्द्रगुप्त शयन-गृह को चले गये।

(४)

एक दिन शकटदास के साथ राक्षस अपने शयन-गृह में, आसन पर, चिन्ता में बैठा था कि कुसुमपुर से करभक समाचार लेकर आया।

प्राय. उसी समय भागुरायण के साथ कुमार मलयकेतु वहाँ आ रहा था। मार्ग मे कुमार मलयकेतु ने जाजलि को यह कहकर लौटा दिया कि मैं अमात्य राक्षस को, बिना सूचना दिये जाकर, प्रसन्न करना चाहता हूँ। जाजलि के चले जाने पर मलयकेतु ने भागुरायण से कहा—मित्र! यहाँ आये हुए भद्रभट आदि ने मुझसे निवेदन किया था कि 'हम अमात्य राक्षस के द्वारा कुमार का आश्रय ग्रहण करना नहीं चाहते, किन्तु दुष्ट अमात्य के वशीभूत हो रहे चन्द्रगुप्त

से विरक्त होकर आये हुए, कुमार के सेनापति, शिखरसेन के द्वारा आपका वाञ्छित आश्रय चाहते हैं।' सो उनके वाक्य का अर्थ, चिरकाल तक विचार करने पर भी, मेरी समझ में नहीं आया।

भागुरायण—यह अर्थ दुर्बोध नहीं है। किसी वीर और आत्म गुण से सम्पन्न व्यक्ति को प्रिय और हितैषी के द्वारा आश्रय लेना ही चाहिए।

मलयकेतु—मित्र भागुरायण! अमात्य राक्षस तो हमारा प्रियतम और अत्यन्त हितकारी है।

भागुरायण—अमात्य राक्षस का चाणक्य से वैर है, न कि चन्द्रगुप्त से। यदि कभी चाणक्य के गर्व को न सहकर चन्द्रगुप्त उसे सचिव पद से हटा दे तो, नन्द-कुल में भक्ति रखने के कारण, 'यह नन्द-वंश ही है' ऐसा समझकर, अमात्य राक्षस चन्द्रगुप्त के साथ मेल कर सकता है। ऐसा होने पर कुमार हम पर भी विश्वास न करेंगे। इनके वाक्य का यही अर्थ है।

इस प्रकार वार्त्तालाप करते-करते जब ये राक्षस के गृह-द्वार पर पहुँचे तब इन्हें राक्षस का एक वचन सुनाई पड़ा—"क्या तुमने कुसुमपुर में स्तनकलश वैतालिक को देखा था?"

कुसुमपुर-विषयक वार्त्तालाप जानकर, उसे सुनने की इच्छा से, भागुरायण के साथ मलयकेतु वहीं ठहर गया।

'कौमुदी-महोत्सव' के रोकने का सारा वृत्तान्त करभक ने

कह सुनाया। सब सुनकर राक्षस प्रसन्न हुआ। करभक ने बताया कि तब चन्द्रगुप्त ने आज्ञा-भङ्ग से रुष्ट होकर प्रसङ्ग-वश आपके गुणों की प्रशंसा की और दुष्ट चाणक्य को अधिकार से हटा दिया।

यह सुनकर मलयकेतु ने कहा—मित्र भागुरायण! गुण-प्रशंसा करके चन्द्रगुप्त ने राक्षस के प्रति भक्ति का पक्षपात दिखाया है।

भागुरायण—गुण-प्रशंसा से इतना नहीं, जितना चाणक्य का तिरस्कार करके।

राक्षस ने करभक से पूछा—क्या चन्द्रगुप्त का चाणक्य के प्रति क्रोध का यही एक कारण है कि 'कौमुदी-महोत्सव' रोक दिया गया अथवा और भी कारण हैं?

करभक—चन्द्रगुप्त के क्रोध का कारण यह भी है कि भागते हुए मलयकेतु और अमात्य राक्षस की चाणक्य ने उपेक्षा की।

अब तो राक्षस अति प्रसन्न हुआ। वह कहने लगा—मित्र शकटदास! अब चन्द्रगुप्त मेरे हाथ में आ जायगा, चन्दनदास की वन्दीगृह से मुक्ति होगी और पुत्र-स्त्री आदि से तुम्हारा मिलन होगा।

यह सुनकर मलयकेतु ने भागुरायण से पूछा—मित्र! 'हाथ में आ जायगा' कहने का क्या अभिप्राय है?

भागुरायण—अभिप्राय और क्या होगा? चाणक्य से

रूठे हुए चन्द्रगुप्त के उद्धार से राक्षस अवश्य कोई कार्य सिद्ध करेगा।

करभक से सब समाचार सुनकर राक्षस ने उसे, विश्राम करने के लिए, शकटदास के साथ भेज दिया।

राक्षस ने अब यह समाचार कुमार से कहना चाहा। शकटदास के जाते ही कुमार स्वयं आगे बढ़ गया। मलयकेतु को देखकर राक्षस ने, आसन से उठकर, उसे सादर बैठाया।

मलयकेतु—अमात्य! शिर-पीड़ा न्यून हुई?

राक्षस—कुमार! आपको राजन् शब्द प्राप्त हुए बिना मेरी शिर-पीड़ा कैसे न्यून हो सकती है?

मलयकेतु—आपने जो स्वीकार किया है वह दुष्प्राप्य न होगा। सो कितने समय तक हमें, सेना एकत्र किये रहने पर भी, शत्रु के व्यसन को देखते हुए उदासीन रहना चाहिए?

राक्षस—कुमार! क्या आज भी समय नष्ट करने का अवकाश है? विजय की प्रतीक्षा कीजिए।

मलयकेतु—क्या शत्रु इस समय किसी सङ्कट में है?

राक्षस—हाँ, सचिव सङ्कट है। चन्द्रगुप्त चाणक्य से पृथक् हो गया है।

मलयकेतु—अमात्य! सचिव-सङ्कट कोई सङ्कट नहीं है।

राक्षस—अन्य राजाओं को कदाचित् सचिव-सङ्कट कोई सङ्कट न हो, किन्तु चन्द्रगुप्त के लिए तो अवश्य है।

मलयकेतु—अमात्य! यह बात नहीं है। चाणक्य के दोष के ही कारण प्रजा चन्द्रगुप्त पर अनुरक्त नहीं है। चाणक्य के तिरस्कृत हो जाने पर पहले से ही चन्द्रगुप्त में अनुरक्त प्रजा अब और भी अनुराग दिखायेगी।

राक्षस—नहीं, ऐसा नहीं। अपने लिए उपयुक्त आश्रय न पाने से ही प्रजा चन्द्रगुप्त के आश्रय में है। पुन प्रतिपक्ष का उद्धार करने में आप सदृश योधा को पाकर वह शीघ्र उसे त्यागकर आपका आश्रय ले लेगी। यहाँ हमीं उदाहरण हैं।

मलयकेतु—अमात्य! यदि ऐसे आक्रमण की आप प्रतीक्षा करते हैं तो बैठे क्यों हैं? आक्रमण का प्रबन्ध कीजिए।

अब मलयकेतु, भागुरायण-सहित चला गया। राक्षस ने भी, मुहूर्त्त निकलवाने के लिए, एक पुरुष को आज्ञा दी कि देखो द्वार पर ज्योतिषियों में से कौन है। उस पुरुष ने आकर सूचना दी कि क्षपणक जीवसिद्धि है।

राक्षस ने क्षपणक का नाम सुनकर असगुन समझा, परन्तु फिर उसी को बुला लिया। क्षपणक ने कुछ सोचकर ऐसा मुहूर्त्त बताया जो स्पष्ट ही इनके प्रतिकूल था।

राक्षस ने अन्य ज्योतिषी से मुहूर्त्त पूछने का विचार किया।

क्षपणक कुपित होकर चला गया।

(५)

एक दिन एक पत्र और आभूषण की पेटी लेकर सिद्धार्थक चल पड़ा। इस पत्र को चाणक्य ने लिखवाकर अमात्य राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर दिया था। यह अलङ्कार-मञ्जूषा भी उसी मुद्रा से मुद्रित की हुई थी।

सिद्धार्थक पाटलिपुत्र को जा रहा था। उसे मार्ग में क्षपणक मिल गया। क्षपणक ने उसे बताया कि यहाँ, मलयकेतु की सेना में, लोगों का आना-जाना बन्द कर दिया गया है। अब यहाँ से कुसुमपुर के निकट होने पर कोई भी, बिना प्रवेश-पत्र के, आने या जाने की आज्ञा नहीं पाता। तुम भागुरायण का प्रवेश-पत्र ले लो निःशङ्क चले जाओ, अन्यथा ठहर जाओ।

किन्तु सिद्धार्थक न ठहरा। वह बिना प्रवेश पत्र के चला गया। क्षपणक को भी जाना था। उसने भागुरायण से प्रवेश-पत्र माँगने का विचार किया।

उधर भागुरायण बैठा सोच रहा था कि शोक है, मुझे कुमार मलयकेतु को भी हमें धोखा देना होगा। उसने अपने सेवक को प्रवेश-पत्र के इच्छुकों को ले आने की आज्ञा दी। इस समय मलयकेतु भी वहाँ आ गया। वह मन में सोच रहा था कि राक्षस के विषय में अनेक संशय होने से कुछ निश्चय नहीं कर पाता हूँ। इसी से वह भागुरायण से

मिलने आ गया। उसने भागुरायण का मुख दूसरी ओर होने से अपने हाथों से उसकी आँखें मूँदनी चाहीं।

इस समय क्षपणक, प्रवेश-पत्र की इच्छा से, वहाँ आ गया। उसे देखकर भागुरायण ने समझ लिया कि यह राक्षस का मित्र जीवसिद्धि है। उससे पूछा—राक्षस के प्रयोजन से ही तो नहीं कहीं जा रहे हो?

क्षपणक—हरे-हरे। मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ राक्षस या पिशाच का नाम भी नहीं सुना जाता।

भागुरायण—क्या मित्र से अधिक प्रेम-कलह है? राक्षस ने कौन-सा अपराध किया है?

क्षपणक—राक्षस ने मेरा कोई भी अपराध नहीं किया। मुझ मन्दभाग्य ने स्वय ही अपना अपराध किया है।

भागुरायण—मेरा कौतूहल बढ गया है। कारण सुनना चाहता हूँ।

मलयकेतु ने भी मन मे कहा, मैं भी सुनना चाहता हूँ।

क्षपणक ने सुनाने मे आगा-पीछा किया। भागुरायण ने प्रवेश-पत्र देना अस्वीकार कर दिया।

क्षपणक ने यह उचित अवसर देखकर कहा—क्या करूँ? सुनिए। मैं मन्दभाग्य पाटलिपुत्र मे रहता था। राक्षस से मित्रता हो गई। उस समय राक्षस ने, गुप्त रूप से, विष-कन्या का प्रयोग करवाकर राजा पर्वतेश्वर को मरवा डाला।

यह सुनकर मलयकेतु के नेत्र सजल हो गये। वह मन में कहने लगा कि राक्षस ने मारा है, न कि चाणक्य ने।

भागुरायण—तब क्या हुआ?

क्षपणक—तब राक्षस का मित्र समझकर दुष्ट चाणक्य ने मुझे तिरस्कारपूर्वक नगर से निकाल दिया। अब भी कार्य कुशल राक्षस ने कुछ वैसा ही कार्य आरम्भ किया है जिससे मैं जीवलोक से निकाला जाऊँगा।

भागुरायण—सुना है, आधा राज्य देने की प्रतिज्ञा से दुष्ट चाणक्य ने यह पाप किया है न कि राक्षस ने।

क्षपणक ने कानों पर हाथ रखकर कहा—हरे! चाणक्य ने तो विषकन्या का नाम भी नहीं सुना।

भागुरायण ने अब क्षपणक को प्रवेश पत्र देकर कहा—चलो, कुमार को सुना दो।

अब आगे बढ़कर मलयकेतु बोला—मित्र! मैंने शत्रु के मित्र द्वारा हृदय विदारक वचन सुने हैं जिससे मेरे पितृ-वध का दुःख, चिरकाल व्यतीत हो जाने पर भी, आज दूना हो गया है।

यह सुनकर क्षपणक, अपना कार्य सफल समझकर, चला गया।

मलयकेतु मानों आकाश में राक्षस को प्रत्यक्ष देखकर कहने लगा—राक्षस! ठीक है, ठीक है। अपना मित्र समझकर, शान्त चित्त वृत्ति से विश्वास करके, पिताजी ने तुमको

सब कार्य सौंप दिया। उन्हीं मेरे पिता को मारकर तुमने अपना राक्षस नाम यथार्थ कर दिया।

भागुरायण ने सोचा कि चाणक्य का आदेश राक्षस के प्राण बचा लेने का है। इसी से उसने मलयकेतु से कहा—कुमार! क्रोध मत कीजिए। नन्द राज्य प्राप्त होने तक तो इसे मिलाये रखना चाहिए। इसके अनन्तर ग्रहण करना या त्याग करना आप पर निर्भर है।

मलयकेतु ने यह मन्त्रणा स्वीकार कर ली। उसने सोचा कि अमात्य का वध करने से प्रजा से क्षोभ होगा और विजय सन्दिग्ध हो जायगी।

इस समय एक सेवक, बिना प्रवेश-पत्र के जाते हुए, सिद्धार्थक को पकड़कर वहाँ लाया। उसने कुमार से निवेदन किया—इसके पास एक मुद्रित पत्र है। आप जाँच लें।

उसे देखकर भागुरायण ने कहा—यह आगन्तुक है अथवा यहाँ किसी का सेवक है?

सिद्धार्थक—मैं अमात्य राक्षस का सेवक हूँ।

भागुरायण—तो बिना प्रवेश-पत्र लिये छावनी से क्यों जा रहे थे?

सिद्धार्थक—कार्य के गौरव से मैंने शीघ्रता की है।

भागुरायण—वह कार्य-गौरव कैसा जो राज-शासन का उल्लङ्घन करता है?

भागुरायण ने पत्र लेकर देखा और कहा—यह राक्षस के नाम की अङ्कित मुद्रा है।

मलयकेतु—मुद्रा को बचाकर पत्र खोलकर दिखाओ।

भागुरायण ने इसी प्रकार पत्र खोलकर मलयकेतु को दे दिया। मलयकेतु पत्र पढ़ने लगा। उसमें लिखा था—"स्वस्ति। यथा-स्थान कहीं से कोई किसी विशेष पुरुष को सूचना देता है—हमारे प्रतिपक्षी (चाणक्य) का तिरस्कार कर सत्यवादी ने वर्णनातीत सत्यता दिखाई है। पहले सन्धि का प्रस्ताव करके मेरे इन मित्रों को सन्धि के बदले में जो वचन दिया था उसी की पूर्ति से प्रोत्साहित करके अब प्रीति उत्पन्न करनी चाहिए। ये भी ऐसे अनुगृहीत होकर, स्वाश्रय के विनाश से, उपकारी का आश्रय लेंगे। सत्यवादी को स्मरण तो होगा ही, फिर भी मैं स्मरण कराता हूँ। इनके बीच कई पुरुष कोष और हस्तियों के इच्छुक हैं तथा कई पुरुष देश के। सत्यवादी ने जो तीन अलङ्कार भेजे हैं वे मिल गये। मैंने भी पत्र को अशून्य करने के लिए कुछ भेजा है, उसे स्वीकार कीजिए। और वृत्त मेरे अत्यन्त विश्वासी के मुख-द्वारा सुनना।"

अब मलयकेतु ने भागुरायण से पूछा—मित्र! यह कैसा लेख है?

यही प्रश्न भागुरायण ने सिद्धार्थक से किया।

सिद्धार्थक—मैं नहीं जानता।

भागुरायण ने सवक भासुरक से कहा कि इसे बाहर ले जाकर पीटो। सवक उसे बाहर ले गया। कुछ समय के पश्चात् भासुरक ने आकर कहा—आर्य! यह मुद्रित पेटी, उसे पीटते समय, उसकी काँख में से गिरी है।

पेटी देखकर भागुरायण ने कहा—कुमार! इस पर भी राक्षस की मुद्रा अङ्कित है।

मलयकेतु—मित्र! यह पत्र को अशून्य करने के लिए होगी। इसे भी मुद्रा बचाकर खोलो और दिखाओ।

भागुरायण ने पेटी खोलकर आभूषण दिखाये। मलयकेतु ने आभूषण देखकर कहा—अरे! मैंने ये आभूषण अपने शरीर से उतारकर राक्षस को भेजे थे। स्पष्ट है कि यह पत्र चन्द्रगुप्त के नाम है।

"कुमार! यह संशय अभी मिटा जाता है।" ऐसा उत्तर देकर भागुरायण ने भासुरक से कहा कि उसे और पीटो।

कुछ ही क्षण में भासुरक, सिद्धार्थक को साथ लेकर, आया और कहने लगा—यह कुमार से ही निवेदन करेगा।

सिद्धार्थक ने चरणों पर गिरकर अभय माँगा।

मलयकेतु—भद्र! पराधीन पुरुष को अभय ही है। जो बात हो, कहो।

सिद्धार्थक—मुझे तो अमात्य राक्षस ने यह पत्र देकर चन्द्रगुप्त के पास भेजा था।

मलयकेतु—सन्देश भी सुनाओ।

सिद्धार्थक—कुमार। अमात्य ने यह आदेश किया है—'ये मेरे पाँच प्रिय मित्र राजा हैं जो तुम्हारे साथ स्नेह करते हैं। वे हैं कुलूत-राज चित्रवर्मा, मलयराज सिंहनाद, काश्मीर-राज पुष्कराक्ष, सिन्धु-राज सिन्धुसेन और पारसीक-राज मेघनाद। इनमें से पहले कहे हुए तीन राजा मलयकेतु के देश की इच्छा करते हैं, अन्य दो हस्ति-सेना और कोष चाहते हैं। सो जैसे चाणक्य का तिरस्कार करके मेरी प्रीति उत्पन्न की है वैसे ही इनका भी, पहले कहा हुआ, कार्य सम्पादन करना चाहिए।' इतना ही सन्देश है।

सन्देश सुनकर मलयकेतु ने सोचा कि क्या चित्रवर्मा आदि भी मेरे साथ विद्रोह करते हैं अथवा उल्लिखित कारण से उनकी राक्षस पर अत्यन्त प्रीति है।

अब मलयकेतु ने राक्षस को बुला भेजा।

राक्षस इस समय, प्रस्थान के प्रबन्ध के लिए, यथोचित आज्ञा दे रहा था। कुमार का सन्देश पाकर शीघ्र इधर आने लगा। आने से पहले उसने शकटदास से कहा—कुमार ने हमें आभूषण पहनाये हैं। सो बिना आभूषण पहने कुमार का दर्शन करना उचित नहीं। अतः जो तीन आभूषण खरीदे थे उनमें से एक दे दो।

शकटदास एक आभूषण ले आया। उसे पहनकर राक्षस कुमार के पास गया। यथोचित अभिवादन आदि के अनन्तर

मलयकेतु ने कहा—आर्य ! अधिक विलम्ब में आपका दर्शन होने से हम उद्विग्न हैं।

राक्षस—कुमार ! प्रस्थान का प्रबन्ध करने के कारण मुझे आपसे यह उलहना मिला है।

मलयकेतु—मान्यवर ! प्रस्थान का क्या प्रबन्ध किया है ? सुनना चाहता हूँ।

राक्षस—आपके अनुयायी राजाओं को यह आज्ञा दी है कि खस और मगध के सैनिक मेरे साथ आगे रहें, गान्धार के सैनिक यवनों-सहित मध्य में रहें, उनके पीछे शक राजा, चीनी और हूण सैनिको-सहित, रहें तथा अन्य कुलूत आदि राजा आपकी रक्षा करें।

यह सुनकर मलयकेतु ने मन में कहा कि जो मेरा विनाश कर चन्द्रगुप्त के प्रसन्न करने को उद्यत हैं क्या वे ही मुझे घेरे रहेंगे। कुमार ने अब राक्षस से पूछा—मान्यवर ! कोई है जो कुसुमपुर के लिए जाता या आता है ?

राक्षस—अब आने-जाने का प्रयोजन समाप्त हो गया। थोड़े दिनों में हमीं लोग वहाँ जायँगे।

मलयकेतु—यदि ऐसा है तो आपने पत्र देकर इस पुरुष को किस कार्य में भेजा है ?

सिद्धार्थक को देखकर राक्षस ने कहा—अरे सिद्धार्थक ! यह क्या ?

सिद्धार्थक ने आँसू भरकर लज्जा दिखाते हुए कहा—

अमात्य ! प्रसन्न हूजिए। पीटे जाने पर मैं रहस्य को छिपा न सका।

राक्षस—भद्र ! कैसा रहस्य ? मैं तो जानता नहीं।

"मैं निवेदन करता हूँ कि पिटने पर मैं .।" इतना कहकर भय से सिर झुकाये सिद्धार्थक खड़ा रहा।

मलयकेतु—भागुरायण ! यह त्रस्त और लज्जित व्यक्ति स्वामी के सामने कुछ न कहेगा। तुम्हीं इनसे कह दो।

भागुरायण—अमात्य ! यह कहता है कि अमात्य ने पत्र तथा सन्देश देकर मुझे चन्द्रगुप्त के समीप भेजा है।

राक्षस—भद्र सिद्धार्थक ! क्या यह सत्य है ?

सिद्धार्थक ने लज्जा दिखाते हुए कहा—पिटने पर मैंने ऐसा कह दिया।

राक्षस—यह असत्य है। पिटने पर पुरुष क्या नहीं कह देता ?

मलयकेतु ने भागुरायण से कहा कि राक्षस को पत्र दिखा दो। पत्र दिखाया गया। राक्षस ने पत्र पढ़कर कहा—कुमार ! यह शत्रु की चाल है।

मलयकेतु—पत्र को अशून्य करने के लिए आपने ये आभूषण भी तो भेजे हैं। सो यह शत्रु की चाल कैसे है ?

आभूषण देखकर राक्षस ने कहा—कुमार ने ये मेरे लिए भेजे थे। मैंने भी ये, किसी प्रसन्नता के कारण, सिद्धार्थक को दे दिये थे।

भागुरायण—ऐसे, विशेषकर कुमार के शरीर से उतारकर उपहार में दिये हुए, आभूषणों का यह दानपात्र है ?

मलयकेतु ने आगे कहा—आपने लिखा है कि सन्देश भी हमारे विश्वासपात्र से सुनना।

राक्षस—कैसा सन्देश ? किसका सन्देश ? पत्र ही हमारा नहीं है।

मलयकेतु—तो यह मुद्रा (मुहर) किसकी है ?

राक्षस—धूर्त लोग नकली मुद्रा बना लेते हैं।

भागुरायण—कुमार ! अमात्य ठीक कहते हैं। फिर सिद्धार्थक से पूछा—यह पत्र किसने लिखा है ?

सिद्धार्थक पहले तो राक्षस के मुख की ओर देखकर चुप खड़ा रहा, किन्तु फिर पीटे जाने के भय से बोला—श्री शकटदास ने।

राक्षस—कुमार ! यदि शकटदास ने लिखा है तो मैंने ही लिखा है।

मलयकेतु ने शकटदास को बुलाने के लिए कहा।

भागुरायण ने अक्षर-परीक्षा के लिए शकटदास का केवल एक लेख ही मँगवाने को कहा। साथ में मुद्रा भी मँगा ली। लेख आ जाने पर मलयकेतु ने दोनों पत्रों को देखकर कहा—अक्षर एक-से हैं।

यह सुनकर राक्षस ने सोचा कि कदाचित् द्रव्य आदि के लोभ में, स्थायी यश की उपेक्षा कर, शकटदास ने

स्वामिभक्ति का विस्मरण करके पुत्र स्त्री का स्मरण किया हो। प्राणों की इच्छा से स्वामि भक्ति से पराङ्मुख हुए शकटदास ने, भेद-नीति में कुशल शत्रुओं के साथ मिलकर, यह नीच चेष्टा की है।

मलयकेतु ने राक्षस की ओर देखकर मन में कहा कि 'तीन आभूषण जो श्रीमान् ने भेजे हैं वे मिल गये' ऐसा जो लिखा है उनमें से क्या यह एक है? उस आभूषण को देखकर सोचा कि क्या इसको पहले पिताजी ने पहना था। फिर राक्षस से पूछा—यह आभूषण कहाँ से आया?

राक्षस—बनियों से खरीदा है।

मलयकेतु ने दासी से पूछा—विजया। इस आभूषण को पहचानती हो?

उसे देखकर विजया ने आँसू भरकर कहा—कुमार। कैसे न पहचानूँगी? इसे स्वनाम धन्य महाराज पर्वतेश्वर पहले पहना करते थे।

मलयकेतु की आँखों में आसू आ गये। उसे पिता का स्मरण हो आया।

राक्षस ने भी मन में कहा कि क्या इसे पहले पर्वतेश्वर ने पहना था। यह स्पष्ट है कि इसके आभूषण, चाणक्य के भेजे हुए, बनियो ने हमारे हाथ बेचे हैं।

अब मलयकेतु ने राक्षस से पूछा—पिता के पहने हुए और विशेषकर चन्द्रगुप्त के हाथ लगे हुए, आभूषणों की प्रा

खरीदने से कैसे हो सकती है? अथवा यह ठीक है कि अधिक लाभ की इच्छा से बेचनेवाले चन्द्रगुप्त के लिए तुम क्रूर ने इन आभूषणों का मूल्य हमें बनाया है।

राक्षस ने भी मन में कहा कि अहो! यह शत्रु की सुगठित चाल है। पत्र को अपना न बताने से क्या होता है, क्योंकि इस पर मुद्रा तो मेरी है। कैसे विश्वास करूँ कि शकटदास ने मित्रता तोड दी? कौन मानेगा कि मौर्य राजा ने आभूषण बेचे हैं? सो अब ठीक कहना ही उचित है, न कि ग्राम्य उत्तर देना।

मलयकेतु ने अब पत्र और आभूषण की पेटी दिखाकर पूछा—कहो, यह क्या है?

राक्षस ने आँसू भरकर कहा—भाग्य का खेल।

मलयकेतु ने क्रोध से कहा—क्या अब भी छिपाते हो! कहते हो कि यह भाग्य का खेल है, न कि लोभ का। कृतघ्न! विश्वास के कारण तुम्हारा अनुगमन करते हुए पिताजी को तुमने, विषकन्या के प्रयोग से, कथा शेष कर दिया। अब अहित के गौरव मे तुमने, मन्त्रि-पद पाने के लिए, शत्रु के हाथ हमें मास के समान बेचना आरम्भ किया है।

राक्षस ने मन में कहा कि यह फोड़े पर दूसरा फोडा है। और फिर प्रकट कहा—हरे-हरे। पर्वतेश्वर के लिए मैंने विष कन्या प्रयुक्त नहीं की थी।

मलयकेतु—तो पिता को किसने मार डाला?

राक्षस—दैव से पूछिए ।

मलयकेतु ने सक्रोध कहा—दैव से पूछें और क्षपणक जीवसिद्धि से न पूछें ?

राक्षस ने सोचा कि क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का दूत है। हाय ! शत्रुओं ने मेरे हृदय को भी घेर लिया ।

अब मलयकेतु ने क्रोधपूर्वक भासुरक से कहा—शिखरसेन से कहो कि कुलूत राज चित्रवर्मा, मलयराज सिंहनाद, काश्मीर-राज पुष्कराक्ष, सिन्धुराज सिन्धुसेन और पारसीकराज मेघनाद, ये पाँचों राजा राक्षस के साथ मित्रता का निर्वाह करते हुए, हमारा अनिष्ट करके, चन्द्रगुप्त को प्रसन्न करना चाहते हैं। इनमें से पहले तीन हमारी भूमि की कामना करते हैं, अत उन्हें गहरे गढे में गाड दो। शेष दो हस्ति-सेना के इच्छुक हैं, सो उन्हें हाथी के पैरों तले कुचलवा दो।

मलयकेतु अब क्रोध के साथ राक्षस से कहने लगा—राक्षस ! राक्षस ! मैं विश्वासघाती नहीं। राक्षस ! मैं मलयकेतु हूँ। सो जाओ, सब प्रकार से तुम चन्द्रगुप्त का आश्रय लो।

भागुरायण ने कुमार से कहा—व्यर्थ समय व्यतीत करने से क्या लाभ ? अब कुसुमपुर को घेरने के लिए अपनी सेना को आज्ञा दीजिए।

भागुरायण आदि को साथ लेकर मलयकेतु चला गया। राक्षस चिन्तित होकर सोचने लगा कि हाय ! बेचारे

राक्षस—दैव से पूछिए।

मलयकेतु ने सक्रोध कहा—दैव से पूछें और क्षपणक जीवसिद्धि से न पूछें ?

राक्षस ने सोचा कि क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का दूत है। हाय! शत्रुओं ने मेरे हृदय को भी घर लिया।

अब मलयकेतु ने क्रोधपूर्वक भासुरक से कहा—शिखरसेन से कहो कि कुलूत राज चित्रवर्मा, मलयराज सिंहनाद, काश्मीर-राज पुष्कराक्ष, सिन्धुराज सिन्धुसेन और पारसीकराज मेघनाद, ये पाँचों राजा राक्षस के साथ मित्रता का निर्वाह करते हुए, हमारा अनिष्ट करके, चन्द्रगुप्त को प्रसन्न करना चाहते हैं। इनमें से पहले तीन हमारी भूमि की कामना करते हैं, अतः उन्हें गहरे गढ़े में गाड़ दो। शेष दो हस्तिसेना के इच्छुक हैं, सो उन्हें हाथी के पैरों तले कुचलवा दो।

मलयकेतु अब क्रोध के साथ राक्षस से कहने लगा—राक्षस! राक्षस! मैं विश्वासघाती नहीं। राक्षस! मैं मलयकेतु हूँ। सो जाओ, सब प्रकार से तुम चन्द्रगुप्त का आश्रय लो।

भागुरायण ने कुमार से कहा—व्यर्थ समय व्यतीत करने से क्या लाभ? अब कुसुमपुर को घेरने के लिए अपनी सेना को आज्ञा दीजिए।

भागुरायण आदि को साथ लेकर मलयकेतु चला गया। राक्षस चिन्तित होकर सोचने लगा कि हाय! बेचारे

चित्रवर्मा आदि भी मारे गये। सो राक्षस की चेष्टा मित्र-नाश के लिए हो रही है, न कि शत्रु-नाश के लिए। अब मैं अभागा क्या करूँ? क्या तपोवन को चला जाऊँ? परन्तु यह उचित नहीं। यदि मित्र चन्दनदास के छुटकारे का प्रयत्न नहीं करता तो मैं कृतघ्न हूँ।

(६)

मलयकेतु की आज्ञा से चित्रवर्मा आदि पाँच प्रधान राजा मार डाले गये। यह देखकर, उसे अत्याचारी समझ-कर, मलयकेतु की कटकभूमि को छोड भय से व्याकुल शेष सैनिकों के साथ भयभीत राजा तथा अन्य दुखित हृदय सामन्त लोग अपने-अपने राज्य को चले गये। भद्रभट, पुरुप-दत्त आदि ने मलयकेतु को बन्दी कर लिया। तब चाणक्य ने, एक पबल सेना के साथ, पाटलिपुत्र से निकलकर अन्य राजाओं से परित्यक्त म्लेच्छ-सेना का नाश कर दिया।

इस भयानक सक्षोभ के समय, मलयकेतु के कटक से निकलकर, राक्षस पाटलिपुत्र चला आया। उदुम्बर नाम का चर उसका पीछा कर रहा था। पाटलिपुत्र मे राक्षस के पुन आने का कारण चन्दनदास का स्नेह था।

जीर्ण-उद्यान में राक्षस की उपस्थिति की सूचना उदुम्बर से पाकर चाणक्य ने, राक्षस को देखने के लिए, एक पुरुष भेजा। इस समय शोकावेग से व्याकुल राक्षस दुखित होकर शिलातल पर बैठा चिन्ता कर रहा था।

राक्षस को वहाँ बैठा देखकर वह पुरुष उधर चला आया। यह राक्षस के सामने, मानो उसे देखे बिना ही, अपने गले में फाँसी लगाने लगा। उस पर राक्षस की दृष्टि पड गई। उसे देखकर राक्षस ने सोचा कि यह मेरे समान कोई दुःखी है। राक्षस ने उससे पूछा—यह क्या करते हो?

पुरुष ने रोकर कहा—जो कि प्रिय मित्र के विनाश से दुःखित हमारे जैसे मन्दभाग्य को करना चाहिए।

राक्षस—यदि अधिक गोपनीय न हो तो मैं उसे सुनना चाहता हूँ।

पुरुष—वृत्तान्त सुनाने का समय नहीं है।

राक्षस ने आग्रह किया।

तब पुरुष कहने लगा—यहाँ नगर में चन्दनदास नाम का जौहरी है। विष्णुदास नाम का एक व्यक्ति चन्दनदास का प्रिय मित्र है। वह मेरा मित्र अग्नि में प्रवेश करने के लिए नगर से निकल गया है। मैं भी उसकी मृत्यु सुनने से पहले अपना नाश करने के लिए यहाँ जीर्ण-उद्यान में आया हूँ।

यह सुनकर राक्षस को पूर्ण वृत्तान्त जानने की इच्छा प्रबल हो गई। उसने विष्णुदास का अग्नि में प्रवेश करने का कारण सुनने का आग्रह किया।

पुरुष—यहाँ नगर में चन्दनदास नाम का जौहरी है। विष्णुदास नाम का एक व्यक्ति चन्दनदास का प्रिय मित्र है।

मित्र-स्नेह के कारण विष्णुदास ने चन्द्रगुप्त से प्रार्थना की—"राजन ! मेरे गृह में कुटुम्ब के पालन-पोषण के लिए पर्याप्त धन है। उसके बदले में प्रिय मित्र चन्दनदास को मुक्त कर दीजिए।" इस पर चन्द्रगुप्त ने उत्तर दिया—"सेठ विष्णुदास ! मैंने धन के कारण चन्दनदास को बन्दी नहीं किया। इसने अमात्य राक्षस का कुटुम्ब छिपा रक्खा है। अनेक बार माँगने पर भी यह उसे नहीं सौंपता। सो राक्षस का कुटुम्ब सौंप देने पर इसका छुटकारा होगा, अन्यथा प्राण-दण्ड।" यह कहकर राजा ने चन्दनदास को वध-स्थान में भेज दिया। सो विष्णुदास यह कहकर नगर से निकल गया है कि मित्र चन्दनदास का समाचार सुनने से पहले मैं अग्नि में प्रवेश करता हूँ। मैं भी विष्णुदास का समाचार सुनने से पहले ही फाँसी लगाकर मरता हूँ। इसी निमित्त जीर्ण उद्यान में आया हूँ।

राक्षस ने चन्दनदास को मुक्त करने का निश्चय करके कहा—भद्र ! जाओ, विष्णुदास को अग्नि में प्रवेश करने से बचाओ। मैं भी चन्दनदास को मृत्यु से इस खड्ग द्वारा मुक्त करता हूँ।

पुरुष—"सेठ चन्दनदास को जीवनदान करने की प्रतिज्ञा से प्रकट होता है कि आप अमात्य राक्षस हैं। किन्तु आप विपद्ग्रस्त हो रहे हैं। मैं ठीक ठीक आपको पहचान नहीं सकता। कृपया मेरा सन्देह दूर करें।"

इतना कहकर वह पुरुष राक्षस के पैरों पर गिर पड़ा।

राक्षस —स्वामी के वंश-विनाश का अनुभव करनेवाला और मित्र का विपत्ति का हेतु दुर्गृहीत-नाम मैं यथार्थ में राक्षस हूँ। आओ, समय नष्ट न करो। शीघ्र विष्णुदास से निवेदन करो कि यह राक्षस अपने प्राण देकर चन्दनदास की रक्षा करता है।

पुरुष—अमात्य। आपको हाथ में तलवार लिये देखकर घातक चन्दनदास को तत्काल मार देंगे। आप तलवार लेकर न जायँ।

इतना कहकर वह पुरुष शीघ्रता से चला गया। राक्षस भी शस्त्र त्यागकर मित्र रक्षा के लिए चल पड़ा।

(७)

चन्दनदास को दो चाण्डाल वध-स्थान में ले जा रहे थे। मार्ग में सेठ चन्दनदास के अनेक मित्र उनकी इस दुर्दशा के प्रतिकार के लिए केवल आँसू गिराते हुए, दीन-मुख तथा रोने से भारी आँखें किये, किसी प्रकार शरीर-सञ्चालन करते पीछे पीछे जा रहे थे। चाण्डालों ने स्त्री-पुत्र आदि को बिदा करने के लिए चन्दनदास से कहा। स्त्री और पुत्र जाना नहीं चाहते थे। तब एक चाण्डाल ने दूसरे चाण्डाल से कहा—अरे बिल्वपत्र। चन्दनदास को पकड़ लो। कुटुम्बी स्वयं ही चल जायँगे।

बिल्वपत्र—अरे वज्रलोमा। लो, मैं इसे पकड़ता हूँ। वज्रलोमा चाण्डाल ने चन्दनदास को अभी पकड़ा ही

मित्र-स्नेह के कारण विष्णुदास ने चन्द्रगुप्त से प्रार्थना की—"राजन्! मेरे गृह मे कुटुम्ब के पालन-पोषण के लिए पर्याप्त धन है। उसके बदले में प्रिय मित्र चन्दनदास को मुक्त कर दीजिए।" इस पर चन्द्रगुप्त ने उत्तर दिया—"सेठ विष्णुदास! मैंने धन के कारण चन्दनदास को वन्दी नहीं किया। इसने अमात्य राक्षस का कुटुम्ब छिपा रक्खा है। अनेक बार माँगने पर भी यह उसे नहीं सौंपता। सो राक्षस का कुटुम्ब सौंप देने पर इसका छुटकारा होगा, अन्यथा प्राण-दण्ड।" यह कहकर राजा ने चन्दनदास को वध स्थान मे भेज दिया। सो विष्णुदास यह कहकर नगर से निकल गया है कि मित्र चन्दनदास का समाचार सुनने से पहले मैं अग्नि मे प्रवेश करता हूँ। मैं भी विष्णुदास का समाचार सुनने से पहले ही फाँसी लगाकर मरता हूँ। इसी निमित्त जीर्ण उद्यान मे आया हूँ।

राक्षस ने चन्दनदास को मुक्त करने का निश्चय करके कहा—भद्र! जाओ, विष्णुदास को अग्नि मे प्रवेश करने से बचाओ। मैं भी चन्दनदास को मृत्यु से इस खड्ग द्वारा मुक्त करता हूँ।

पुरुष—"सेठ चन्दनदास को जीवनदान करने की प्रतिज्ञा से प्रकट होता है कि आप अमात्य राक्षस हैं। किन्तु आप विपद्ग्रस्त हो रहे हैं। मैं ठीक ठीक आपको पहचान नहीं सकता। कृपया मेरा सन्देह दूर करें।"

इतना कहकर वह पुरुष राक्षस के पैरों पर गिर पड़ा।

राक्षस —स्वामी के वंश-विनाश का अनुभव करनेवाला और मित्र की विपत्ति का हेतु दुर्गृहीत-नाम मैं यथार्थ में राक्षस हूँ। जाओ, समय नष्ट न करो। शीघ्र विष्णुदास से निवेदन करो कि यह राक्षस अपने प्राण देकर चन्दनदास की रक्षा करता है।

पुरुष—अमात्य! आपको हाथ में तलवार लिये देखकर घातक चन्दनदास को तत्काल मार देंगे। आप तलवार लेकर न जायँ।

इतना कहकर वह पुरुष शीघ्रता से चला गया। राक्षस भी शस्त्र त्यागकर मित्र-रक्षा के लिए चल पड़ा।

(७)

चन्दनदास को दो चाण्डाल वध स्थान में ले जा रहे थे। मार्ग में सेठ चन्दनदास के अनेक मित्र उनकी इस दुर्दशा के प्रतिकार के लिए केवल आँसू गिराते हुए, दीन मुख तथा रोने से भारी आँखें किये, किसी प्रकार शरीर-सञ्चालन करते पीछे-पीछे जा रहे थे। चाण्डालों ने स्त्री-पुत्र आदि को विदा करने के लिए चन्दनदास से कहा। स्त्री और पुत्र जाना नहीं चाहते थे। तब एक चाण्डाल ने दूसरे चाण्डाल से कहा—अरे विल्वपत्र! चन्दनदास को पकड़ ला। कुटुम्बी स्वयं ही चले जायँगे।

विल्वपत्र—अरे वज्रलोमा! लो, मैं इसे पकड़ता हूँ।

वज्रलोमा चाण्डाल ने चन्दनदास को अभी पकड़ा ही

था कि मन्त्री राक्षस वहाँ आ पहुँचा। उसने घातकों को चन्दनदास का वध करने से रोक दिया।

चन्दनदास ने उसे देखकर कहा—अमात्य! यह क्या?

राक्षस—यह तुम्हारे सच्चरित्र के एक अंश का अनुकरण है।

चन्दनदास—अमात्य! सारे प्रयास को ही निष्फल करते हुए आपने यह क्या किया?

राक्षस—मित्र! मैंने स्वार्थ ही साधा है। उलहना मत दो। फिर उसने वधिक वज्रलोमा से कहा—जाओ, दुरात्मा चाणक्य से कह दो कि जिसके लिए तुम्हारे ये पूज्य भी प्राण-दण्ड को प्राप्त हुए हैं वह मैं आ गया हूँ।

चन्दनदास को लिये चाण्डाल विल्वपत्र वहाँ श्मशान में वृक्ष की छाया में खड़ा रहा। चाण्डाल वज्रलोमा राक्षस को चाणक्य के पास ले गया। इसके साथ चन्दन-दास की स्त्री और पुत्र भी चले गये।

राक्षस को देखकर चाणक्य ने हर्ष से मन में कहा—अरे! ये महात्मा अमात्य राक्षस हैं जिन्होंने चिरकाल तक वृषल की सेना और मेरी बुद्धि को, अधिक जागने और अनेक प्रबन्ध आदि के क्लेशों से, परिश्रान्त कर दिया है। अब आगे बढ़कर उसने राक्षस से कहा—अमात्य राक्षस! मैं विष्णुगुप्त प्रणाम करता हूँ।

राक्षस ने मन में कहा—अब यह 'अमात्य'

सम्बोधन तो लज्जादायक है। फिर प्रकट रूप में कहा—विष्णुगुप्त! मुझे चाण्डालों ने छू लिया है। आप मेरा स्पर्श न करें।

चाणक्य—अमात्य राक्षस! ये चाण्डाल नहीं हैं। यह तो आपका पूर्व-परिचित सिद्धार्थक नाम का राजचर है और दूसरा भी समिद्धार्थक नाम का राजपुरुष है। बेचारे शकटदास ने भी वह कपट-लेख बिना जाने-बूझे लिख दिया था।

यह सुनकर राक्षस मन में शकटदास पर प्रसन्न हुआ।

चाणक्य ने फिर कहा—हे वीर! वृषल से आपका मेल करने के लिए ही भद्रभट आदि राजपुरुषों की, उस पत्र की, सिद्धार्थक और तीनों आभूषणों की, आपके मित्र क्षपणक की, जीर्ण-उद्यान में गये हुए उस पुरुष की तथा सेठ चन्दनदास के क्लेश की योजना की गई थी। सो यह वृषल तुम्हें देखने के लिए इच्छुक है। इसे देखो।

राक्षस ने उधर देखा तो सेवकों सहित राजा आ रहा था। राजा ने चाणक्य के पास आकर प्रणाम किया। चाणक्य ने कहा—वृषल! तुम्हें दिये गये सब आशीर्वाद सिद्ध हो गये। ये अमात्य राक्षस आये हैं। सो इन मुख्य अमात्य को प्रणाम करो।

चन्द्रगुप्त ने अमात्य राक्षस को प्रणाम किया।

राक्षस—राजन्! विजय प्राप्त करो।

राजा—आर्य! गुरु चाणक्य और आप षड्गुणों की चिन्ता में सावधान रहें तो मैंने जगत् में क्या नहीं जीता?

चाणक्य—अमात्य राक्षस ! तो आप चन्दनदास का जीवन बचाना चाहते हैं ?

राक्षस—इसमें क्या सन्देह ?

चाणक्य—अमात्य राक्षस ! बिना आपके शस्त्र ग्रहण किये वृषल के अनुगृहीत होने में मुझे सन्देह है। सो वास्तव में यदि आप चन्दनदास की प्राण-रक्षा करना चाहते हैं तो यह शस्त्र ग्रहण कीजिए।

राक्षस—विष्णुगुप्त ! ऐसा मत कहिए। मैं तो उसे ग्रहण करने में विशेष रूप से अयोग्य हूँ जिसे आप ग्रहण कर चुके हैं।

चाणक्य—अमात्य राक्षस ! बिना शस्त्र ग्रहण किये चन्दनदास की जीवन-रक्षा सम्भव नहीं।

अब राक्षस विवश हो गया। फिर मित्र-स्नेह के कारण उसने कहा—विष्णुगुप्त ! सब कुछ करने के लिए मित्र-स्नेह को मैं प्रणाम करता हूँ। उपाय ही क्या है ? मुझे आपका प्रस्ताव स्वीकार है।

चाणक्य ने हर्ष से शस्त्र सौंपकर कहा—वृषल ! वृषल ! अमात्य राक्षस ने मुझे अनुगृहीत किया। सौभाग्य से तुम्हारी वृद्धि है।

राजा—चन्द्रगुप्त आपकी कृपा का अनुभव करता है।

इस समय एक पुरुष ने आकर निवेदन किया कि भद्रभट और भागुरायण आदि ने मलयकेतु के हाथ-पाँव बाँध लिये

हैं। वह उसी दशा में द्वार पर लाया गया है। उसके लिए क्या आज्ञा है?

चाणक्य—अमात्य राक्षस से निवेदन करो। जो उचित समझें, वे ही करें।

राक्षस ने सोचा कि देखो क टिल्य कैसे अपने वश में करके अब मुझसे आज्ञा दिलवाता है। क्या गति है! फिर प्रकट में कहा—राजन् चन्द्रगुप्त। यह आपको विदित ही है कि हम मलयकेतु के साथ कुछ समय तक रह चुके हैं। सो इसके प्राणों की रक्षा होनी चाहिए।

राजा ने चाणक्य के मुख की ओर देखा।

चाणक्य—वृषल। अमात्य राक्षस की पहली प्रार्थना स्वीकार करनी चाहिए। फिर उस पुरुष से कहा—हमारी ओर से भद्रभट आदि से कहो कि अमात्य राक्षस आज्ञा देते हैं कि राजा चन्द्रगुप्त मलयकेतु को उसके पिता का राज्य देते हैं। अत उसके साथ जाकर तुम उसे सिंहासन पर बैठाकर फिर आ जाना।

चाणक्य ने यह भी आज्ञा दी कि सेठ चन्दनदास को मुख्य श्रेष्ठी का पद दिया गया है।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त का मनोरथ पूर्ण हो गया, राक्षस मौर्यराज चन्द्रगुप्त का मन्त्री बन गया।
